वृहद् आध्यात्मिक पाठ संग्रह

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

देवनगर कॉलोनी, भिण्ड(म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्व. श्री ताराचन्द्र जी जैन
(अकोड़ा वाले)
की स्मृति में
प्रकाशित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृहद् आध्यात्मिक पाठ संग्रह

-: सम्पादक :-

पं. अभयकुमारजी देवलाली

जैनदर्शनाचार्य, बी.कॉम.

-: प्रकाशक :-

श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

देवनगर कॉलोनी, इटावा रोड, भिण्ड(म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय संस्करण : ११००
२० जुलाई २००८

प्राप्तिस्थान :

1. श्री सीमंधर जिनालय
देवनगर कॉलोनी, इटावा रोड़, भिण्ड (म.प्र.)
मो. 98266–46644, 98267–61410
98264–72529
2. अंहिसा ट्रेडिंग कम्पनी
दाल बाजार, ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 98262–19001

लागत मूल्य : ७५ रूपये मात्र
विक्रय मूल्य : ३० रूपये मात्र

मुद्रक :
संयम पब्लिशर्स एण्ड प्रिन्टर्स
जी एफ –39, धनवन्तरी कॉम्पलेक्स,
इटावा रोड, भिण्ड(म.प्र.)
मो. 98262–87833

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

''यदर्चाभावेन प्रमुदितमनाः दर्दुर इह,
क्षणादासीत् स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधि॥''

पद्यसङ्केतित घटनानुसार मेढ़क को भगवान के दर्शन की भावना मात्र से लोक में पूज्य विशेष निधि का लाभ हुआ। तो जो हमारे आध्यात्मिक चिन्तन को पुष्ट करें, उन पाठों की महिमा भी अपूर्व है। साथ ही, **'भावना भवनाशिनी, भावना भववर्द्धिनी'** *– इस उक्ति के अनुसार वैराग्य/भोगों की भावना को मुक्ति/संसार का कारण कहा है। रुचिपूर्वक बारम्बार विचार(चिन्तवन) करना भावना है। सम्यक् भावनाओं का आधार भक्ति व तत्त्वज्ञान समन्वित पूजन-पाठ आदि हैं।*

पूजन साहित्य से जैन समाज अतिसमृद्ध है ही, परन्तु पाठ-साहित्य का भी एक वृहद संकलन समाज में हो –ऐसी भावना हमारे ट्रस्टियों की रही। यद्यपि पूर्व में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, बापूनगर, जयपुर द्वारा बहुत पहले सन् 1987 में वृहद् आध्यात्मिक पाठ संग्रह प्रकाशित किया गया। कई वर्षों का अन्तराल होने के कारण व वर्तमान के और भी आध्यात्मिक रचनाकारों की अध्यात्मप्रेरक रचनाओं को सङ्कलित व प्रकाशित करने के लिए हमारे ट्रस्टियों की भावना हुई।

प्रस्तुत पाठ संग्रह को नवीनतम और सर्वजनहिताय का रूप देकर आदरणीय पं. अभयकुमारजी देवलाली ने सम्पादन का कार्य सँभाला। उन्हीं की पावन प्रेरणा से आदरणीय बा.ब्र. रवीन्द्रकुमारजी 'आत्मन्' की समाज में प्रचलित रुचिकर अध्यात्म व वैराग्य पोषक रचनाओं को सम्मिलित किया गया। ट्रस्ट उनका विशेष आभार मानता है।

साहित्य प्रकाशन में अशुद्धि न रह जाये एतदर्थ डॉ. वीरसागर जैन दिल्ली ने इस सङ्कलन की विशेष प्रूफ-रीडिंग कर निश्चय ही समाज का उपकार किया है। साथ ही सम्पादक पं. अभयकुमारजी देवलाली एवं पं. नितुलकुमार शास्त्री 'ध्रुवधाम' ने भी इस कृति की प्रूफ-रीडिंग में सराहनीय सहयोग **दिया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। ट्रस्ट उनका भी विशेष आभार मानता है।

प्रस्तुत संग्रह के प्रकाशन में सहयोग देनेवाले सभी दानदातारों के सहयोग से इसकी न्योछावर राशि ३०/-रू. रखी गई है, ताकि समाज के उच्चवर्ग से सामान्य वर्ग तक का प्रत्येक साधर्मी भाई इससे लाभान्वित हो सके। सहयोग करने वाले दानदातारों की सूची पुस्तक में पीछे प्रकाशित है। साथही स्व. ताराचन्दजी जैन की स्मृति में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मीनादेवी जैन नियर इटावा रोड़ पेट्रोल पम्प के सामने भिण्ड(म.प्र.) द्वारा इस प्रकाशन के विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। सहयोगेच्छुक जन अभी भी 'श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, देवनगर भिण्ड' के नाम से ड्राफ्ट भेजकर कृति के पुनः प्रकाशन में सहयोग कर सकते हैं। ट्रस्ट उनका आभार मानता है।

ट्रस्ट के सभी पदाधिकारियों का भी आभार मानता हूँ, जिन्होंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकृत कर बहूमूल्य योगदान दिया।

प्रस्तुत सङ्कलन के आकर्षण व श्रेष्ठ मुद्रण हेतु संयम पब्लिशर्स एण्ड प्रिन्टर्स, भिण्ड के द्वारा अथक परिश्रम किया गया। एतदर्थ मैं श्री अतुलकुमार जैन विशेष आभार व्यक्त करता हूँ।

पं. आशीष शास्त्री इटावा रोड, भिण्ड द्वारा इस पुस्तक के प्रकाशन में बहुत परिश्रम किया गया है। अतः मैं उनका बहुत आभार मानता हूँ।

शुद्धिकरण में विशेष ध्यान देने पर भी यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो, तो आप हमें अवश्य अवगत करावें ताकि उसे द्वितीय संस्करण में सुधारा जा सके।

संसार, शरीर व भोगों के स्वरूप का विचार कर उससे विरक्त होकर **आतम-भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे।'** की उक्ति को चरितार्थ कर जीव धर्म के सन्मुख हों व आगे बढ़ें - ऐसी पवित्र भावना है।

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन
सहमंत्री
श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट,
देवनगर, इटावा रोड, भिण्ड

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृहद् आध्यात्मिक पाठ संग्रह

सम्पूर्ण जिनागम में एक वीतरागभाव को ही दु:खों से मुक्ति का मार्ग घोषित किया गय है। यद्यपि स्वभाव दृष्टि से प्रत्येक आत्मा अचलित विज्ञानधन स्वरूप भगवान आतमा है, तथापि अनादि से अपने स्वभाव को भूलने के कारण यह जीव परद्रव्यों और शुभाशुभ भावें में एकत्व बुद्धि करके चतुर्गति में भ्रमण कर रहा है।

महापुण्य के उदय से यह मनुष्यभव और जैन कुल प्राप्त हुआ तथा वीतरागी देव-शास्त्र-गुरू का समागम मिलने पर भी हमारी अनादिकालीन विपरीत रूचि के कारण हम उनके समागम से आत्महित में प्रयत्नशील नहीं हो पाते। अत: पञ्चेन्द्रिय विषयों की रूचि शिथिल करके वीतरागता की रूचि पुष्ट करने हेतु जैन श्रावक को जिनदर्शन, पूजन-पाठ तथा स्वाध्याय आदि षट् आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करने की प्रेरणा दी जाती है।

जैन समाज में अध्यात्म रसपोषक सैकड़ों पूजन भजन स्तोत्र आदि प्रचलित है। इनके अनेक संकलन यथा-सम्भव प्रकाशित होने पर भी अध्यात्म एवं वैराग्य रसवर्धक सामग्री के संकलन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी।

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, बापूनगर, जयपुर द्वारा सन् 1987 में वृहद् अध्यात्मिक पाठ संग्रह प्रकाशित किया गया। उसके पश्चात् इसकी मांग होने पर भी कोई संस्था ने इसे पुन: प्रकाशित करने पर ध्यान नहीं दे पाई। श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, देवनगर कॉलोनी, भिण्ड ने इसे पुर्नसम्पादित करके इसके प्रकाशन का निर्णय किया। अत: प्रथम संस्करण में संकलित प्राय: सभी सामग्री के साथ-साथ माननीय बाल ब्र. रवीन्द्र कुमार जी की रचनाओं को भी शामिल किया गया है।

जब सैंकड़ों रचनायें उपलब्ध है। तब उनमें चुनाव करना बहुत मुश्किल काम है। सभी रचनाओं को सम्मिलित करने में पुस्तक का आकार बहुत बड़ा हो जाने से वह कृति मात्र मन्दिरों और पुस्तकालयों में संग्रहणीय हो जाती है, परन्तु जन साधारण उसका लाभ नहीं ले पाता। अत: अधिकतम प्रेरक रचनाओं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का चुनाव करना आवश्यक हो जाता है।

अध्यात्मिक पद (भजन) एवं पूजन के अनेक संकलन सहज उपलब्ध होने के कारण इस संकलन में मात्र अध्यात्मिक स्तोत्र/पाठों को स्थान दिया गया है। हमारी भावना है कि प्रत्येक स्वाध्याय सभा के पूर्व १५-२० मिनिट इस कृतिमें संकलित रचनाओं का पाठ किया जाए, ताकि इसके माध्यम से आत्मार्थी जन अध्यात्म एवं वैराग्य रस का पोषण करके भावों की विशुद्धि बढ़ा सके।

इस संकलन की उपयोगिता का मूल्यांकन तो इसका लाभ लेने वाले आत्मार्थी बन्धु ही कर सकेंगें। यह संकलन हम सबके आत्महित में प्रबल निमित्त बनेगी। इसी विश्वास के साथ विराम लेता हूँ।

पं. अभयकुमारजी देवलाली
जैनदर्शनाचार्य, बी.कॉम.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

दर्शन-स्तुति (खण्ड-१)

क्र. विषय	रचयिता	पृष्ठांक
१. सुप्रभात स्तोत्र		२
२. मंगल पंचक		४
३. मंगलाष्टक		५
४. महावीराष्टक	पं. भागचन्द जी	६
५. महावीराष्टक पद्यानुवाद	डॉ. वीरसागर जी	८
६. भक्तामर स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	मुनि श्री मानतुंगाचार्य	१०-११
७. विषापहार स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	धनञ्जय कवि	२८-२९
८. कल्याण मंदिर स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	आचार्य कुमुदचन्द	४४-४५
९. एकीभाव स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	मुनि वादिराज	६२-६३
१०. स्वयंभू स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	आचार्य समन्तभद्र	७४-७५
११. परमानन्द स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	आचार्य अंकलंक देव	१२८-१२९
१२. स्वरूप सम्बोधन स्तोत्र (संस्कृत व अनुवाद)	आचार्य अंकलंक देव	१३४-१३५
१३. भावना द्वात्रिंशतिका (संस्कृत व अनुवाद)	आचार्य अमितगति	१४२-१४३
१४. स्वयंभू स्तोत्र भाषा	पं. द्यानतराय जी	१४८
१५. आलोचना पाठ	कविवर जौहरीलाल जी	१५०
१६. मेरी भावना	पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार	१५३
१७. सामायिक पाठ भाषा	कविवर महाचन्द्र जी	१५५
१८. सामायिक पाठ	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१६०
१९. सामायिक भावना		१६२
२०. आत्म-भावना	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१६३
२१. अपनी वैभव गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१६५
२२. श्री नेमिकुमारनिष्क्रमण	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१६७
२३. यशोधर गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१७१
२४. आचार्य श्री जिनसेन गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१७४
२५. श्री देश भूषण-फुलभूषण गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१७६
२६. अकलंक - निकलंक गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१८०
२७. सेठ सुदर्शन गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१८२
२८. सती अनन्तमती गाथा	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१८६
२९. जिनमार्ग	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. अपूर्व अवसर	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१९०
३१. समाधिमरण पाठ (सहज समाधि ....)	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	१९२
३२. समाधिमरण पाठ (गौतम स्वामी....)	पं. द्यानतरायजी	१९४
३३. समाधिमरण पाठ (बन्दौ श्री अरहंत....)	पं. सूर्यचन्द्र जी	१९६
३४. समाधि भावना	पं. शिवराम जी	२०५
३५. वैराग्य भावना	पं. भूधरदासजी	२०५
३६. वैराग्य पच्चीसिका	भैया भगवतीदासजी	२०८
३७. आत्म सम्बोधन (वैराग्य भावना)	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२१०
३८. परमार्थ विशंतिका	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२१४
३९. ज्ञानाष्टक	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२१८
४०. सांत्वनाष्टक	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२१९
४२. ब्रहाचार्य द्वादशी	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२२०
४३. अपना स्वरूप	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२२२
४४. मंगल श्रृंगार	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२२३
४५. सूवा बत्तीसी	भैया भगवतीदासजी	२२४
४६. जकडी	श्री रामकृष्णजी	२२७
४७. बाईस परीषह		२२९
४८. मेरा सहज जीवन	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२३४
४९. समता षोडसी	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२३५
५०. चेता - 2 आराधना में	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२३६
५१. दशलक्षण धर्म का मर्म	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२३९
५२. परमार्थ - शरण	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	२४०
५३. चौबीस तीर्थङ्कर स्तवन	पं. अभयकुमार शास्त्री	२४१
५४. बीस तीर्थङ्कर स्तवन	पं. अभयकुमार शास्त्री	२४३
५५. रत्नाकर - पंचविंशतिका पद्यानुवाद	श्री रामचरित उपाध्याय	२४४
५६. श्री समवसरण स्तुति पद्यानुवाद	पं. अभयकुमार शास्त्री	२४९
५७. कल्पद्रुम - स्तवन		२५९
५८. जिन चतुर्विशतिका पद्यानुवाद	भूपाल कवि	२६०
५९. अमूल्य तत्व विचार	श्री जुगलकिशोर 'युगल'	२७०
६०. रागादिनिर्णयाष्टक	भैया भगवतीदासजी	२७१
६१. छहढाला	पण्डित द्यानतराय जी	२७२
६२. छहढाला	कविवर बुधजन जी	२७८
६३. छहढाला	पण्डित दौलतराम जी	२८५
६४. आत्म बोध	कविवर भागचन्द जी	२९६
६५. अध्यात्म पंचासिका	कविवर द्यानतराय जी	३०५
६६. गुरूशिष्य चतुर्दशी	भैया भगवतीदास जी	३०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. प्रश्नोत्तर दोहा	भैया भगवतीदास जी	३१०
६८. ज्ञान पच्चीसी	कविवर बनारसीदास जी	३११
६९. कर्त्ता-अकर्त्ता पच्चीसी	भैया भगवतीदास जी	३१३
७०. सिद्ध चतुर्दशी		३१५
७१. अपूर्व अवसर पद्यानुवाद	पं. राजमल पवैया जी	३१९
७२. बारहमासा व्रजदन्त	श्री नैनसुखदास जी	३२४
७३. बारह मासा (राजुल का)	श्री नैनसुखदास जी	३३४
७४. बारह मासा (सीता सती का)	श्री नयनानन्द जी	३४२
७५. आत्म चिन्तन की घड़ी है।		३५१
७६. गुरु वन्दना	कविवर भूधरदास जी	३५२
७७. गुरु स्तुति	कविवर भूधरदास जी	३५३
७८. उपादान निमित्त संवाद	भैय्या भगवती दास जी	३५४
७९. निमित्त उपादान दोहा	कविवर बनारसीदास जी	३५८
८०. विभिन्न कवियों द्वारा रचित बारह भावना		३५९
८१. बारह भावना	कविवर जयचन्द्र जी	३५९
८२. बारह भावना	कविवर भूधरदास जी	३६०
८३. बारह भावना	कविवर भूधरदास जी	३६१
८४. बारह भावना	कविवर दीपचन्द्र जी	३६२
८५. बारह भावना	कविवर भैय्या भगवतीदास जी	३६३
८६. बारह भावना	कविवर बुधजन जी	३६५
८७. बारह भावना	ब्रं. श्री रबीन्द्रजी	३६७
८८. बारह भावना	कविवर मंगतराय जी	३७०
८९. अपूर्व अवसर	बाल ब्रह्मचारी सुमतप्रकाश जी	३७४
९०. कुन्द-कुन्द शतक		३७८
९१. भरत चक्रवर्ती के सोलह स्वप्न व उनके फल		३८६
९२. सम्राट चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न व उनके फल		३९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः॥ १॥

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभि-
रालीढपादयुग! दुर्धरकर्मदूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजितशंभवाख्य!
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ २॥

छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमान-
देवाभिनन्दन मुने सुमते जिनेन्द्र!
पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुरांग,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥ ३॥

अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्णगात्र
प्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर।
चन्द्रप्रभ स्फटिकपांडुर पुष्पदन्त,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥४॥

संतप्तकांचनरुचे जिन शीतलाख्य
श्रेयान्तिनष्टदुरिताष्टकलंकपंक
बन्धूकबंधुररुचे जिन वासुपूज्य,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥५॥

उद्दण्डदर्पकरिपो विमलामलाङ्ग
स्थेमन्ननन्त-जिदनन्तसुखाम्बुराशे।
दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवामरीकुसुमसन्निभ शान्तिनाथ,
कुन्थो दयागुणविभूषणभूषिताङ्ग।
देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥७॥
यन्मोहमल्लमदभंजन मल्लिनाथ
क्षेमंकरावितथशासनसुव्रताख्य।
यत्संपदा प्रशमितो नमिनामधेय,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥८॥
तापिच्छगुच्छरुचिरोज्जवल नेमिनाथ
घोरोपसर्गविजयिन् जिनपार्श्वनाथ।
स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पण वर्द्धमान,
त्वद्धयानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥९॥
प्रालेयनीलहरितारुणपीतभासं
यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायंति सप्ततिशतं जिन वल्लभानां,
त्वद्धयानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥१०॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितम्
चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ॥११॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥१२॥
सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्त्वसुखावहम् ॥१३॥
सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्।
अज्ञानतिमिरांधानां नित्यमस्तमितो रविः ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य वीरः कमललोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५ ॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां जिनानामेव शासनम् ॥१६ ॥

मङ्गल पञ्चक

गुण रत्नभूषा विगतदूषा सौम्यभाव निशाकराः ।
सद्बोध भानु विभा-विभासित दिक्चया विदुषांवरा ॥
निःसीम सौख्य समूह मण्डित योग खण्डित रतिवराः ।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र मे श्री वीरनाथ जिनेश्वराः ॥१ ॥
सद्ध्यान-तीक्ष्ण-कृपाण-धारा निहतकर्मकदम्बका ।
देवन्द्र-वृन्द नरेन्द्रवन्द्या प्राप्तसुख-निकुरम्बका ॥
योगीन्द्र-योग-निरूपणीया प्राप्तबोध-कलापका ।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र मे सिद्धाः सदा सुखदायकाः ॥२ ॥
आचार पञ्चक चरण-चारण चुञ्चवः समताधराः ।
नाना तपो भरहैतिहापित-कर्मिका सुखिताकरा ॥
गुप्तित्रयी परिशीलनादिविभूषिता वदतांवरा ।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र मे श्री सूरयोऽर्जित शंभरा ॥३ ॥
द्रव्यार्थ-भेद-विभिन्न-श्रुत भरपूर्ण तत्त्वनिभालिनो ।
दुर्योग-योग-निरोध-दक्षाः सकलवर-गुण शालिनः ॥
कर्त्तव्य-देशनतत्पराः विज्ञानगौरव-शालिनाः ।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र मे गुरुदेवदीधितमालिनः ॥४ ॥
संयमसमित्यावश्यकापरिहाणिगुप्ति-विभूषिता ।
पञ्चाक्षदान्ति-समुद्यता समता-सुधा-परिभूषिता ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूपृष्ठ विष्टरशायिनो विविधर्धिवृन्द विभूषिता।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र मे मुनयः सदा शमभूषिताः ॥५ ॥

मङ्गलाष्टक

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः ।
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ॥
श्री सिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥१ ॥
श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा।
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः ॥
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः ।
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥२ ॥
सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं।
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽवर्गप्रदः ॥
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं।
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥३ ॥
नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताः चतुर्विंशतिः ।
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश॥
ये विष्णुप्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोतरा विंशतिः ।
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्ठिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥४॥
ये सर्वोषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिङ्गता पञ्च ये।
ये चाष्टाङ्ग महानिमित्तकुशला येष्टाविधाश्चारणाः ॥
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपिबलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः ।
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम् ॥५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे।
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्॥
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो।
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥६॥
ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा।
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु॥
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे।
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥७॥
यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो।
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्॥
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः।
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥८॥
इत्थं श्री जिनमङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्पदं।
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुखात्॥
ये श्रुण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धमार्थकामान्विता।
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि॥९॥

महावीराष्टक स्तोत्र

(कविवर भागचन्द्र)

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचिताः।
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि लसन्तोऽन्तरहिताः॥
जगत् साक्षीमार्ग-प्रगटन-परो भानुरिव यो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः)॥१॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पन्द-रहितम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनान्-कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि॥
स्फुटं मूर्तियस्य प्रशमितमयी वातिविमला।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः) ॥२॥
नमन्नाकेन्द्राली मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलम्।
लसत्-पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनु-भृताम्॥
भव-ज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः) ॥३॥
यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह।
क्षणादासीत्-स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः॥
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः) ॥४॥
कनत्-स्वर्णाभासोप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो।
विचित्रात्माप्येको नृपतिवर सिद्धार्थ-तनयः॥
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भवरागोद्भुत-गतिः।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः) ॥५॥
यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला।
बृहज्ज्ञानोम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति॥
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः) ॥६॥
अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः।
कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः॥
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय सजिनः।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(नः) ॥७॥
महा-मोहातंक-प्रशमन-परा-कस्मिन्भिषग्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरापेक्षो बंधुर्विदित-महिमा मङ्गलकर: ॥
शरण्य: साधूनां भव-भय-भृतामुत्तम-गुणो।
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे(न:) ॥८॥

(अनुष्टुप)

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
य: पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम्॥

महावीराष्टक (पद्यानुवाद)

जिनके चेतन में दर्पणवत् सभी चेतनाचेतन भाव।
युगपद् झलकें अंत-रहित हो ध्रुव-उत्पाद-व्ययात्मक भाव॥
जगत्साक्षी शिवमार्ग-प्रकाशक जो हैं मानों सूर्य-समान।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥१॥

जिनके लोचनकमल लालिमा-रहित और चंचला-हीन।
समझाते हैं भव्यजनों को बाह्याभ्यन्तर क्रोध-विहीन॥
जिनकी प्रतिमा प्रकट शांतिमय और अहो है विमल अपार।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥२॥

नमते देवों की पङ्क्ति की मुकुट-मणि का प्रभासमूह।
जिनके दोनों चरण-कमल पर झलके देखो जीव-समूह॥
सांसारिक ज्वाला को हरने जिनका स्मरण बने जलधार।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥३॥

जिनके अर्चन के विचार से मेंढक भी जब हर्षितवान।
क्षणभर में बन गया देवता गुणसमूह और सुक्खनिधान॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब अचरज क्या यदि पाते हैं सच्चे भक्त मोक्ष का द्वार।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥४॥

तप्तस्वर्ण-सा तन है, फिर भी तनविरहित जो ज्ञानशरीरी।
एक रहें होकर विचित्र भी, सिद्धारथ राजा के वीर॥
होकर भी जो जन्मरहित हैं, श्रीमन् फिर भी न रागविकार।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥५॥

जिनकी वाणीरूपी गङ्गा नयलहरों से हीन-विकार।
विपुल ज्ञान-जल से जनता का करती हैं जग में स्नान॥
अहो आज भी इससे परिचित ज्ञानीरूपी हंस अपार।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥६॥

तीव्रवेग त्रिभुवन का जेता काम-योद्धा बड़ा प्रबल।
वयकुमार में जिनने जीता उसको केवल निज के बल॥
शाश्वत सुख शांति के राजा बनकर जो हो गये महान।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥७॥

महामोह-आतंक शमन को जो हैं आकस्मिक उपचार।
निरापेक्ष बन्धु हैं जग में जिनकी महिमा मङ्गलकार॥
भवभय से डरते संतों को शरण तथा वर गुण भण्डार।
वे तीर्थङ्कर महावीर प्रभु मम हिय आवें नयनद्वार ॥८॥

(दोहा)

महावीराष्टक स्तोत्र को, 'भाग' भक्ति से कीन।
जो पढ़ ले एवं सुने, परमगति हो लीन॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर-प्रणत-मौलिमणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यग्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥१ ॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्वबोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२ ॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छित जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३ ॥

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४ ॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद

(वीर छन्द)

भक्त अमरनत मुकुट सुमणियों, की सुप्रभा का जो भासक।
पापरूप अतिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक॥
भवजल पतित जनों को जिसने, दिया आदि में अवलम्बन।
उनके चरण कमल को करते, सम्यक बारम्बार नमन॥१॥

सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उदभव पटुतर धीधारी।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग जन मन-हारी॥
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी प्रथम जिन स्वामी की।
जगनामी-सुखधामी तद्भव, शिवगामी अभिरामी की॥२॥

स्तुति को तैयार हुआ हूँ, मैं निर्बुद्धि छोड़ के लाज।
विज्ञजनों से अर्चित हे प्रभु, मन्द बुद्धि की रखना लाज॥
जल में पड़े चन्द्र मण्डल को, बालक बिना कौन मतिमान?
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा करता गतिमान॥३॥

हे जिन! चन्द्रकान्त से बढ़कर, तव गुण विपुल अमल अतिश्वेत।
कह न सकें नर हे गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धि समेत॥
मक्र-नक्र-चक्रादि-जन्तु-युत, प्रलयपवन से बढ़ा अपार।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार॥४॥

वह मैं हूँ कुछ शक्ति न रखकर, भक्ति प्रेरणा से लाचार।
करता हूँ स्तुति प्रभु तेरी, जिसे न पौर्वापर्य विचार॥
निजशिशु की रक्षार्थ आत्मबल, बिना विचारे क्या न मृगी।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेम-रंग में हुई रंगी॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतु ॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

मत्त्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दु: ॥८॥

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरण: कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त:।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पश्रुत हूँ श्रुतवानों से, हास्य कराने का ही धाम।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम॥
करती मधुर गान पिक मधु में, जगजन मनहर अति अभिराम।
उसमें हेतु सरस फल-फूलों से युत हरे-भरे तरु-आम॥६॥

जिनवर की स्तुति करने से, चिरसंचित भविजन के पाप।
पल भर में भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप॥
सकललोक में व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रात: रवि की उग्रकिरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त॥७॥

मैं मतिहीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघहान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान॥
जैसे कमल-पत्र पर जलकण, मोती जैसे आभावान।
दिपते हैं फिर छिपते हैं, असली मोती में हे भगवान॥८॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष।
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर।
फेंका करता सूर्य किरण को, आप रहा करता है दूर॥९॥

त्रिभुवन तिलक जगत्पति हे प्रभु! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य्य!
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नही अधिक आश्चर्य॥
स्वाश्रितजन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से।
नहीं करें तो उन्हें लाभ क्या, उन धनिकों की करनी से॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्त्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिंधोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्॥११॥

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूतः।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाशकल्पम्॥१३॥

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्॥१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम पवित्र।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र॥
चन्द्र-किरणसम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जलपान।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान॥११॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह।
थे उतने वैसे अणु जग में, शांत राग-मय निस्संदेह॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण-रूप।
इसीलिए तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप॥१२॥

कहाँ आपका मुख अति सुन्दर, सुर-नर-उरग नेत्र-हारी।
जिसने जीत लिए सब जग के, जितने थे उपमा धारी॥
कहाँ कलंकी बङ्क चन्द्रमा, रंक समान कीट-सा दीन।
जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन में होकर के छवि छीन॥१३॥

तव गुण पूर्ण शशाङ्क कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के।
तीन लोक में व्याप रहे हैं, जो कि स्वच्छता में चढ़के॥
विचरें चाहे जहाँ कि उनको, जगन्नाथ का एकाधार।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकार॥१४॥

मद की छकीं अमर ललनायें, प्रभु के मन में तनिक विकार।
कर न सकीं आश्चर्य कौनसा, रह जाती हैं मन को मार॥
गिरि गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु शिखर।
हिल सकता है रंचमात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूर:
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाश: ॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्य:
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभाव:
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रै: ॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेज:स्फुरन्मणिसु याति तथा महत्त्वं
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

धूम न बत्ती तेल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिनरात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जग विख्यात॥१६॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल।
एक साथ बतलानेवाला, तीन लोक का ज्ञान विमल॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकार के ओट।
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट॥१७॥

मोह महातम दलनेवाला, सदा उदित रहने वाला।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला॥
विश्वप्रकाशक मुख सरोज तव, अधिक कांतिमय शांतिस्वरूप।
है अपूर्व जग का शशि-मंडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप॥१८॥

नाथ आपका मुख जब करता, अंधकार का सत्यानाश।
तब दिन में रवि और रात्रि में, चंद्र-बिम्ब का विफल प्रयास॥
धान्य-खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे, हुए घनों से तब क्या काम॥१९॥

जैसा शोभित होता प्रभु का, स्व-पर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान।
हरिहरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान॥
अति ज्यातिर्मय महारतन का, जो महत्व देखा जाता।
क्या वह किरणाकुलित काँच में, अरे कभी लेखा जाता॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥२१ ॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२ ॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यःशिवःशिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३ ॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४ ॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानूँ उत्तम अवलोकन।
क्योंकि इन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन॥
है परन्तु क्या तुम्हें देखने, से हे स्वामिन् मुझको लाभ।
जन्म-जन्म में लुभा न पाते, कोई यह मेरा अभिताभ॥२१॥

सौ सौ नारी सौ सौ सुत को, जनती रहतीं सौ सौ ठौर।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और॥
तारागण को सर्व दिशायें, धरें नहीं कोई खाली।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जननेवाली॥२२॥

तुमको परमपुरुष मुनि मानें, विमलवर्ण रवि तमहारी।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के, बन जाते जन अधिकारी॥
तुम्हें छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव में भटकाता है॥२३॥

तुम्हें आद्य अक्षय अनन्त प्रभु, एकानेक तथा योगीश।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, विदितयोग मुनिनाथ मुनीश॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज, जगन्नाथ जगपति जगदीश।
इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर-विभो निधीश॥२४॥

ज्ञान पूज्य है, अमर आपका, इसीलिए कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख-सम्वर्धक, अतः तुम्हीं शङ्कर हो शुद्ध॥
मोक्षमार्ग के आद्य प्रवर्तक, अतः विधाता कहें गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश ॥ २५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय ॥२६ ॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीशः!
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८ ॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्र-रश्मेः ॥२९ ॥

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन लोक के दु:ख-हरण, करनेवाले हे तुम्हें नमन।
भूमण्डल के निर्मल भूषण, आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर! हो तुमको बारम्बार नमन।
भवसागर के शोषक, पोषक भव्यजनों के तुम्हें नमन॥२६॥

गुण समूह एकत्रित होकर, तुझमें यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हों, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश॥
देव कहे जानेवालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झांक सके वे, स्वप्न मात्र में हे गुणकोष॥२७॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नतवाला।
रूप आप का दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छविवाला॥
वितरक किरणनिकरतमहारक, दिनकर घन के अधिक समीप।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीरांजन करता ले दीप॥२८॥

मणिमुक्ता किरणों से चित्रित, अद्‌भुत शोभित सिंहासन।
कांतिमान कंचन-सा दिपता, जिस पर तव कमनीय वदन॥
उदयाचल के तुङ्ग शिखर से, मानों सहस्त्र-रश्मिवाला।
किरण-जाल फैलाकर निकला, हो करने को उजियाला॥२९॥

ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवलकुन्द के पुण्य-समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य-धवल-सी आभावान॥
कनकाचल के तुङ्ग शृङ्ग से, झर झर झरता है निर्झर।
चन्द्रप्रभा-सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते
लोक-त्रये-द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या-
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रभा-सम झल्लरियों से, मणि-मुक्तामय अतिकमनीय।
दीप्तिमान शोभित होते हैं, सिर पर छत्र त्रय भवदीय॥
ऊपर रहकर सूर्यरश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर प्रताप।
मानो वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप॥३१॥

ऊँचे स्वर से करनेवाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन।
करनेवाली तीनलोक के, जन-जन का शुभ सम्मेलन॥
पीट रही है डंका, हो सत्, धर्म-राज की नित जय-जय।
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय॥३२॥

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मन्दार।
गन्धोदक की मन्द वृष्टि, करते हैं प्रमुदित देव उदार॥
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी धीमी मन्द पवन।
पंक्ति बाँधकर बिखर रहे हों, मानो तेरे दिव्य-वचन॥३३॥

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे।
तन-भा-मंडल की छवि लखकर, तव सम्मुख शरमा जावे॥
कोटि सूर्य के ही प्रतापसम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप।
जिसके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप॥३४॥

मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग-प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन।
करा रहे हैं 'सत्यधर्म' के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन॥
सुनकर जग के जीव वस्तुतः, कर लेते अपना उद्धार।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज निज भाषा के अनुसार॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६ ॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि ॥३७ ॥

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूलं-
मत्तभ्रमद्भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८ ॥

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३९ ॥

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥४० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जगमगात नख जिसमें शोभें, जैसे नभ में चन्द्रकिरण।
विकसित नूतन सरसीरुहसम, हे प्रभु तेरे विमल चरण॥
रखते जहाँ वहाँ रचते हैं, स्वर्ण कमल सुर दिव्य ललाम।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमें अभिराम॥३६॥

धर्म-देशना के विधान में, था जिनवर का जो ऐश्वर्य।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौंदर्य॥
जो छवि घोरतिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती।
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रों में लेखी जाती॥३७॥

लोल कपोलों से झरती है, जहाँ निरन्तर मद की धार।
होकर अति मदमत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुँजार॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल॥३८॥

क्षत-विक्षत कर दिए गजों के, जिसने उन्नत गण्डस्थल।
कान्तिमान गज-मुक्ताओं से, पाट दिया हो अवनी-तल॥
जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि की हो उन्नत ओट।
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उस पर कर सकता चोट॥३९॥

प्रलय काल की पवन उड़ाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अङ्गारों का भी हो जोर॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार।
प्रभु के नाम मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उस ही बार॥४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्कः
त्वन्नाम-नाग-दमिनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोमृत-दिग्ध-देहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥४५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंठ कोकिला-सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटे नाग महा विकराल॥
नाम रूप तब अहि दमिनी का, लिया जिन्होंने ही आश्रय।
पग रखकर निःशङ्क नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय॥४१॥

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर।
शूरवीर नृप की सेनाएँ, रव करती हों चारों ओर॥
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम।
सूर्य-तिमिर सम शूर-सैन्य का, कर देता है काम तमाम॥४२॥

रण में भालों से बेधित गज, तन से बहता रक्त अपार।
वीर लड़ाकू जहँ आतुर हैं, रुधिर नदी करने को पार॥
भक्त तुम्हारा हो निराश तहँ, लख अरिसेना दुर्जय रूप।
तव पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार-स्वरूप॥४३॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें, मच्छ मगर एवं घड़ियाल।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल॥
भ्रमर-चक्र में फँसा हुआ हो, बीचों बीच अगर जल-यान।
छुटकारा पा जाते दुख से, करने वाले तेरा ध्यान॥४४॥

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीड़ा भार।
जीने की आशा छोड़ी हो, देख दशा दयनीय अपार॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज संजीवन।
स्वास्थ्यलाभ कर बनता उसका, कामदेव-सा सुन्दर तन॥ ४५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः ।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४६ ॥

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
सङ्ग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७ ॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८ ॥

विषापहार स्तोत्र

स्वात्म-स्थितः सर्व-गतः समस्त-
व्यापार-वेदी विनिवृत्त-सङ्गः ।
प्रवृद्ध-कालोऽप्यजरो वरेण्यः
पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥१ ॥

परैरचिन्त्यं युग-भारमेकः
स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः ।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः
किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोह-शृङ्खला से जकड़ी हो, नख से सिख तक देह समस्त।
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों, से अधीर जो हैं अतित्रस्त॥
भगवन ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम मन्त्र की जाप।
जपकर गत-बन्धन हो जाते, क्षणभर में अपने ही आप॥४६॥

वृषभेश्वर के गुणस्तवन का, करते निशदिन जो चिन्तन।
भय भी भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन्॥
कुंजर-समर-सिंह-शोक-रुज, अहि दावानल कारागार।
इनके अतिभीषण दुःखों का भी, हो जाता क्षण में संहार॥४७॥

हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम।
गूँथी विविध वर्ण सुमनों की, गुणमाला सुन्दर अभिराम॥
श्रद्धासहित भविकजन जो भी,कण्ठाभरण बनाते हैं।
'मानतुङ्ग' सम निश्चित सुन्दर, मोक्षलक्ष्मी पाते हैं॥४८॥

पद्यानुवाद

निज आत्मा में स्थित होकर भी ज्ञान दृष्टि से जग में व्याप्त।
सर्व परिग्रह दूर तदपि है सकल विश्व ज्ञाता जिन आप्त॥
जो सबमें अति वृद्ध तदपि हैं अजर युवा सम अति सुन्दर।
पुरुष सनातन विघ्न हरैं सब मंगलमय श्री वृषभेश्वर॥१॥

जो अचिन्त्य हैं अन्य जनों के योगी जन भी नहीं समर्थ।
जीवन यापन विधि बतलाई कर्म भूमि में जग के अर्थ॥
ऐसे ऋषभ जिनेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ बुद्धि-विहीन।
रवि जा सकता वहाँ न जा सके क्या छोटा सा दीपक दीन॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं
नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं
वातायनेनैव निरूपयामि ॥३॥

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो
विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः
स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥४॥

व्यापीडितं बालमिवात्म-दोषै-
रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम्।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः
सर्वस्य जन्तोरसि बाल-वैद्यः ॥५॥

दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा-
नद्यश्व इत्यच्युत दर्शिताशः।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः
क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥६॥

उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि
त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम्।
सदाऽवदात-द्युतिरेकरूप-
स्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्त इन्द्र का स्तुति करने का नहीं रहा चाहे सामर्थ्य।
मैं नहिं छोडूंगा स्तुति करना, मेरी भक्ति न होगी व्यर्थ॥
स्वल्प ज्ञान से अधिक प्रयोजन होगा स्वामिन ! मेरा सिद्ध।
खिड़की से भी बहु चीजों का देखा जाना जगत प्रसिद्ध॥३॥

सकल विश्व के द्रष्टा तुम हो, तुम्हें न कोई देख सके।
सकल विश्व के ज्ञाता तुम, पर तुम्हें न कोई जान सके॥
तुम कितने हो ? कैसे क्या हो ? यह भी कहा न जा सकता।
तेरी स्तुति का असामर्थ्य ही स्तवन यहाँ कहला सकता॥४॥

पूर्वोपार्जित निज दोषों से जग रोगी है बाल समान।
प्रभो! आप भवरोग मिटा कर उसे किया नीरोग महान॥
निज हित-अहित ज्ञान में शिशु सम सभी प्राणियों के तुम वैद्य।
औषधि बतलाई सर्वोत्तम जो अचूक अनमोल अभेद्य॥५॥

हे अच्युत! तेरे बिन कोई देने लेने में न समर्थ।
यों ही आशा दिखा दिखा कर रवि ज्यों बहलाते हैं व्यर्थ॥
कई बहाने करते रहते कहते रहते कल या आज।
क्षणभर में हो सभी पूरते केवल एक आप सब काज॥६॥

यह स्वभाविक, जो सन्मुख हों वे जग में सुख पाते हैं।
तुझसे विमुख रहे जो कोई पूरा दुःख उठाते हैं॥
विशद स्वच्छ द्युति आप जिनेश्वर रागद्वेषमय मल से हीन।
निर्मल दर्पण तुल्य आप हो सुख दुःख सन्मुख-विमुखाधीन॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगाधताब्धेः स यतः पयोधि-
मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र।
द्यावापृथ्व्योः पृथुता तथैव
व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि ॥ ८ ॥

तवानवस्था परमार्थ-तत्त्वं
त्वया न गीताः पुनरागमश्च।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टिमैषी-
र्विरुद्ध-वृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥९ ॥

स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्
उद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः
किं गृह्यते येन भवानजागः ॥१० ॥

स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा
तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम्।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव
स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११ ॥

कर्मस्थितिं जन्तुरनेक-भूमिं
नयत्यमुं सा च परस्परस्य।
त्वं नेतृ-भावं हि तयोर्भवाब्धौ
जिनेन्द्र नौ-नाविकयोरिवाख्यः ॥१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है अगाधता ख्यात अब्धि की किन्तु अब्धि तक ही सीमित।
है ऊँचापन ख्यात मेरु का पर वह उस तक परिसीमित॥
नभ भू की भी पृथुता सीमित तेरे ये सब सीमा मुक्त।
भुवन और भुवनांतर मांही उससे कोई नहिं उन्मुक्त॥८॥

परम तत्त्व अनवस्था तेरा नित्यत्वादिक नहिं एकान्त।
तुमने पुनरागमन न बताया आगम सर्वोदयी निरन्त॥
दे अदृष्ट में ध्यान आपने मारी दृष्ट सुखों के लात।
यों प्रत्यक्ष विरोध दीखता समीचीन तो भी सब बात॥९॥

वास्तव में तो किया आपने स्मर को भस्म, नहीं हर ने।
हर यदि वश कर लेता तो क्यों उमा रक्त है क्या करने?
वृन्दा में आसक्त विष्णु भी स्मरदाहक नहिं हो सकते।
इनही के संग में नित सोते आप भिन्न जागृत रहते॥१०॥

पर को धार्मिक, पापी, कहने से कोई बड़ा नहीं होता।
दोष कथन या यशोगान से भी कोई बड़ा नहीं होता॥
ज्यों समुद्र निज महिमा से ही गुण अगाधतादिक से युक्त।
लघु तालाबों की निन्दा से नहीं आप त्यों गुण संयुक्त॥११॥

ले जाती है कर्म वर्गणा इस प्राणी को भव भव में।
प्राणी भी उसको ले जाता साथ बांधता क्षण क्षण में॥
नाव खिवैया सम समुद्र में आपस में ज्यों सहयोगी।
जीव कर्म त्यों कहा आपने, आप कर्म विरहित योगी॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्-
धर्माय पापानि समाचरन्ति।
तैलाय बाला: सिकता-समूहं
निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीया: ॥ १३ ॥

विषापहारं मणिमौषधानि
मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति
पर्याय-नामानि तवैव तानि ॥ १४ ॥

चित्ते न किञ्चत्कृतवानसि त्वं
देव: कृतश्चेतसि येन सर्वम् ।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं
सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥ १५ ॥

त्रिकाल-तत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी-
स्वामीति संख्या-नियतेरमीषाम् ।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यं-
स्तेऽन्येऽपि,चेद्व्याप्स्यदमूनपीदम् ॥१६ ॥

नाकस्य पत्यु: परिकर्म रम्यं
नागम्यरूपस्य तवोपकारि ।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो-
रुद्बिभ्रतच्छत्रमिवादरेण ॥ १७ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चाहें अविवेकी सुख जग में, काम दुःख का करते हैं।
गुण चाहें पर करें दोष वे, चहें धर्म अघ भरते हैं॥
चहें तेल मिट्टी को पेलैं साधन जब विपरीत करें।
कैसे हो फल सिद्धि उन्हें फिर जो न तुमारा पग पकरें॥१३॥

विषहारक मणि नाथ तुम्हीं हो तुम ही हो परमौषधि रूप।
तुम ही मन्त्र, रसायन भी तुम, तुम ही यन्त्र तन्त्र गुण भूप॥
तुम्हें छोड़कर इन्हें ढूँढते फिरें वृथा गोते खाते।
नाम तुम्हारे मणि मन्त्रादिक अविवेकी न समझ पाते॥१४॥

नहीं आपके मोह किसी से नहीं किसी में चित्त दिया।
किन्तु आपको जो चित धारैं उसने सब कुछ प्राप्त किया॥
करामलकवत् वह सब जाने, तेरी महिमा अगम अपार।
बाहर मन से भी जो ध्यावै वह भी पावे जग सुख सार॥१५॥

तुम त्रिकाल तत्त्वों के ज्ञाता तीनलोक के हो स्वामी।
संख्या इनकी जितनी भी है उनके ही अन्तर्यामी॥
नहीं ज्ञान प्रभुता की सीमा मर्यादित हैं लोक पदार्थ।
आप अनन्त चतुष्टय धारी बात यही है पूर्ण यथार्थ॥१६॥

इन्द्रादिक जो सेवा करते प्रभो ! आपका क्या उपकार।
आप अगम्य रूप हो स्वामिन् ! यह तो उनका भक्ति प्रकार॥
रवि पर कोई छत्र करै तो उसमें रवि पर क्या अहसान।
स्वयं धूप से वह बचता है रवि का भी होता सम्मान॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः
स चेत्किमिच्छा-प्रतिकूल-वादः ।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं
तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते ॥१८ ॥

तुङ्गात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च,
प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे
नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥१९ ॥

त्रैलोक्य-सेवा-नियमाय दण्डं
दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं
तत्कर्म योगाद्यदि वा तवास्तु ॥२० ॥

श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः
श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः ।
यथा प्रकाश-स्थितमन्धकार-
स्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम् ॥२१ ॥

स्ववृद्धिनिःश्वास-निमेषभाजि
प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः ।
किं चाखिल-ज्ञेय-विवर्ति-बोध-
स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥२१ ॥

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

नहीं किसी से राग आपके प्रभु उपेक्षक सीमातीत।
तो भी दे उपदेश सुखों का जग-प्रियता सारी ली क्रीत।।
लोकप्रिय भी वीतराग भी यह कैसी विपरीत कथा।
मर्म न इसका समझ सका मैं समझा, मेटो नाथ व्यथा ॥१८ ॥

आप अकिंचन किन्तु उच्च से जो उत्तम फल मिलता है।
वह समृद्ध धनिकादिक से भी कभी नहीं मिल सकता है॥
नीच अब्धि से नदी न निकलै काम नहीं आता पानी।
उच्च शैल से नदियाँ निकलें मीठा जल पीवें प्राणी ॥१९ ॥

तीन लोक संवाहित सुरपति, रहता खड़ा दंड कर धार।
चोबदार ज्यों तेरे आगे समवसरण मन्दिर के द्वार॥
प्रातिहार्य यह हुआ उसी के किन्तु आपके कहलाता।
कर्म योग उसके से अथवा प्रभो आपके बन जाता ॥२० ॥

धनी और निर्धन ही देखे, निर्धन और न लक्ष्मीवंत।
नहीं दूसरा तुम सम श्रीपति करे दीन को जो श्रीमन्त॥
तम में देखै प्रकाश स्थित जैसे नहिं तम में स्थित को।
केवल ज्योति प्रकाश जिनेश्वर! दो मुझ दीन तमोगत को ॥२१ ॥

आत्मा जब प्रत्यक्ष लखे निज वृद्धि श्वास निमेषों से।
तो भी उसके अनुभव माँही मूढ़ हुआ, निज दोषों से॥
आत्मा के अनुभव से विरहित, गुण पर्यय युत ज्ञेय सभी।
देख सकेगा कैसे फिर वह, सारा जग फिर नहीं कभी ॥२२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव
त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं
पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ॥२३ ॥

दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः
सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः ।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धु-
र्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥२४ ॥

मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्ते-
श्चतुर्गतीनां गहनं परेण।
सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन
त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोक ॥२५ ॥

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः
कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः ।
संसार-भोगस्य वियोग-भावो
विपक्ष-पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥२६ ॥

अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्
तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।
हरिन्मणिं काचधिया दधान-
स्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता पुत्र कुल आदि हेतु से करे आपका जो गुण गान।
प्रभो स्वयं अति महामहिम हो उस कारण तो है अवगान॥
पा सुवर्ण अनमोल हाथ में तजे समझ उसको पाषाण।
नहीं धनी बनता ले उसको और ढूँढता उसकी खान॥२३॥

सुर-असुरों को और सभी को जीत विजय का पीटा ढोल।
उससे मिला लाभ क्या उसको तुमने उसकी खोली पोल॥
लड़ा आपसे मोह महाभट हार गया झट बेचारा।
अधिक बली से जो लड़ता वह स्वयं नष्ट होता सारा॥२४॥

केवल एक आपने प्रभुवर! मार्ग मुक्ति का दिखलाया।
औरों ने चारों गतियों में सदा भटकना सिखलाया॥
सब कुछ मैंने देख लिया प्रभु तुमने इस मद में आकर।
नहीं चतुर्गति के दुख देखे कहाँ रहा वह मद तुम पर॥२५॥

सूर्य चन्द्र के केतु राहु अरि, सलिल अग्नि का अरि प्रत्यक्ष।
है समुद्र के कल्पपवन अरि भोगादिक का नाश समक्ष॥
तुमसे अन्य प्रभो ! हैं जितने सभी शत्रुता परम संयुक्त।
सबके पीछे लगे विपक्षी केवल आप शत्रु से मुक्त॥२६॥

बिन जाने भी तुम पद नमना है उत्तम फल का कर्त्ता।
देव समझ नमना कुदेव को नहीं प्रभो है अघ हर्त्ता॥
काँच समझ पन्ना मणि लेना जग में महा लाभकारी।
पन्ना समझ काँच को लेना जैसे महा हानिकारी॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्त-वाचश्चतुराः कषायै-
दग्धस्य देव-व्यवहारमाहुः ।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं
दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥२८ ॥

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं
हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः ।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति
ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९ ॥

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते
काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः ।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः
स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३० ॥

गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना
बहु-प्रकारा बहवस्तवेति ।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवनेन तेषां
गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥३१ ॥

स्तुत्यां परं नाभिमतं हि भक्त्या
स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि ।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं
केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम् ॥३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षित कहलाने वाले भी राग-द्वेष युत वेषों में।
करते हैं देवत्व बुद्धि को जो सकषाय कुदेवों में॥
बुझे हुए दीप को कहते ज्यों नन्दित स्थिति के ज्ञाता।
नर-कपाल को कहे मांगलिक वस्तु तत्त्व के अज्ञाता॥२८॥

नानार्थक भी एकार्थक भी वाणी के वक्ता हो आप।
जिसको सुन निर्दोष बतावे और मिटावें सब सन्ताप॥
सुनने से ही दोष रहितता उसकी प्रकटित हो जाती।
जैसे ज्वर से मुक्त अवस्था स्वर से ही जानी जाती॥२९॥

दिव्य ध्वनि के खिरने में नहिं इच्छा का कुछ भी संयोग।
भव्य जीव हित नियत काल पर तदपि प्रकट हो यही नियोग॥
नहीं बढ़ाना कभी चाहता शशी समुद्रों का पानी।
तो भी उगता शशी, अंबुधि बढ़ते बात यही जानी॥३०॥

प्रभो! आपके गुण परमोज्ज्वल परम प्रसन्न परम गंभीर।
बहुत तरह के अरु अनन्त हैं हरते हैं सब जग की पीर॥
वे अनन्त हैं तो भी स्तुति से थक जाने पर भासे सान्त।
इससे अधिक और क्या महिमा, उनका नहीं कभी भी अन्त॥३१॥

केवल स्तुति से फल न सिद्ध हो भक्ति भाव भी आवश्यक।
भक्ति भाव के साथ स्मरण भी हो फिर नुति हो तब दुख अन्त॥
इसीलिए स्तुति स्मरण भक्ति नुति करता हूँ मैं सभी उपाय।
किसी यत्न से कार्य सिद्ध हो, जन्म मरण मेरा मिट जाए॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततस्त्रिलोकी-नगराधिदेवं
नित्यं परं ज्योतिरनन्त-शक्तिम्।
अपुण्य-पापं पर-पुण्य-हेतुं
नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥३३॥

अशब्दमस्पर्शमरूप-गन्धं
त्वां नीरसं तद्विषयावबोधम्।
सर्वस्य मातारममेयमन्यै-
र्जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥३४॥

अगाधमन्यैर्मनसाप्यलङ्घ्यं
निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं
पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥

त्रैलोक्य-दीक्षा-गुरवे नमस्ते
यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत्।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रि-कल्पः
पश्चान्न मेरुः कुल-पर्वतोऽभूत् ॥३६॥

स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा
न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम्।
न लाघवं गौरवमेकरूपं
वन्दे विभु कालकलामतीतम् ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन लोकमय पुर अधिनायक परम ज्योतिमय ज्ञान सुपूर।
परम अनन्त चतुष्टय धारक पाप-पुण्य से हो अति दूर॥
परम पुण्य निमित्त आप हो तीन जगत से वंचित हो।
नहीं किसी की करो वन्दना सब जग से अभिवंदित हो॥३३॥

शब्द रहित हो, स्पर्श रहित हो रूप गन्ध विरहित हो आप।
मधुरादिक रस रहित आप हो तो भी इनके ज्ञाता आप॥
तीन लोक के आप प्रमाता किन्तु सभी के आप अमेय।
याद न करते कभी किसी को मेरे एक आप ही ध्येय॥३४॥

थाह नहीं है प्रभो! आपकी मन से भी हो आप अलंघ्य।
निष्किंचित हो तो भी पूरो याचक जन की आस असंख्य॥
पाया जग का पार आपने नहीं आपका मिलता पार।
हे जिनपति मैं चरण शरण हूँ मेरे तुम हो हृदयाधार॥३५॥

तीन लोक के दीक्षा गुरु हो प्रभु! आपको सदा प्रणाम।
वर्धमान कहलाकर भी हो सदा समुन्नत गुण गुणधाम॥
ज्यों सुमेरु है सदा यहां पर सदा एक-सा ही रहता।
गंड शैल, फिर अद्रि मेरु फिर ऐसे क्रम से नहीं बढ़ता॥३६॥

स्वयं प्रकाशित प्रभो! आप हो नहिं आवश्यक दिन या रात।
नहीं किसी से आप बाध्य हो बाधक भी हो नहिं जिननाथ॥
नहिं हलकापन या भारीपन सदा प्रभो हो एक स्वरूप।
काल कला से रहित आप हो नमूँ चरण में हे जिन भूप॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्या-
द्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि।
छायातरुं संश्रयतः स्वतः-स्यात्
कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥३८ ॥

अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध-
स्त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति-बुद्धिम्।
करिष्यते देव तथा कृपां मे
को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥३९ ॥

वितरित विहिता यथाकथञ्चि-
ज्जिनविनताय मनीषितानि भक्तिः।
त्वयि नुति-विषय पुनर्विशेषा-
द्दिशति सुखानि यशो 'धनं जयं' च ॥४० ॥

कल्याणमन्दिर स्तोत्र

कल्याण-मन्दिरमुदारमवद्य-भेदि
भीताभय-प्रदमनिन्दितमङ्घ्रि-पद्मम्।
संसार-सागर-निमज्जदशेषु-जन्तु-
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥१ ॥

यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः
स्तोत्रं सुविस्तृत-मतिर्न विभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठ-स्मय-धूमकेतो-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करष्यिे ॥२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं दीनता से वर मांगू प्रभो आप की स्तुति करके।
वीतराग तुम परम उपेक्षक ज्ञाता सभी चराचर के॥
वृक्ष स्वयं ही छाया देता उसे मांगना बिलकुल व्यर्थ।
ज्यों स्तुति सब कुछ देने में बिन मांगे ही पूर्ण समर्थ॥३८॥

मैं कुछ मांगू प्रभो आप से, यही आपका यदि अनुरोध।
और आप देना ही चाहें तो मुझ को भी नहीं विरोध॥
मैं तो केवल यही मांगता सदा मिले तुम पद में भक्ति।
अपने लोगों के पालन में होती है सबकी आसक्ति॥३९॥

भक्ति करे कैसे भी चाहे नहीं जायगी वह खाली।
देती इच्छित फल है सारे बात नहीं टलती टाली॥
तुम पद में यदि प्रभो भक्ति नुति यह विशेषता है उसकी।
'धन जय' यश मिलते सब उसको अतुल शक्ति होती वश की॥४०॥

पद्यानुवाद

अनुपम करुणा की सु-मूर्ति शुभ, शिव मन्दिर अघनाशक मूल।
भयाकुलित व्याकुल मानव के, अभयप्रदाता अति-अनुकूल॥
बिन कारन भवि जीवन तारन, भवसमुद्र में यान-समान।
ऐसे पद्म-प्रभु पारस, के पद अर्चूं मैं नित अम्लान॥१॥

जिसकी अनुपम गुणगरिमा का, अम्बुराशि सा है विस्तार।
यश-सौरभ सु-ज्ञान आदि का, सुरगुरु भी नहिं पाता पार॥
हठी कमठ शठ के मदमर्दन, को जो धूमकेतु-सा शूर।
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी तीर्थपति की भरपूर॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशः कथमधीश भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपि कौशिक-शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥३॥

मोह-क्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्त-वान्त-पयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
न्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥४॥

अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्य-गुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निज-बाहु-युगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥५॥

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः।
जाता तदेवमसमीक्षित-कारितेयं
जल्पन्ति वा निज-गिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥६॥

आस्तामचिन्त्य-महिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपोपहत-पान्थ-जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्म-सरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगम अथाह सुखद शुभ सुन्दर, सत्स्वरूप तेरा अखिलेश!।
क्यों करि कह सकता है मुझसा, मन्दबुद्धि मूरख करुणेश!॥
सूर्योदय होने पर जिसको, दिखता निज का गात नहीं।
दिवाकीर्ति क्या कथन करेगा, मार्तण्ड का नाथ! कहीं?॥३॥

यद्यपि अनुभव करता है नर, मोहनीय-विधि के क्षय से।
तो भी गिन न सकैं गुण तुव सब, मोहेतर-कर्मोदय से॥
प्रलयकाल में जब जलनिधि का, बह जाता है सब पानी।
रत्नराशि दिखने पर भी क्या, गिन सकता कोई ज्ञानी?॥४॥

तुम अतिसुन्दर शुद्ध अपरिमित, गुणरत्नों की खानिस्वरूप।
वचननि करि कहने को उमगा, अल्पबुद्धि मैं तेरा रूप॥
यथा मन्दमति लघुशिशु अपने, दोऊ कर को कहै पसार।
जल-निधि को देखहु रे मानव, है इसका इतना आकार॥५॥

हे प्रभु! तेरे अनुपम सब गुण, मुनिजन कहने में असमर्थ।
मुझसा मूरख औ अबोध क्या, कहने को हो सके समर्थ॥
पुनरपि भक्तिभाव से प्रेरित, प्रभु-स्तुति को बिना विचार।
करता हूँ, पंछी ज्यों बोलत, निश्चित बोली के अनुसार॥६॥

है अचिन्त्य महिमा स्तुति की, वह तो रहे आपकी दूर।
जब कि बचाता भव-दुःखों से, मात्र आपका 'नाम' जरूर॥
ग्रीष्म कु-ऋतु के तीव्र ताप से, पीड़ित पन्थी हुये अधीर।
पद्म-सरोवर दूर रहे पर, तोषित करता सरस-समीर॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्म-बन्धाः ।
सद्यो भुजङ्गममया इव मध्य-भाग-
मभ्यागते वन-शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥८ ॥

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र
रुद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गो-स्वामिनि स्फुरित-तेजसि दृष्टमात्रे
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥९ ॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून-
मन्तर्गतस्य मरुतः य किलानुभावः ॥१० ॥

यस्मिन्हर-प्रभृतयोऽपि हत-प्रभावः
सोऽपि त्वया रति-पतिः क्षपितः क्षणेन ।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर-वाडवेन ॥११ ॥

स्वामिन्ननल्प-गरिमाणमपि प्रपन्न-
स्त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः ।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन-मन्दिर में वास करहिं जब, अश्वसेन-वामा-नन्दन।
ढीले पड़ जाते कर्मों के, क्षण भर में दृढ़तर बन्धन॥
चन्दन के विटपों पर लिपटे, हों काले विकराल भुजङ्ग।
वन-मयूर के आते ही ज्यों, होते उनके शिथिलित अङ्ग॥८॥

बहु विपदाएँ प्रबल वेग से, करें सामना यदि भरपूर।
प्रभु-दर्शन से निमिषमात्र में, हो जातीं वे चकनाचूर॥
जैसे गो-पालक दिखते ही, पशु-कुल को तज देते चोर।
भयाकुलित हो करके भागें, सहसा समझ हुआ अब भोर॥९॥

भक्त आपके भव-पयोधि से, तिर जाते तुमको उर धार।
फिर कैसे कहलाते जिनवर, तुम भक्तों की दृढ़ पतवार॥
वह ऐसे, जैसी तिरती है, चर्म-मसक जल के ऊपर।
भीतर उसमें भरी वायु का, ही केवल यह विभो! असर॥१०॥

जिसने हरिहरादि देवों का, खोया यश-गौरव-सम्मान।
उस मन्थन का हे प्रभु! तुमने, क्षण में मेट दिया अभिमान॥
सच है जिस जल से पल-भर में, दावानल हो जाता शान्त।
क्यों न जला देता उस जल को? बडवानल होकर अश्रांत॥११॥

छोटी-सी मन की कुटिया में, हे प्रभु! तेरा ज्ञान अपार।
धार उसे कैसे जा सकते, भविजन भव-सागर के पार॥
पर लघुता से वे तिर जाते, दीर्घभार से डूबत नाहिं।
प्रभु की महिमा ही अचिन्त्य है, जिसे न कवि कह सकैं बनाहिं॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्म-चौराः ।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नील-द्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानि ॥१३ ॥

त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूप-
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज-कोष-देशे ।
पूतस्य निर्मल-रुचेर्यदि वा किमन्य-
दक्षस्य सम्भव-पदं ननु कर्णिकायाः ॥१४ ॥

ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्म-दशां व्रजन्ति ।
तीव्रानलादुपल-भावमपास्य लोके
चामीकरत्वमचिरादिव धातु-भेदाः ॥१५ ॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ।
एतत्स्वरूपमथ मध्य-विवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥१६ ॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेद-बुद्ध्या
ध्यातो जिनेद्र भवतीह भवत्प्रभावः ।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विष-विकारमपाकरोति ॥१७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रोध शत्रु को पूर्व शमन कर, शान्त बनायो मन-आगार।
कर्म-चोर जीते फिर किस विध, हे प्रभु अचरज अपरम्पार॥
लेकिन मानव अपनी आँखों, देखहु यह पटतर संसार।
क्यों न जला देता वन-उपवन, हिम-सा शीतल विकट तुषार॥१३॥

शुद्धस्वरूप अमल अविनाशी, परमातम सम ध्यावहिं तोय।
निजमन कमल-कोष मधि ढूंढ़हिं, सदा साधु तजि मिथ्या-मोह॥
अतिपवित्र निर्मल सु-कांति युत, कमलकर्णिका बिन नहिं और।
निपजत कमलबीज उसमें ही, सब जग जानहिं और न ठौर॥१४॥

जिस कुधातु से सोना बनता, तीव्र अग्नि का पाकर ताव।
शुद्ध स्वर्ण हो जाता जैसे, छोड़ उपलता पूर्व विभाव॥
वैसे ही प्रभु के सु-ध्यान से, वह परिणति आ जाती है।
जिसके द्वारा देह त्याग, परमात्मदशा पा जाती है॥१५॥

जिस तन से भवि चिन्तन करते, उस तन को करते क्यों नष्ट।
अथवा ऐसा ही स्वरूप है, है दृष्टान्त एक उत्कृष्ट॥
जैसे बीचवान बन सज्जन, बिना किए ही कुछ आग्रह।
झगड़े की जड़ प्रथम हटाकर, शांत किया करते विग्रह॥१६॥

हे जिनेन्द्र! तुम में अभेद रख, योगीजन निज को ध्याते।
तव प्रभाव से तज विभाव वे, तेरे ही सम हो जाते॥
केवल जल को दृढ़-श्रद्धा से, मानत है जो सुधासमान।
क्या न हटाता विष विकार वह, निश्चय से करने पर पान॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वामेव वीत-तमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि-हरादि-धिया प्रपन्नाः।
किं काच-कामलिभिरीश सितोऽपि शङ्खो
नो गृह्यते विविध-वर्ण-विपर्ययेण ॥१८॥

धर्मोपदेश-समये सविधानुभावा-
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोधमुपयाति न जीव-लोकः ॥१९॥

चित्रं विभो कथमवाङ्मुख-वृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुर-पुष्प-वृष्टिः।
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥२०॥

स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परम-सम्मद-सङ्ग-भाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥२१॥

स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुर-चामरौघा।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनि-पुङ्गवाय
ते नूनमूर्ध्व-गतयः खलु शुद्ध-भावाः ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या-तन-अज्ञान रहित, सुज्ञानमूर्ति हे परम यती।
हरिहरादि ही मान अर्चना, करते तेरी मन्दमती॥
है यह निश्चय प्यारे मित्रो, जिनके होत पीलिया रोग।
श्वेत शंख को विविध वर्ण, विपरीत रूप देखे वे लोग॥१८॥

धर्म-देशना के सुकाल में, जो समीपता पा जाता।
मानव की क्या बात कहूँ तरु, तक अ-शोक है हो जाता॥
जीव-वृन्द नहिं केवल जाग्रत, रवि के प्रकटित ही होते।
तरु तक सजग होत अति हर्षित, निद्रा तज आलस खोते॥१९॥

है विचित्रता सुर बरसाते, सभी ओर से सघन-सुमन।
नीचे डंठल ऊपर पंखुरी, क्यों होते हैं हे भगवान॥
है निश्चित, सुजनों सुमनों के, नीचे को होते बन्धन।
तेरी समीपता की महिमा है, हे वामा देवी नन्दन॥२०॥

अति गम्भीर हृदय-सागर से, उपजत प्रभु के दिव्यवचन।
अमृततुल्य मान कर मानव, करते उनका अभिनन्दन॥
पी-पीकर जग-जीव वस्तुतः, पा लेते आनन्द अपार।
अजर अमर हो फिर वे जग की, हर लेते पीड़ा का भार॥२१॥

ढुरते चारु-चँवर अमरों से, नीचे से ऊपर जाते।
भव्यजनों को विविधरूप से, विनय सफल वे दर्शाते॥
शुद्धभाव से नतशिर हो जो, तव पदाब्ज में झुक जाते।
परमशुद्ध हो ऊर्ध्वगती को, निश्चय करि भविजन पाते॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्यामं गभीर-गिरमुज्ज्वल-हेम-रत्न-
सिंहासनस्थमिह भव्य-शिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैः
चामीकराद्रि-शिरसीव नवाम्बुवाहम्॥२३॥

उद्गच्छता तव शिति-द्युति-मण्डलेन
लुप्त-च्छद-च्छविरशोक-तरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि॥२४॥

भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेन-
मागत्य निर्वृति-पुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते॥२५॥

उद्द्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ताकलाप-कलितोरुसितातपत्र-
व्याजात्त्रिधा धृत-तनुर्ध्रुवमभ्युपेतः॥२६॥

स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन
कान्ति-प्रताप-यशसामिव संचयेन।
माणिक्य-हेम-रजत-प्रविनिर्मितेन
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उज्ज्वल हेम सुरत्न पीठ पर, श्याम सु–तन शोभित अनुरूप।
अतिगंभीर सु–निःसृत वाणी, बतलाती है सत्य स्वरूप॥
ज्यों सुमेरु पर ऊँचे स्वर से, गरज गरज घन बरसैं घोर।
उसे देखने सुनने को जन, उत्सुक होते जैसे मोर॥२३॥

तुव तन भा–मण्डल से होते, सुरतरु के पल्लव छवि–छीन।
प्रभु प्रभाव को प्रकट दिखाते, हो जड़ रूप चेतना–हीन॥
जब जिनवर की समीपतातैं, सुरतरु हो जाता गत–राग।
तब न मनुज क्यों होवेगा जप, वीतराग खो करके राग॥२४॥

नभ–मण्डल में गूँज गूँज कर, सुरदुन्दुभि कर रही निनाद।
रे रे प्राणी आतम हित नित, भज ले प्रभु को तज परमाद॥
मुक्ति धाम पहुँचाने में जो, सार्थवाह बन तेरा साथ।
देंगे त्रिभुवनपति परमेश्वर, विघ्नविनाशक पारसनाथ॥२५॥

अखिल–विश्व में हे प्रभु! तुमने, फैलाया है विमल–प्रकाश।
अतः छोड़कर स्वाधिकार को, ज्योतिर्गण आया तव पास॥
मणि–मुक्ताओं की झालर युत, आतपत्र का मिस लेकर।
त्रिविध–रूप धर प्रभु को सेवे, निशिपति तारान्वित होकर॥२६॥

हेम–रजत–माणिक से निर्मित, कोट तीन अति शोभित से।
तीन लोक एकत्रित होके, किये प्रभु को वेष्ठित से॥
अथवा कान्ति–प्रताप–सुयश के, संचित हुए सुकृत से ढेर।
मानो चारों दिशि से आके, लिया इन्होंने प्रभु को घेर॥२७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्य-स्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना-
मुत्सृज्य रत्न-रचितानपि मौलि-बन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥२८ ॥

त्वं नाथ जन्म-जलधेर्विपराङ्मुखोऽपि
यत्तारयस्यसुमतो निज-पृष्ठ-लग्नान्।
युक्तं हि पार्थिव-निपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो यदसि कर्म-विपाक-शून्यः ॥२९ ॥

विश्वेश्वरोऽपि जन-पालक दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षर-प्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व-विकास-हेतु ॥३० ॥

प्राग्भार-सम्भृत-नभांसि रजांसि रोषाद्
उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायाऽपि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥३१ ॥

यद्गर्जदूर्जित-घनौघमदभ्र-भीम-
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोर-धारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे,
तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारि कृत्यम् ॥ ३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

झुके हुये इन्द्रों मुकुटों, को तज करके सुमनों के हार।
रह जाते जिन चरणों में ही, मानो समझा श्रेष्ठ आधार॥
प्रभु का समागम सुन्दर तज, सु-मनस कहीं न जाते हैं।
तव प्रभाव से वे त्रिभुवनपति ! भव-समुद्र तिर जाते हैं॥२८॥

भव-सागर से तुम पराङ्मुख, भक्तों को तारो कैसे।
यदि तारो तो कर्म-पाक के, रस से शून्य अहो कैसे॥
अधोमुखी परपक्व कलश ज्यों, स्वयं पीठ पर रख करके।
ले जाता है पार सिन्धु के, तिरकर और तिरा करके॥२९॥

जगनायक जगपालक होकर, तुम कहलाते दुर्गत क्यों।
यद्यपि अक्षर मय स्वभाव है तो, फिर अलिखित अक्षत क्यों॥
ज्ञान झलकता सदा आप में, फिर क्यों कहलाते अनजान।
स्व-पर प्रकाशक अज्ञ जनों को, हे प्रभु ! तुम ही सूर्य समान॥३०॥

पूरव वैर विचार क्रोध करि, कमठ धूलि बहु बरसाई।
कर न सका प्रभु तव तन मैला, हुआ मलिन खुद दुखदाई॥
कर करके उपसर्ग घनेरे, थक कर फिर वह हार गया।
कर्मबन्ध कर दुष्ट प्रपंची, मुँह की खाकर भाग गया॥३१॥

उमड़ घुमड़ कर गर्जत बहुविध, तड़कत बिजली भयकारी।
बरसा अति घनघोर दैत्य ने, प्रभु के सिर पर कर डारी॥
प्रभु का कुछ न बिगाड़ सकी वह, मूसल सी मोटी धारा।
स्वयं कमठ ने हठधर्मी वश, निग्रह अपना कर डारा॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वस्तोर्ध्व-केश-विकृताकृति-मर्त्य-मुण्ड-
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्र-विनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्तमपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भव-दुःख-हेतुः ॥३३॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसन्ध्य-
माराधयन्ति विधिवद्विधुतान्य-कृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलक-पक्ष्मल-देह-देशाः
पाद-द्वयं तव विभो भुविजन्मभाजः ॥३४॥

अस्मिन्नपार-भव-वारिनिधौ मुनीश
मन्ये न मे श्रवण-गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र-पवित्र-मन्त्रे
किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥३५॥

जन्मान्तरेऽपि तव पाद-युगं न देव
मन्ये मया महितमीहित-दान-दक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥३६॥

नूनं न मोह-तिमिरावृत-लोचनेन
पूर्वं सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्ध-गतयः कथमन्यथैते ॥३७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालरूप विकराल वक्ष विच, मृतमुंडन की धरि माला।
अधिक भयावह जिनके मुख से, निकल रही अग्निज्वाला॥
अगणित प्रेत पिशाच असुर ने, तुम पर स्वामिन भेज दिये।
भव भव के दुख हेतु क्रूर ने, कर्म अनेकों बांध लिए॥३३॥

पुलकित वदन सु-मन हर्षित हो, जो जन तज मायाजंजाल।
त्रिभुवनपति के चरण-कमल की, सेवा करते तीनों काल॥
तुव प्रसादतैं भविजन सारे, लग जाते भवसागर पार।
मानव जीवन सफल बनाते, धन्य-धन्य उनका अवतार॥३४॥

इस असीम भव-सागर में नित, भ्रमत अकथ बहु दुख पायो।
तोऊ सु-वश तुम्हारो सांचो, नहिं कानों मैं सुन पायो॥
प्रभु का नाम-मंत्र यदि सुनता, चित्त लगा करके भरपूर।
तो यह विपदारूपी नागिन, पास न आती रहती दूर॥३५॥

पूरव भव में तव चरनन की, मनवांछित फल की दातार।
की न कभी सेवा भावों से, मुझ को हुआ आज निरधार॥
अतः रंक जन मेरा करते, हास्य सहित अपमान अपार।
सेवक अपना मुझे बना लो, अब तो हे प्रभु जगदाधार॥३६॥

दृढ़ निश्चय करि मोह-तिमिर से, मुँदे-मुँदे से थे लोचन।
देख सका ना उनसे तुमको, एक बार हे दुःखमोचन॥
दर्शन कर लेता गर पहिले, तो जिसकी गति प्रबल अरोक।
मर्मच्छेदी महा अनर्थक, माना कभी न दुख के थोक॥३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः ॥३८ ॥

त्वं नाथ! दुःखि-जन-वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्य-पुण्य-वसते! वशिनां वरेण्य!
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विहाय
दुःखाङ्कुरोद्दलन-तत्परतां विधेहि ॥३९ ॥

निःसख्य-सार-शरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित-रिपु-प्रथितावदानम्।
त्वत्पाद-पङ्कजमपि प्रणिधान-बन्ध्यो
वन्ध्योऽस्मि तद्भुवन-पावन हा हतोऽस्मि ॥४० ॥

देवेन्द्र-वन्द्य विदिताखिल-वस्तुसार
संसार-तारक विभो भुवनाधिनाथ।
त्रायस्व देव करुणा-ह्रद मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयद-व्यसनाम्बुराशेः ॥४१ ॥

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रि-सरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत-सञ्चितायाः।
तन्मे त्वदेक-शरणस्य शरण्य! भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥४२ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

देखा भी है, पूजा भी है, नाम आपका श्रवण किया।
भक्तिभाव अरु श्रद्धापूर्वक, किन्तु न तेरा ध्यान किया॥
इसीलिए तो दुखों का मैं, गेह बना हूँ निश्चित ही।
फलै न किरिया बिना भाव के, है लोकोक्ति सुप्रचलित ही ॥३८ ॥

दीन दुखी जीवों के रक्षक, हे करुणा सागर प्रभुवर।
शरणागत के हे प्रतिपालक, हे पुण्योत्पादक! जिनेश्वर॥
हे जिनेश! मैं भक्तिभाव वश, शिर धरता तुमरे पग पर।
दुःख मूल निर्मूल करो प्रभु, करुणा करके अब मुझ पर ॥३९ ॥

हे शरणागत के प्रतिपालक, अशरण जन को एक शरण।
कर्मविजेता त्रिभुवन नेता, चारु चन्द्रसम विमल चरण॥
तव पद-पङ्कज पा करके हे, प्रतिभाशाली बड़भागी।
कर न सका यदि ध्यान आपका, हूँ अवश्य तब हतभागी ॥४० ॥

अखिल वस्तु के जान लिए हैं, सर्वोत्तम जिसने सब सार।
हे जगतारक! हे जगनायक! दुखियों के हे करुणागार॥
वन्दनीय हे दयासरोवर! दीन दुखी का हरना त्रास।
महा-भयङ्कर भवसागर से, रक्षा कर अब दो सुखवास ॥४१ ॥

एक मात्र है शरण आपकी, ऐसा मैं हूँ दीनदयाल।
पाऊँ फल यदि किञ्चित करके, चरणों की सेवा चिरकाल॥
तो हे तारनतरन नाथ हे अशरण शरण मोक्षगामी।
बने रहें इस परभव में बस, मेरे आप सदा स्वामी ॥४२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थं समाहित-धियो विधिवज्जिनेन्द्र
सान्द्रोल्लसत्पुलक-कञ्चुकिताङ्ग-भागाः ।
त्वद्बिम्ब-निर्मल-मुखाम्बुज-बद्धलक्ष्या
ये संस्तवं तव विभो रचयन्ति भव्याः ॥४३ ॥

(आर्या छन्द)

जन-नयन-'कुमुदचन्द्र'-प्रभास्वराः स्वर्ग-सम्पदो भुक्त्वा ।
ते विगलित-मल-निचया, अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥४४ ॥

एकीभाव स्तोत्र

(मन्दाक्रान्ता)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति ।
तस्याऽप्यस्य त्वयि जिन-स्वे भक्तिरुन्मुक्तये चेद्-
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः ॥१ ॥

ज्योतीरूपं दुरति-निवह-ध्वान्त-विध्वंस-हेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः ।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमान-
स्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे जिनेन्द्र! जो एकनिष्ठ तव, निरखत इकटक कमल-वदन।
भक्तिसहित सेवा से पुलकित, रोमाञ्चित है जिनका तन॥
अथवा रोमावलि के ही जो, पहिने हैं कमनीय वसन।
यों विधिपूर्वक स्वामिन् तेरा, करते हैं जो अभिनन्दन॥४३॥

जन-दृगरूपी 'कुमुद' वर्ग के, विकसावनहारे राकेश।
भोग भोग स्वर्गों के वैभव, अष्टकर्मफल कर निःशेष॥
स्वल्पकाल में मुक्तिधाम की, पाते हैं वे दशाविशेष।
जहाँ सौख्यसाम्राज्य अमर है, आकुलता का नहीं प्रवेश॥४४॥

पद्यानुवाद

(दोहा)

वादिराज मुनिराज के, चरन-कमल चित लाय।
भाषा एकीभाव की, करूँ स्व-पर सुखदाय॥

(रोला)

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी।
सो मुझ कर्म-प्रबन्ध करत भव भव दुख भारी॥
ताहि तिहारी भक्ति-जगत-रवि जो निरवारै।
तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारै॥१॥

तुम जिन जोति-सरूप दुरित-अँधियार निवारी।
सो गनेस-गुरु कहैं तत्त्व-विद्या-धनधारी॥
मेरे चित-घर माहिं बसौ तेजोमय यावत।
पाप-तिमिर अवकास तहाँ सो क्योंकर पावत॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढ़-मनाः स्तोत्र-मन्त्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान्
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः ॥३॥

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता भव्य-पुण्यात्
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्टः
तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥४॥

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बन्धु-
स्त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्तिरप्रत्यनीका।
भक्ति-स्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः ॥५॥

जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः ॥६॥

पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं।
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे।
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द आँसू बदन धोय तुमसों चित सानै।
गदगद सुरसौं सुयश-मन्त्र पढ़ि पूजा ठानै॥
ताके बहुविधि व्याधि-व्याल चिरकाल निवासी।
भाजैं थानक छोड़ देह-बाँबइ के वासी॥३॥

दिवितैं आवनहार भये भवि-भाग उदयबल।
पहले ही सुर आय कनकमय कीय महीतल॥
मन-गृह ध्यान-दुआर आय निवसो जगनामी।
जो सुरवन तन करो कौन यह अचरज स्वामी॥४॥

प्रभु सब जग के बिना हेतु बान्धव उपकारी।
निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी॥
भक्ति-रचित मम चित्त-सेज नित वास करोगे।
मेरे दुख-सन्ताप देखि किम धीर धरोगे॥५॥

भव-वन में चिरकाल भ्रमो कछु कहिय न जाई।
तुम थुति-कथा-पियूष-वापिका भागन पाई॥
शशि तुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम।
करत न्हौन ता माहिं क्यों न भवताप बुझै मम॥६॥

श्रीविहार परिवाह होत शुचि-रूप सकल जग।
कमल कनक आभा व सुरभि श्रीवास धरत पग॥
मेरो मन-सर्वङ्ग परम प्रभु को सुख पावै।
अब सो कौन कल्याण जो न दिन-दिन ढिंग पावै॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात्पुरुषमसमानन्द-धाम प्रविष्टम् ।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
क्रूराकाराः कथमिव रुजा-कण्टका निर्लुठन्ति ॥८ ॥

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्तिः,
मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः ।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः ॥९ ॥

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्ति-शैलोपवाही
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलिबन्धं धुनोति ।
ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टः
तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोकोपकारः ॥१० ॥

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृच्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि ।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणाम् ॥११ ॥

प्रापद्देवं तव नुति-पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम् ।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव-श्री-प्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम् ॥१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भज तज सुखपद बसे काममद सुभट सँहारे।
जो तुमको निरखंत, सदा प्रिय दास तिहारे॥
तुम वचनामृत पान भक्ति-अंजुलि सों पीवै।
तिन्हैं भयानक क्रूर रोग-रिपु कैसे छीवै॥८॥

मानथम्भ पाषान आन पाषान पटन्तर।
ऐसे और अनेक रतन दीखैं जग-अन्तर॥
देखत दृष्टि-प्रमान मान-मद तुरत मिटावै।
जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्यों कर पावै॥९॥

प्रभुतन-पर्वत-परस पवन उसमें निवहै है।
तासों ततछिन सकल रोग-रज बाहिर ह्वै है॥
जाके ध्यानाहूत बसो उर-अम्बुज माहीं।
कौन जगत उपकार करन समरथ सो नाहीं॥१०॥

जनम-जनम के दुःख सहे सब ते तुम जानो।
याद किये मुझ हिए लगैं आयुध से मानो॥
तुम दयाल, जगपाल, स्वामि, मैं शरन गही है।
जो कुछ करनो होय करो परमान वही है॥११॥

मरन-समय तुम नाम मन्त्र जीवकतैं पायो।
पापाचारी स्वान प्रान तज अमर कहायो॥
जो मणिमाला लेय जपैं तुम नाम निरन्तर।
इन्द्र सम्पदा लहै कौन संशय इस अन्तर॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्‍घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो
मुक्ति-द्वारं परिदृढ-महामोह-मुद्रा-कपाटम् ॥१३॥

प्रच्छन्नः खल्वयमघमयै-रन्धकारैः समन्तात्
मुक्तेः पन्थाः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती-रत्न-दीपः ॥१४॥

आत्म-ज्योति-र्निधि-रनवधिर्द्रष्टुरानन्द-हेतुः।
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः,
स्तोत्रैर्बन्ध-प्रकृति-पुरुषोद्दाम-धात्री खनित्रैः ॥१५॥

प्रत्युत्पन्ना नय-हिमगिरे-रायता चामृताब्धेः,
या देव त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुत क्षालितांहः
कल्माषं यद्भवति किमियं देव संदेह-भूमिः ॥१६॥

प्रादुर्भूत-स्थिर-पद-सुख त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां॥
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति॥ १७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधै।
अनवधि सुख की सार भक्ति-कुम्भी नहिं लाधै॥
सो शिव-वांछक पुरुष मोक्ष-पट केम उधारै।
मोह-मुहर दिढ़ करी मोक्ष-मन्दिर के द्वारे॥१३॥

शिवपुर-केरो पन्थ पाप-तमसों अति छायो।
दुःख-सरूप बहु कूप-खाड़सों विकट बतायो॥
स्वामी, सुखसों तहाँ कौन जन मारग लागैं।
प्रभु-प्रवचन-मणिदीप जौन के आगैं-आगैं॥१४॥

कर्म-पटल भू माहिं दबी आतम-निधि भारी।
देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं उधारी॥
तुम सेवक ततकाल ताहि निहचैं करि धारै।
थुति-कुदालसों खोद बन्ध-भू कठिन बिदारै॥ १५॥

स्यादवाद-गिरि उपज मोक्ष-सागर लों धाई।
तुम चरणाम्बुज-परस भक्ति-गंगा सुखदाई॥
मो चित निर्मल थयो न्हौन-रुचि-पूरव तामैं।
अब वह हो न मलीन कौन जिन संशय यामैं॥१६॥

तुम शिव सुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो।
मैं भगवान समान, भाव यों बरतै मेरो॥
यदपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै।
तुव प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावैं॥ १७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभङ्गी-तरङ्गैः,
वागम्भोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवन्ति ॥१८॥

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥१९॥

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भव-लय-करी श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम् ॥२०॥

वृत्तिर्वाचामपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्भक्ति-पीयूष-पुष्टाः
ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति ॥२१॥

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयेवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधिर्वैरहारी
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक प्राभवं त्वत्परेषु ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन जलधि तुम देव सकल त्रिभुवन में व्यापै।
भंग-तरंगनि विकथ-वाद-मल मलिन उथापै॥
मन-सुमेरुसों मथैं ताहि जे सम्यग्ज्ञानी।
परमामृतसों तृपत होंहि ते चिरलों प्रानी॥१८॥

जो कुदेव छवि-हीन वसन-भूषन अभिलाखै।
बैरीसों भयभीत होय, सो आयुध राखै॥
तुम सुन्दर सर्वंग, शत्रु समरथ नहिं कोई।
भूषन-वसन गदादि ग्रहन काहे को होई॥१९॥

सुरपति सेवा करै, कहा प्रभु, प्रभुता तेरी।
सो सलाघना लहै, मिटै जगसों जगफेरी॥
तुम भवजलधि जिहाज तोहि शिवकंत उचरिये।
तुही जगतजन-पाल, नाथ, थुति की थुति करिये॥२०॥

वचन-जाल जड़-रूप, आप चिन्मूरति झाँई।
तातैं थुति आलाप नाहिं, पहुँचे तुम ताँई॥
तौ भी निर्फल नाहिं भक्ति-रस-भीने बायक।
सन्तन को सुरतरु समान वांछित वर-दायक॥२१॥

कोप कभी नहिं करो, प्रीति कबहूँ नहिं धारो।
अति उदास बेचाह चित्त, जिनराज तिहारो॥
तदपि आन जग बहै बैर तुम निकट न लहिये।
यह प्रभुता जगतिलक कहाँ तुम बिन सरदहिये॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव स्तोतुं त्रिदिव-गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थाः
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः ॥२३॥

चित्ते कुर्वन्निरवधि-सुख-ज्ञान-दृग्वीर्य-रूपं
देव त्वां यः समय-नियमादादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥२४॥

(शार्दूलविक्रीड़ित)

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवन-छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुर-तिय गावैं सुजस सर्व गति ज्ञान-सरूपी।
जो तुमको थिर होय नमैं भवि आनन्द-रूपी॥
ताहि क्षेमपुर चलन वाट बाकी नहिं हो है।
श्रुत के सुमरन माहिं सो न कबहूँ नर मोहै॥२३॥

अतुल-चतुष्टय-रूप तुम्हें जो चित में धारै।
आदरसौं तिहुँकाल माहिं जग-थुति विस्तारै॥
सो सुक्रत शिवपंथभक्ति रचना कर पूरैं।
पंचकल्यानक ऋद्धि पाय निहचैं दुख चूरैं॥२४॥

अहो जगतपति पूज्य, अवधिज्ञानी मुनि हारे।
तुम गुन कीर्तन माहिं, कौन हम मंद विचारे॥
थुति-छलसों तुम-विषैं देव आदर विस्तारे।
शिव-सुख पूरनहार कलप-तरु यही हमारे॥२५॥

वादिराज मुनितैं अनु वैयाकरणी सारे।
वादिराज मुनितैं अनु तार्किक विद्यावारे॥
वादिराज मुनितैं अनु हैं काव्यन के ज्ञाता।
वादिराज मुनितैं अनु हैं भविजन के त्राता॥२६॥

(दोहा)

मूल अर्थ बहुविध कुसुम, भाषा सूत्र मँझार।
भक्तिमाल 'भूधर' करी, धरो कंठ सुखकार॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयंभू स्तोत्र

श्री आदिनाथ जिन-स्तुति

स्वयम्भुवा भूत-हितेन भूतले,
समञ्जस-ज्ञान-विभूति-चक्षुषा।
विराजितं येन विधुन्वता तमः,
क्षपाकरेणेव गुणौत्करैः करैः ॥१॥

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः,
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः।
प्रबुद्धतत्त्वः पुनरद्भुतोदयो,
ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥२॥

विहाय यः सागर-वारि-वाससं,
वधूमिवेमां वसुधा-वधूं सतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु-कुलादिरात्मवान्,
प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥३॥

स्व-दोष-मूलं स्व-समाधि-तेजसा,
निनाय यो निर्दय-भस्मसात्क्रियाम्।
जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा,
बभूव च ब्रह्म-पदामृतेश्वरः ॥४॥

स विश्व-चक्षुर्वृषभोऽर्चितः सतां,
समग्र-विद्याऽऽत्म-वपुर्निरञ्जनः।
पुनातु चेतो मम नाभि-नन्दनो,
जिनोऽजित-क्षुल्लक-वादि-शासनः ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद

श्री आदिनाथ जिन-स्तुति

(गीता छन्द)

जो हुये हैंअरहन्त आदि, स्वयं बोध सम्हारके।
जो परम निर्मल ज्ञान चक्षु, प्रकाश भवतम हारके॥
निज पूर्ण गुणमय वचन कर से, जग अज्ञान मिटा दिया।
सो चन्द्र सम भवि जीव हितकर, जगत माहिं प्रकाशिया॥ १॥

सो प्रजापति हो प्रथम जिसने, प्रजा को उपदेशिया।
असि कृषि आदि कर्म से, जीवन उपाय बता दिया॥
फिर तत्त्वज्ञानी परमविद,अद्भुत उदय धर्तार ने।
संसार भोग ममत्व टाला, साधु संयम धारने॥२॥

इन्द्रियजयी, इक्ष्वाकुवंशी मोक्ष की इच्छा करे।
सो सहनशील सुगाढ व्रत में, साधु संयम को धरे॥
निज भूमि महिला त्याग दी, जो थी सती नारी समा।
यह सिन्धु जल है वस्त्र जिसका, और छोड़ी सब रमा॥ ३॥

निज ध्यान अग्नि प्रभाव से रागादि मूलक कर्म को।
करुणा बिना है भस्म कीने चार घाति कर्म को॥
अरहन्त हो जग प्राणि हित सत् तत्त्व का वर्णन किया।
फिर सिद्ध हो निज ब्रह्मपद अमृतमई सुख नित पिया॥ ४॥

जो नाभिनन्दन वृषभ जिन सब कर्म मल से रहित हैं।
जो ज्ञान तन धारी प्रपूजित साधुजन कर सहित हैं॥
जो विश्वलोचन लघु मतों को जीतते निज ज्ञान से।
जो आदिनाथ पवित्र कीजे, आत्म मम अघ खान से॥ ५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अजितनाथ जिन-स्तुति

यस्य प्रभावात् त्रिदिव-च्युतस्य
क्रीडास्वपि क्षीबमुखाऽरविन्दः,
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धु-वर्ग-
श्चकार नामाऽजित इत्यबन्ध्यम् ॥ ६ ॥

अद्याऽपि यस्याऽजितशासनस्य
सतां प्रणेतुः प्रतिमङ्गलार्थम् ।
प्रगृह्यते नाम परम-पवित्रं
स्वसिद्धि-कामेन जनेन लोके ॥ ७ ॥

यः प्रादुरासीत्प्रभु-शक्ति-भूम्ना
भव्याऽऽशयालीन-कलङ्क-शान्त्यै ।
महामुनिर्मुक्त-घनोपदेहो
यथाऽरविन्दाऽभ्युदयाय भास्वान् ॥८ ॥

येन प्रणीतं पृथु धर्म-तीर्थं
ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम् ।
गाङ्गं ह्रदं चन्दन-पङ्क-शीतं
गज-प्रवेका इव घर्म-तप्ताः ॥ ९ ॥

स ब्रह्मनिष्ठः सम-मित्र-शत्रु-
र्विद्या-विनिर्वान्त-कषाय-दोषः ।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा
जिन-श्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥१० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अजितनाथ जिन-स्तुति

(मालिनी छन्द)

दिवि से प्रभु आकर जन्म जब मात लीना।
घर के सब बन्धु मुखकमल हर्ष कीना॥
क्रीडा करते भी जिन विजय पूर्ण पाई।
अजित नाम रक्खा जो प्रगट अर्थ दाई॥६॥

अब भी जग लेते नाम भगवत् अजित का।
सत् शिवमगदाता वर अजित तीर्थङ्कर का॥
मंगल कर्ता है परम शुचि नाम जिनका।
निज कारज का भी लेत नित नाम उनका॥७॥

जिम सूर्य प्रकाशे, मेघदल को हटाकर।
कमल वन प्रफुल्लैं, सब उदासी घटाकर॥
तिम मुनिवर प्रगटे, दिव्य वाणी छटाकर।
भवि गए आशय गत, मल कलंक मिटाकर॥८॥

जिसने प्रगटाया धर्म भव पारकर्ता।
उत्तम अति ऊँची, जान जन-दुःख हरता॥
चंदन सम शीतल, गङ्ग ह्रद में नहाते।
बहु घाम सताए हस्तिवर शांति पाते॥९॥

निज ब्रह्म रमानी, मित्र शत्रु समानी।
ले ज्ञान कृपाणी, रोषादि दोष हानी॥
लहि आतम लक्ष्मी, निजवशी जीत कर्मा।
भगवन अजितेश, दीजिए श्री स्वशर्मा॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शम्भवनाथ जिन-स्तुति

त्वं शम्भवः सम्भव-तर्ष-रोगैः
सन्तप्यमानस्य जनस्य लोके।
आसीरिहाऽऽकस्मिक एव वैद्यो
वैद्यो यथाऽनाथरुजां प्रशान्त्यै ॥११॥

अनित्यमत्राणमहंक्रियाभिः
प्रसक्त-मिथ्याऽध्यवसाय-दोषम्।
इदं जगज्जन्म-जराऽन्तकार्त्तं
निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥१२॥

शतह्रदोन्मेष-चलं हि सौख्यं
तृष्णामयाऽप्यायन-मात्र-हेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं
तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥१३॥

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू
बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं
नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥१४॥

शक्रोऽप्यशक्तस्तव पुण्यकीर्तेः
स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः।
तथाऽपि भक्त्या स्तुत-पाद-पद्मो
ममार्य ! देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसंभवनाथजिन-स्तुति

(भुजंगप्रयात छन्द)

तूही सौख्यकारी जग में नरों को।
कुतृष्णा महाव्याधि पीडित जनों को॥
भयानक परम वैद्य है रोगहारा।
यथा वैद्य ने दीन का रोग टारा॥११॥

दशा जग अनित्य शरण है न कोई।
अहं मम मई दोष मिथ्यात्व वोई॥
जरा-जन्म-मरण सदा दुख करे है।
तुही टाल कर्म, परम शान्ति दे है॥१२॥

बिजली सम चंचल सुख विषय का।
करै वृद्धि तृष्णामई रोग जिय का॥
सदा दाह चित्त में कुतृष्णा बढ़ावे।
जगत दुख भोगे, प्रभु हम बतावे॥१३॥

जु है मोक्ष बन्ध व है हेतु उनका।
बन्धा अर खुला जिय, फल जो छुटन का॥
प्रभू स्याद्वादी, तुम्हीं ठीक कहते।
न एकांत मत के कभी पार लहते॥१४॥

जहाँ इन्द्र भी हारता गुणकथन में।
कहाँ शक्ति मेरी तुझी थुति करन में॥
तदपि भक्तिवश पुण्य यश गान करता।
प्रभू दीजिए नित शिवानन्द परता॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अभिनन्दननाथ जिन-स्तुति

गुणाऽभिनन्दादभिनन्दनो भवान्
दया-वधूं क्षान्ति-सखीमशिश्रियत् ।
समाधि-तन्त्रस्तदुपोपपत्तये
द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य-गुणेन चाऽयुजत् ॥ १६ ॥

अचेतने तत्कृत-बन्धजेऽपि च
ममेदमित्याभिनिवेशिक-ग्रहात् ।
प्रभंगुरे स्थावर-निश्चयेन च
क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद्भवान् ॥ १७ ॥

क्षुदादि-दुःख-प्रतिकारतः स्थिति-
र्न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाऽल्प-सौख्यतः ।
ततो गुणो नास्ति च देह-देहिनो-
रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥ १८ ॥

जनोऽतिलोप्यनुबन्धदोषतो
भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते ।
इहाऽप्यमुत्राऽप्यनुबन्धदोषवित्
कथं सुखे संसजतीति चाऽब्रवीत् ॥ १९ ॥

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्
तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः ।
इति प्रभो ! लोक-हितं यतो मतं
ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीअभिनन्दननाथजिन-स्तुति

(छन्द स्रग्विनी)

आत्मगुण वृद्धि से नाथ अभिनन्दना।
धर अहिंसा वधू, शान्ति सेवित घना॥
आत्ममय ध्यान की, सिद्धि के कारणे।
होय निर्ग्रन्थ पर, दोय विधि टारने॥१६॥

तन अचेतन यही, और तिस योग तें।
प्राप्त संबंध में, आपपन मानते॥
जो क्षणिक वस्तु है, थिरपना देखते।
नाश जग देख प्रभु, तत्त्व उपदेशते॥१७॥

क्षतु तृषा रोग प्रतिकार बहु ठानते।
अक्ष सुख भोग कर तृप्ति नहिं मानते॥
थिर नहीं जीव तन, हित न हो दौड़ना।
यह जगत रूप भगवान विज्ञापना॥१८॥

लोलुपी भोग जन, नहिं अनीती करे।
दोष को देख जग, भय सदा उर धरे॥
है विषय मग्नता, दोउ भव हानिकर।
सुज्ञ क्यों लीन हो, आप मत जानकर॥१९॥

है विषयलीनता, प्राणि को ताप कर।
है तृषा वृद्धिकर, हो न सुख से वसर॥
हे प्रभो! लोकहित, आप मत मान के।
साधु जब शर्ण ले, आप गुरु मान के॥ २०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुमतिनाथ जिन-स्तुति

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं,
स्वयं मतं येन सुयुक्ति-नीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति,
सर्व-क्रिया-कारक-तत्त्व-सिद्धिः ॥२१॥

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं,
भेदाऽन्वयज्ञानमिदं हि सत्यम्।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे,
तच्छेषलोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥२२॥

सतः कथञ्चित्तदसत्त्व-शक्तिः,
खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम् ।
सर्व-स्वभाव-च्युतमप्रमाणं,
स्व-वाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥२३॥

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति,
न च क्रिया-कारकमत्र युक्तम्।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो,
दीपस्तमः पुद्गलभावतोऽस्ति ॥२४॥

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ,
विवक्षया मुख्य-गुण-व्यवस्था।
इति प्रणीतिः सुमतेस्तवेयं,
मति-प्रवेकः स्तुवतोऽस्ति नाथ! ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसुमतिनाथजिन-स्तुति

(त्रोटक छन्द)

मुनिनाथ सुमति सत् नाम धरे,
सत् युक्तिमई मत तुम उचरे॥
तुम भिन्न मतों में नाहिं बने,
सब कारज कारक तत्त्व घने॥२१॥

है तत्त्व अनेक व एक वही,
तत्त्व भेद अभेदहि ज्ञान सही॥
उपचार कहो तो सत्य नहीं,
इक हो अन ना वक्तव्य नहीं॥२२॥

है सत्त्व असत्त्व सहित कोई नय,
तरु पुष्प रहे न हि व्योम कलप॥
तव दर्शन भिन्न प्रमाण नहीं,
स्व स्वरूप नहीं कथमान नहीं॥२३॥

जो नित ही होता नाश उदय,
नहिं, हो न क्रिया, कारक न सधय॥
सत् नाश न हो नहिं जन्म असत्,
जु प्रकाश भये पुद्गल तम सत्॥२४॥

विधि व निषेध सापेक्ष सही,
गुण मुख्य कथन स्याद्वाद यही॥
इम तत्त्व प्रदर्शी आप सुमति,
थुति नाथ करूँ हो श्रेष्ठ सुमति॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पद्मप्रभ जिन-स्तुति

पद्मप्रभ: पद्म-पलाश-लेश्य:,
पद्मालयाऽऽलिङ्गितचारुमूर्ति: ।
बभौ भवान् भव्य -पयोरुहाणां,
पद्माकराणामिव पद्मबन्धु: ॥२६ ॥

बभार पद्मां च सरस्वतीं च
भवान् पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्या: ।
सरस्वतीमेव समग्र-शोभां
सर्वज्ञ-लक्ष्मीज्वलितां विमुक्त: ॥ २७ ॥

शरीर-रश्मि-प्रसर: प्रभोस्ते
बालार्क-रश्मिच्छविराऽऽलिलेप ।
नराऽमराऽऽकीर्ण-सभां प्रभा वा
शैलस्य पद्माभमणे: स्वसानुम् ॥ २८ ॥

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं
सहस्रपत्राऽम्बुज-गर्भचारै: ।
पदाऽम्बुजै: पातित-मार-दर्पो
भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥ २९ ॥

गुणाम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्य
नाऽऽखंडल: स्तोतुमलं तवर्षे: ।
प्रागेव मादृक्किमुताऽतिभक्ति-
र्मां बालमालापयतीदमित्थम् ॥ ३० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

श्रीपद्मप्रभजिन-स्तुति

(मुक्तादाम छन्द)

पद्मप्रभ पद्म समान शरीर,
शुचि लेश्याधर रूप गम्भीर ॥
परम श्री शोभित मूर्ति प्रकाश,
कमल सूरजवत भव्य विकाश ॥ २६ ॥

धरत ज्ञानादि ऋद्धि अविकार,
परम ध्वनि चारु समवसृत सार ॥
रहे अरहन्त परम हितकार,
धरी बोध श्री मुक्ति मंझार ॥ २७ ॥

प्रभू तन रश्मिसमूह प्रसार,
बाल सूर्य सम छवि धरतार ॥
नर सुर पूर्ण सभा में व्यापा,
जिम गिरि पद्मराग मणि तापा ॥ २८ ॥

सहस पत्र कमलों पर विहरे,
नभ में मानो पल्लव प्रसरे ॥
कामदेव जेता जिनराजा,
करत प्रजा का आतम काजा ॥ २९ ॥

तुम ऋषि गुण सागर गुण लव भी,
कथन न समरथ इन्द्र कभी भी ॥
हूँ बालक कैसे गुण गाऊँ,
गाढ़ भक्ति से कुछ कह गाऊँ ॥३० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

श्री सुपार्श्वनाथ जिन-स्तुति

स्वाथ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां,
स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा।
तृषोऽनुषंगान्न च तापशान्ति-
रितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः ॥३१॥

अजङ्गमं जङ्गम-नेय-यन्त्रं,
यथा तथा जीव-धृतं शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च,
स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्यः ॥३२॥

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं,
हेतु-द्वयाऽऽविष्कृत-कार्य-लिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्त्तः,
संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
नित्य शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः।
तथाऽपि बालो भय-काम-वश्यो,
वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता,
मातेव बालस्य हितानुशास्ता।
गुणाऽवलोकस्य जनस्य नेता,
मयाऽपि भक्त्या परिणूयतेऽद्य ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसुपार्श्व जिन-स्तुति

(छन्द चौपाई)

जय सुपार्श्व भगवन् हित भाषा,
क्षणिक भोग की तज अभिलाषा।
तप्त शान्त नहिं तृष्णा बन्धती,
स्वस्थ रहे नित मनसा सधती ॥३१॥

जिम जड़ यन्त्र पुरुष से चलता,
तिम यह देह जीवधृत पलता।
अशुचि दुखद दुर्गन्धि कुरूपी,
यामें राग कहा दुख रूपी॥ ३२॥

यह भवितव्य अटल बलधारी,
होय अशक्त अहं मतिकारी।
दो कारण बिन कार्य न राचा,
केवल यत्न विफल मत साचा ॥३३॥

डरत मृत्यु से तदपि टलत न,
तिन हित चाहे तदपि लभत ना।
तदपि मूढ़ भयवश हो कामी,
वृथा जलत हिय हो न अकामी ॥३४॥

सर्व तत्त्व के आप हि ज्ञाता,
मात बालवत शिक्षा दाता।
भव्य साधुजन के हो नेता,
मैं भी भक्ति सहित थुति देता ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री चन्दप्रभ जिन-स्तुति

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचि-गौरं
चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं
जिनं जित-स्वान्त-कषाय-बन्धम् ॥३६ ॥

यस्याङ्ग-लक्ष्मी-परिवेश-भिन्नं
तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम्।
ननाश बाह्यं बहु मानसं च
ध्यान-प्रदीपाऽतिशयेन भिन्नम ॥३७ ॥

स्व-पक्ष-सौस्थित्य-मदाऽवलिप्ता
वाक्सिंह-नादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा
गजा यथा केसरिणो निनादैः ॥३८ ॥

यः सर्व-लोके परमेष्ठिताया:
पदं बभूवाऽद्भुत-कर्मतेजाः ।
अनन्त-धामाऽक्षर-विश्वचक्षुः
समन्तदुःख-क्षय-शासनश्च ॥३९ ॥

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां
विपन्न-दोषाऽभ्र-कलङ्क-लेपः ।
व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-मालः
पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ॥४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीचन्द्रप्रभ जिन-स्तुति

(भुजंगप्रयात छन्द)

प्रभू चन्द्रसम शुक्ल वर वर्णधारी,
जगत नित प्रकाशित परम ज्ञानचारी।
जिनं जित कषायं महत पूज्य मुनिपति,
नमूँ चन्द्रप्रभु तू द्वितीय चन्द्र जिनपति ॥३६ ॥

हरैं भानु किरणें यथा तम जगत का,
तथा अंग भामण्डलं तम जगत का।
शुकल ध्यान दीपक जगाया प्रभू ने,
हरा तम कुबोधं स्वयं ज्ञान भू ने ॥३७॥

स्वमत श्रेष्ठता का धरैं मद प्रवादी,
सुनें जिन वचन को तजें मद कुवादी।
यथा मस्त हाथी सुनें सिंह गर्जन,
तजैं मद तथा मोह का हो विसर्जन ॥३८ ॥

तु ही तीन भू में परम पद प्रभू है,
करै कार्य अद्भुत परम तेज तू है।
जगत नेत्रधारी अनन्त प्रकाशी,
रहे नित सकल दुख का तू विनाशी ॥३९ ॥

तु ही चन्द्रमा भवि कुमुद का विकाशी,
किया नाश सब दोष मल मेघराशी।
प्रगट सत् वचनकी किरणमाल व्यापी,
करो मुझ पवित्रं तु ही शुचि प्रतापी ॥४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सुविधिनाथ जिन-स्तुति

एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधि तत्त्वं
प्रमाण-सिद्धं तदतत्स्वभावम्।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना
नैतत्समालीढ-पदं त्वदन्यैः ॥४१॥

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्
तथाप्रतीतेस्तव तत्कथञ्चित्।
नाऽत्यन्तमन्यत्वमनन्यता च
विधेर्निषेधस्य च शून्य-दोषात् ॥४२॥

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते -
र्न नित्यमन्यत्-प्रतिपत्ति-सिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्ग -
निमित्त-नैमित्तिक-योगतस्ते ॥ ४३ ॥

अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं
वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या।
आकांक्षिणः स्यादिति वै निपातो
गुणाऽनपेक्षं नियमेऽपवादः ॥ ४४ ॥

गुण-प्रधानार्थमिदं हि वाक्यं
जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम् ।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां
ममाऽपि साधोस्तव पादपद्मम् ॥ ४५ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

श्री पुष्पदन्त जिन-स्तुति

(पद्धरि छन्द)

हे सुविधि आपने कहा तत्त्व,
जो दिव्यज्ञान से तत् अतत्त्व।
एकान्त हरण सुप्रमाण सिद्ध,
नहिं जान सकै तुमसे विरुद्ध ॥४१ ॥

है अस्ति कथंचित् और नास्ति,
भगवान तुझ मत में यह तथास्ति।
सत् असत्मई भेद रु अभेद,
है वस्तु बीच नहिं शून्य वेद ॥४२ ॥

''यह है वह ही'' है नित्य सिद्ध,
''यह अन्य भया'' यह क्षणिक सिद्ध।
नहिं है विरुद्ध दोनों स्वभाव,
अन्तर बाहर साधन प्रभाव ॥४३ ॥

पद एकानेक स्ववाच्य तास,
जिम वृक्ष स्वतः करते विकास।
यह शब्द स्यात् गुण मुख्यकार,
नियमित नहिं होवे बाध्यकार ॥४४ ॥

गुण मुख्य कथन तव वाक्य सार,
नहिं पचत उन्हें जो द्वेष धार।
लखि आप्त तुम्हें इन्द्रादिदेव,
पद कमलन में मैं करहुँ सेव ॥४५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शीतलनाथ जिन-स्तुति

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो
न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः ।
यथा मुनेस्तेऽनघवाक्य-रश्मयः
शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥४६ ॥

सुखाऽभिलाषाऽनल-दाह-मूर्च्छितं
मनो निजं ज्ञानमयाऽमृताम्बुभिः ।
व्यदिध्यपस्त्वं विष-दाह-मोहितं
यथा भिषग्मन्त्र-गुणैः स्व-विग्रहम् ॥४७ ॥

स्व-जीविते काम-सुखे च तृष्णया
दिवा श्रमार्त्ता निशि शेरते प्रजाः ।
त्वमार्य ! नक्तं-दिवमप्रमत्तवा-
नजागरेवाऽऽत्म-विशुद्ध-वर्त्मनि ॥४८ ॥

अपत्य-वित्तोत्तर-लोक-तृष्णया
तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।
भवन्पुनर्जन्म-जरा-जिहासया
त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत् ॥४९ ॥

त्वमुत्तम-ज्यातिरजः क्व निर्वृतः
क्व ते परे बुद्धि-लवोद्धव-क्षताः ।
ततः स्वनिःश्रेयस-भावनापरै-
र्बुध-प्रवेकैर्जिन ! शीतलेड्यसे ॥५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शीतलनाथ जिन-स्तुति

(स्त्रग्विणी छन्द)

तव अनघ वाक्य किरणें, विशद ज्ञानपति,
शान्त-जल-पूरिता, शमकरा सुष्ठुमति।
है तथा शम न चन्दन, किरण चन्द्रमा,
नाहिं गंगा जलं, हार मोती शमा ॥४६ ॥

अक्ष सुख चाह की आग से तप्त मन,
ज्ञान-अमृत-सुजल सींच कीना शमन।
वैद्य जिम मन्त्र गुण से करे शान्त तन,
सर्व विष की जलन से हुआ बेयतन ॥४७ ॥

भोग की चाह अर चाह जीवन करे,
लोक दिन श्रम करे रात्रि को सो रहे।
हे प्रभु आप तो रात्रि दिन जागिया,
मोक्ष के मार्ग को हर्षयुत साधिया ॥४८ ॥

पुत्र धन और परलोक की चाह कर,
मूढ़ जन तप करें आपको दाह कर।
आपने तो जरा जन्म के नाश हित,
सर्व किरिया तजी शान्तिमय भावहित ॥ ४९ ॥

आप ही श्रेष्ठ ज्ञानी महा हो सुखी,
आपसे जो परे बुद्धि लव मद दुखी।
याहितें मोक्ष की भावना जे करें,
सन्तज़न नाथ शीतल तुम्हें उर धरे ॥५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री श्रेयाँसनाथ जिन-स्तुति

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः
श्रेयः प्रजाः शासदजेयवाक्यः ।
भवांश्चकाशे भुवनत्रयेऽस्मि-
न्नेको यथा वीत-घनो विवस्वान् ॥५१ ॥

विधिर्विषक्त-प्रतिषेधरूपः
प्रमाणमत्राऽन्यतरत्प्रधानम् ।
गुणो परो मुख्य-नियामहेतु-
र्नयः दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥५२ ॥

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो
गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते ।
तथाऽरिमित्राऽनुभयादिशक्ति
द्वयाऽवधेः कार्यकरं हि वस्तु ॥५३ ॥

दृष्टान्त-सिद्धावुभयोर्विवादे
साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति ।
यत्सर्वथैकान्त-नियामि दृष्टं
त्वदीय-दृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥५४ ॥

एकान्त-दृष्टि-प्रतिषेध-सिद्धि-
न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य ।
असि स्म कैवल्य-विभूति-सम्राट्
ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवाऽर्हः ॥५५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री श्रेयाँसनाथ जिन-स्तुति

(छन्द मालिनी)

जिनवर हितकारी वाक्य निर्बाधकारी,
जगत जन सुहितकर मोक्ष-मारग प्रचारी।
जिम मेघ रहित हो सूर्य एकी प्रकाशे,
तिम तुम या जग में एक अद्‌भुत प्रकाशे ॥५१॥

है विधिषेध वस्तु और प्रतिषेध रूपं,
जो जाने युगपत है प्रमाण स्वरूपं।
कोई धर मुख्यं अन्य को गौण करता,
नय अंश प्रकाशी पुष्ट दृष्टान्त करता ॥५२॥

वक्ता इच्छा से मुख्य इक धर्म होता,
तब अन्य विवक्षा बिन गौणता मांहि सोता।
अरि मित्र उभय बिन एक जन शक्ति रखता,
है तुझ मत द्वैतं, कार्य तब अर्थ करता ॥५३॥

जब होय विवादं सिद्ध दृष्टांत चलता,
वह करता सिद्धि जब अनेकान्त चलता।
एकान्त मतों में साधना होय नाहीं,
तव मत है साँचा सर्व साधता तहां ही ॥५४॥

एकान्त मतों के चूर्ण कर्ता तिहारे,
न्यायमई बाणं मोहरिपु जिन संहारे।
तुम ही तीर्थङ्कर केवल ऐश्वर्य धारी,
तातें तेरी ही भक्ति करनी विचारी ॥५५॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

श्री वासुपूज्य जिन-स्तुति

शिवासु पूज्योऽभ्युदय-क्रियासु
त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्र-पूज्यः ।
मयाऽपि पूज्योऽल्प-धिया मुनीन्द्र!
दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥५६ ॥

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे
न निन्दया नाथ! विवान्त-वैरे ।
तथाऽपि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः
पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥५७ ॥

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य
सावद्य-लेशो बहु-पुण्य-राशौ ।
दोषाय नाऽलं कणिका विषस्य
न दूषिका शीत-शिवाऽम्बुराशौ ॥५८ ॥

यद्वस्तु बाह्यं गुण-दोष-सूते -
र्निमित्तमभ्यन्तर-मूलहेतोः ।
अध्यात्म-वृत्तस्य तदङ्गभूत-
मभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥५९ ॥

बाह्येतरोपाधि-समग्रतेयं
कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।
नैवाऽन्यथा मोक्ष-विधिश्च पुंसां
तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री वासुपूज्य जिन-स्तुति

(छन्द)

तुम्हीं कल्याण पञ्च में पूजनीक देव हो,
शक्र राज पूजनीक वासुपूज्यदेव हो।
मैं भी अल्पधी मुनीन्द्र पूज आपकी करूँ,
भानु के प्रपूज काज दीप की शिखा धरूँ ॥५६ ॥

वीतराग हो तुम्हें न हर्ष भक्ति कर सके,
वीतद्वेष हो तुम्हीं, न क्रोध शत्रु हो सके।
सार गुण तथापि हम कहें महान भाव से,
हो पवित्र चित्त हम हटें मलीन भाव से ॥५७ ॥

पूजनीक देव आप पूजके सुचाव से,
बाँधते महान पुण्य जन विशुद्ध भाव से।
अल्प अघ न दोषकर यथा न विष कणा करे,
शीत शुचि समुद्र नित्य शुद्ध ही रहा करे ॥५८ ॥

वस्तु बाह्य है निमित्त पुण्य पाप भाव का,
है सहाय मूलभूत अन्तरंग भाव का।
वर्तता स्वभाव में उसे सहायकार है,
मात्र अन्तरंग हेतु कर्म बन्धकार है ॥५९ ॥

बाह्य अन्तरंग हेतु पूर्णता लहाय है,
कार्य सिद्ध तहां होय द्रव्यशक्ति पाय है।
और भाँति मोक्षमार्ग होय ना भवीनि को,
आप ही सुवन्दनीय हो गुणी ऋषीनि को ॥६० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री विमलनाथ जिन-स्तुति

य एव नित्य-क्षणिकादयो नया
मिथोऽनपेक्षाः स्व-पर-प्रणाशिनः ।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः
परस्परेक्षा स्व-परोपकारिणः ॥६१ ॥

यथैकशः कारकमर्थ-सिद्धये
समीक्ष्य शेषं स्व-सहाय-कारकम् ।
तथैव सामान्य-विशेष-मातृका
नयास्तवेष्टा गुण-मुख्य-कल्पतः ॥६२ ॥

परस्परेक्षाऽन्वय-भेद-लिङ्गतः
प्रसिद्ध-सामान्य-विशेषयोस्तव ।
समग्रताऽस्ति स्व-पराऽवभासकं
यथा प्रमाणं भुवि बुद्धि-लक्षणम् ॥६३ ॥

विशेष्य-वाच्यस्य विशेषणं वचो
यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत् ।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते
विवक्षितात्स्यादितितेऽन्यवर्जनम् ॥६४ ॥

नयास्तव स्यात्पद-सत्य-लाञ्छिता
रसोपविद्धा इव लोह-धातवः ।
भवन्त्यभिप्रेत-गुणा यतस्ततो
भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥६५ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

श्री विमलनाथ जिन-स्तुति

(भुजंगप्रयात छन्द)

नित्यत्व अनित्यत्व नयवाद सारा,
अपेक्षा बिना आप पर नाशकारा।
अपेक्षा सहित है स्व पर कार्यकारी,
विमलनाथ तुम तत्त्व ही अर्थकारी ॥६१॥

यथा एक कारण नहीं कार्य करता,
सहायक उपादान से कार्य सरता।
तथा नय कथन मुख्य गौणं करत है,
विशेष वा सामान्य सिद्धि करत है ॥६२॥

हर एक वस्तु सामान्य विशेषं,
अपेक्षा कृतं भेद अभेदं सुलेखं।
यथा ज्ञान जग में वही है प्रमाणं,
लखे एक हम आप पर तुम बखानं ॥६३॥

वचन है विशेषण उसी वाच्य का ही,
जिसे वह नियम से कहे अन्य नाहीं।
विशेषण विशेष्य न हो अति प्रसंग,
जहां स्यात् यह हो न हो अन्य संग ॥६४॥

यथा लोह रसबद्ध हो कार्य कारी,
तथा स्यात् सुचिह्नित सुनय कार्यकारी।
कहा आपने सत्य वस्तु स्वरूपं,
मुमुक्षु भविक वन्दते आप रूपं ॥६५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तनाथ जिन-स्तुति

अनन्त-दोषाऽऽशय-विग्रहो ग्रहो
विषङ्गवान्मोह-मयश्चिरं हृदि।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता
त्वया ततोऽभूर्भगवाननन्तजित् ॥६६ ॥

कषाय-नाम्नां द्विषतां प्रमाथिना-
मशेषयन्नाम भवानशेषवित्।
विशोषणं मन्मथ-दुर्मदाऽऽमयं
समाधि-भैषज्य-गुणैर्व्यलीनयत ॥६७ ॥

परिश्रमाऽम्बुर्भय-वीचि-मालिनी
त्वया स्वतृष्णा-सरिदाऽऽर्य! शोषिता।
असङ्ग-घर्मार्क-गभस्ति-तेजसा
परं ततो निर्वृति-धाम तावकम् ॥६८ ॥

सुहृत्त्वयि श्री-सुभगत्वमश्नुते
द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत् प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि
प्रभो ! परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥६९ ॥

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम
प्रलाप-लेशोऽल्प-मतेर्महामुने!
अशेष-माहात्म्यमनीरयन्नपि
शिवाय संस्पर्श इवाऽमृताम्बुधेः ॥७० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीअनन्तनाथ जिन-स्तुति

(पद्धरि छन्द)

चिर चितवासी मोही पिशाच,
तन जिस अनन्त दोषादि राच।
तुम जीत लिया निज रुचि प्रसाद,
भगवंन अनन्त जिन सत्य वाद ॥६६ ॥

कल्मषकारी रिपु चव कषाय,
मन्मथमद रोग जु तापदाय।
निज ध्यान औषधि गुण प्रयोग,
नाशे हूवे सबवित् सयोग ॥६७ ॥

है खेद-अम्बु भयगण-तरंग,
ऐसी सरिता तृष्णा अभंग।
सोखी अभंग रविकर प्रताप,
हो मोक्ष-तेज जिनराज आप ॥६८ ॥

तुम प्रेम करें वे धन लहंत,
तुम द्वेष करे हो नाशवन्त।
तुम दोनों पर हो वीतराग,
तुम धारत हो अद्‌भुत सुहाग ॥६९ ॥

तुम ऐसे हो वैसे मुनीश,
मुझ अल्प बुद्धि का कथन ईश।
नहिं समरथ सर्व महात्म ज्ञान,
सुखकर अमृत-सागर समान ॥७० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री धर्मनाथ जिन-स्तुति

धर्म-तीर्थमनघं प्रवर्तयन्
धर्म इत्यनुमत: सतां भवान्।
कर्म-कक्षमदहत्तपोऽग्निभि:
शर्म शाश्वतमवाप शङ्कर: ॥७१ ॥

देव-मानव-निकाय-सत्तमै-
रेजिषे परिवृतो वृतो बुधै: ।
तारका-परिवृतोऽतिपुष्कलो
व्यमनीव शश-लाञ्छनोऽमल: ॥७२ ॥

प्रातिहार्य-विभवै: परिष्कृतो
देहतोऽपि विरतो भवानभूत्।
मोक्षमार्गमशिषन्नरामरान्
नाऽपि शासन-फलैषणाऽऽतुर: ॥७३ ॥

काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो
नाऽभवस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नाऽसमीक्ष्य भवत: प्रवृत्तयो
धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४ ॥

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्
देवतास्वपि च देवता यत: ।
तेन नाथ ! परमाऽसि देवता
श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद न: ॥७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री धर्मनाथ जिन-स्तुति

(स्रग्विणी छन्द)

धर्म सत् तीर्थ को जग प्रवर्तन किया,
धर्म ही आप हैं साधुजन लख लिया।
ध्यानमय अग्नि से कर्मघन दग्ध कर,
सौख्य शाश्वत लिया सत्त्व शंकर अमर ॥७१ ॥

देव मानव भविकवृन्द से सेवितं,
बुद्ध गणधर प्रपूजित महाशोभितं।
जिस तरह चन्द्र नभ में सुनिर्मल लसे,
तारका वेष्ठितं शांतिमय हुल्लसे ॥७२ ॥

प्रतिहारज विभव आपके राजती,
देह से भी नहीं रागता छाजती।
देव मानव सुहित मोक्षमग कह दिया,
होय शासन फलं यह न चित में दिया ॥७३ ॥

आपकी मन वचन काय की सब क्रिया,
होय इच्छा बिना कर्म कृत यह क्रिया।
हे मुने! ज्ञान बिन है न तेरी क्रिया,
चित नहीं कर सकै भान अद्भुत क्रिया ॥७४ ॥

आपने मानुषी भाव को लांघकर,
देव गण से महा पूज्यपन प्राप्त कर।
हो महादेव आप, हे धरमनाथजी,
दीजिए मोक्ष पद हाथ श्री साथजी ॥७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शान्तिनाथ जिन-स्तुति

विधाय रक्षां परतः प्रजानां
राजां चिरं योऽप्रतिम-प्रतापः ।
व्यधात्पुरस्तात्स्वत एव शान्ति-
र्मुनिर्दया-मूर्तिरिवाऽघशान्तिम् ॥७६ ॥

चक्रेण यः शत्रु-भयङ्करेण
जित्वा नृपः सर्व-नरेन्द्र-चक्रम् ।
समाधि-चक्रेण पुनर्जिगाय
महोदयो दुर्जय-मोह-चक्रम् ॥७७ ॥

राज-श्रिया राजसु राज-सिंहो
रराज यो राज-सुभोग-तन्त्रः ।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्म-तन्त्रो
देवा सुरोदार-सभे रराज ॥७८ ॥

यस्मिन्नभूद्राजनि राज-चक्रं
मुनौ दया-दीधिति-धर्म-चक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देव-चक्रं
ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्त-चक्रम् ॥७९ ॥

स्वदोष-शान्त्या विहिताऽऽत्मशान्तिः
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद्भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥८० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीशान्तिनाथ जिन-स्तुति

(नाराच छन्द)

परम प्रताप धर जु शान्तिनाथ राज्य बहु किया,
महान शत्रु को विनाश सर्व जन सुखी किया।
यतीश पद महान धार दयामूर्ति बन गये,
आप ही से आपके कुपाप सब शमन भये ॥७६ ॥

परम विशाल चक्र से जु सर्व शत्रु भयकरं,
नरेन्द्र के समूह को सुजीत चक्रधर वरं।
हुये यतीश आत्मध्यान चक्र को चलाइया,
अजेय मोह नाश के महाविराग पाइया ॥७७ ॥

राजसिंह राज्यकीय भोग या स्वतंत्र हो,
शोभते नृपों के मध्य राज्य लक्ष्मीतन्त्र हो।
पाय के अरहन्त लक्ष्मी आप में स्वतंत्र हो,
देव नर उदार सभा शोभते स्वतंत्र हो ॥७८ ॥

चक्रवर्ति पद नृपेन्द्र-चक्र हाथ जोड़िया,
यतीश पद में दयार्द्र धर्मचक्र वश किया।
अर्हन्त पद देव-चक्र हाथ जोड़ नत किया,
चतुर्थ शुक्लध्यान कर्म नाश मोक्षवर लिया ॥७९ ॥

राग द्वेष नाश आत्म शान्ति को बढ़ाइया,
शरण जु लेय आपकी वही सुशांति पाइया।
भगवन् शरण्य शान्तिनाथ भाव ऐसा सदा,
दूर हो संसार कलेश भय न हो मुझे कदा ॥८० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री कुन्थुनाथ जिन-स्तुति

कुन्थु-प्रभृत्यखिल-सत्त्व- दयैकतानः
कुन्थुर्जिनो ज्वर-जरा-मरणोपशान्त्यै।
त्वं धर्म-चक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै
भूत्वा पुरा क्षितिपतीश्वर-चक्रपाणिः ॥८१॥

तृष्णाऽर्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थ-विभवैः परिवृद्धिरेव।
स्थित्यैव काय-परिताप-हरं निमित्त-
मित्यात्मवान् विषय-सौख्य-पराङ्मुखोऽभूत् ॥८२॥

बाह्यं तपः परम-दुश्चरमाचरस्त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसःपरिबृंहणार्थम्।
ध्यानं निरस्य कलुष-द्वयमुत्तरस्मिन्
ध्यान-द्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥

हुत्वा स्व-कर्म-कटुक-प्रकृतीश्चतस्रो
रत्नत्रयाऽतिशय-तेजसि जात-वीर्यः।
बभ्राजिषे सकल-वेद-विधेर्विनेता
व्यभ्रे यथा वियति दीप्त-रुचिर्विवस्वान् ॥८४॥

यस्मान्मुनीन्द्र ! तव लोक-पितामहाद्या
विद्या-विभूति-कणिकामपि नाप्नुवन्ति।
तस्माद्भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्व-हितैकतानाः ॥८५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीकुन्थुनाथजिन-स्तुति

(छन्द त्रोटक)

जय कुन्थुनाथ नृप चक्रधरं,
यति हो कुन्थवादि दयार्द्र परं।
तुम जन्म-जरा मरणादि शमन,
शिवहेतु धर्मपथ प्रगट करन ॥८१ ॥

तृष्णाग्नि दहत नहिं होय शमन,
मन-इष्ट भोगकर होय बढ़न।
तन-ताप-हरण कारण भोगं,
इम लख निजविद् त्यागे भोगं ॥८२ ॥

बाहर तप दुष्कर तुम पाला,
जिन आतम ध्यान बढ़े आला।
द्वय ध्यान अशुभ नहिं नाथ करे,
उत्तम द्वय ध्यान महान धरे ॥८३ ॥

निज घाती कर्म विनाश किये,
रत्नत्रय तेज स्ववीर्य लिये।
सब आगम के वक्ता राजै,
निर्मल नभ जिम सूरज छाजै ॥८४ ॥

यतिपति तुम केवलज्ञान धरे,
ब्रह्मादि अंश नहिं प्राप्त करे।
निज हित रत आर्य सुधी तुमको,
अज ज्ञानी अर्ह नमैं तुमको ॥८५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अरनाथ जिन-स्तुति

गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्व-कथा स्तुतिः।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥८६॥

तथाऽपि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामाऽपि कीर्तितम्।
पुनाति पुण्य-कीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥८७॥

लक्ष्मी-विभव-सर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्र-लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाऽभवत् ॥८८॥

तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहु-विस्मयः ॥८९॥

मोहरूपो रिपुः पापः कषाय-भट-साधनः।
दृष्टि-संविदुपेक्षाऽस्त्रैस्त्वया धीर! पराजितः ॥९०॥

कन्दर्पस्योद्धर दर्पस्त्रैलोक्य-विजयार्जितः।
ह्रे पयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥९१॥

आयत्यां च तदात्वे च दुःख-योनिर्दुरुत्तरा।
तृष्णा-नदी त्वयोत्तीर्णा विद्या-नावा विविक्तया ॥९२॥

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्म-ज्वर-सखःसदा।
त्वामन्तकाऽन्तकं प्राप्य व्यावृत्तः काम-कारतः ॥९३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री अरनाथ जिन-स्तुति

(पद्धरि छन्द)

गुण थोड़े बहुत कहे बढ़ाय, जग में थुति सो ही नाम पाय।
तेरे अनन्त गुण किम कहाय, स्तुति तेरी कोई विधि न थाय ॥८६ ॥

तो भी मुनीन्द्र शुचि कीर्तिधार, तेरा पवित्र शुभ नाम सार।
कीर्तन से मन हम शुद्ध होय, तातैं कहना कुछ शक्ति जोय ॥८७ ॥

तुम मोक्ष चाह को धार नाथ, जो भी लक्ष्मी सम्पूर्ण साथ।
सब चक्र चिह्न सह-भरत-राज्य, जीरण तृणवत् छोड़ा सुराज्य ॥८८ ॥

तुम रूप परम सुन्दर विराज, देखन को उमगा इन्द्रराज।
दो-लोचन-धर कर सहस नयन, नहिं तृप्त हुआ आश्चर्य भरन ॥८९ ॥

जो पापी सुभट कषाय धार, ऐसा रिपु मोह अनर्थकार।
सम्यक्त्व ज्ञान संयम सम्हार, इन शस्त्रन से कीना संहार ॥९० ॥

यह काम धरत बहु अहंकार, त्रय लोक प्राणिगण विजयकार।
तुमरे ढिग पाई उदयहार, तब लज्जित हुआ है अपार ॥९१ ॥

तृष्णा सरिता है अति उदार, दुस्तर इह-परभव दुःखकार।
विद्या-नौका चढ़ रागरिक्त, उतरे तुम पार प्रभु विरक्त ॥९२ ॥

यमराज जगत को शोककार, नित जरा जन्म द्वै सखा धार।
तुम यमविजयी लख हो उदास, निज कार्य करन समरथ न तास ॥९३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूषा-वेषाऽऽयुध-त्यागि विद्या-दम-दया-परम्।
रूपमेव तवाऽऽचष्टे धीर! दोष-विनिग्रहम् ॥९४॥

समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मं ध्यान तेजसा ॥९५॥

सर्वज्ञ-ज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदयः।
कं न कुर्यात्प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ! सचेतनम् ॥९६॥

तव वागमृतं श्रीमत्सर्व-भाषा-स्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥

अनेकान्तात्मदृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात्तदयुक्तं स्वघाततः ॥९८॥

ये पर-स्खलितोन्निद्राः स्व-दोषेभ-निमीलनाः।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मत-श्रियः ॥९९॥

ते तं स्वघातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः।
त्वद्द्विषः स्वहनो बालास्तत्त्वाऽवक्तव्यतां श्रिताः ॥१००॥

सदेक-नित्य-वक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥१०१॥

सर्वथा-नियम-त्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥१०२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे धीर! आपका रूप सार, भूषण आयुध वसनादि टार।
विद्या दम करुणामय प्रसार, कहता प्रभु दोष रहित अपार ॥९४ ॥

तेरा वपु भामण्डल प्रसार, हरता सब बाहर तम अपार।
तव ध्यान तेज का है प्रभाव, अन्तर अज्ञान हरै कुभाव ॥९५ ॥

सर्वज्ञ ज्योति से जो प्रकाश, तेरी महिमा का जो विकाश।
है कौन सचेतन प्राणी नाथ, जो नमन करै नहिं नाथ माथ ॥९६ ॥

तुम वचनामृत तत्त्व प्रकाश, सब भाषामय होता विकाश।
सब सभा व्यापकर तृप्तकार, प्राणिन को अमृतवत् विचार ॥९७ ॥

तुम अनेकांत मत ही यथार्थ, यातें विपरीत नहीं यथार्थ।
एकान्त दृष्टि है मृषा वाक्य, निज घातक सर्व अयोग्य वाक्य ॥९८ ॥

एकांती तपसी मान धार, निज दोष निरख गज नयन धार।
ते अनेकांत खण्डन अयोग्य, तुझ मत लक्ष्मी के हैं अयोग्य ॥९९ ॥

एकांती निज घातक जु दोष, समरथ नहिं दूर करण सदोष।
तुम द्वेष धार निज हननकार, मानैं अवाच्य सब वस्तु सार ॥१०० ॥

सत् एक नित्य वक्तव्य वाक्य, या तिन प्रतिपक्षी नय सुवाक्य।
सर्वथा कथन में दोषरूप, यदि स्याद्वाद हों पुष्टरूप ॥१०१ ॥

सर्वथा नियम का त्यागकार, जिस नय श्रुत देखा पुष्टकार।
है 'स्यात' शब्द तुम मत मंझार, निज घाती अन्य न लखें सार ॥१०२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तोप्यनेकान्तः प्रमाण-नय-साधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥१०३ ॥

इति निरुपम-युक्त-शासनः
प्रिय-हित-योग-गुणाऽनुशासनः ।
अर-जिन! दम-तीर्थ-नायक-
स्त्वमिव सतां प्रतिबोधनाय कः ? ॥ १०४ ॥

मति-गुण-विभवानुरूपत-
स्त्वयि-वरदाऽऽगम-दृष्टिरूपतः ।
गुण-कृषमपि किञ्चनोदितं
मम भवताद् दुरितासनोदितम् ॥१०५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है अनेकान्त भी अनेकान्त, साधत प्रमाण नय, बिना ध्वांत।
सप्रमाण दृष्टि है अनेकान्त, कोई नय-मुख से है एकान्त ॥१०३॥

निरुपम प्रमाण से सिद्ध धर्म,
सुखकर हितकर गुण कहत मर्म।
अर जिन! तुम सम जिन तीर्थनाथ,
नहिं कोई भवि बोधक सनाथ ॥१०४॥

मति अपनी के अनुकूल नाथ!
आगम जिन कहता मुक्तिनाथ।
तद्वत गुण अंश कहा मुनीश!
जातें क्षय हों मम पाप ईश ॥१०५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मल्लिनाथ जिन-स्तुति

यस्य महर्षेः सकल-पदार्थ-
प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात्।
साऽमर-मर्त्यं जगदपि सर्वं
प्राञ्जलि भूत्वा प्रणिपतति स्म ॥१०६ ॥

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव
स्व-स्फुरदाभा-कृत-परिवेषा।
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा
स्यात्पद-पूर्वा रमयति साधून् ॥१०७ ॥

यस्य पुरस्ताद्विगलित-माना
न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासी-
ज्जात-विकोशाम्बुज-मृदु-हासा ॥१०८ ॥

यस्य समन्ताज्जिन-शिशिरांशोः
शिष्यक-साधु-ग्रह-विभवोऽभूत्।
तीर्थमपि स्वं जनन-समुद्र-
त्रासित-सत्त्वोत्तरण-पथोऽग्रम् ॥१०९ ॥

यस्य च शुक्लं परमतपोऽग्नि-
र्ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत्।
तं जिन-सिंहं कृतकरणीय
मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥ ११० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमल्लिनाथ जिन-स्तुति

(छन्द त्रोटक)

जिन मल्लि महर्षि प्रकाश किया,
सब वस्तु सुबोध प्रत्यक्ष लिया।
तब देव मनुज जग प्राणि सभी,
कर जोड़ नमन करते सुखधी ॥१०६ ॥

जिनकी मूरत हैं कनकमयी,
प्रसरी भामण्डल रूपमयी।
वाणी जिनकी सत् तत्वकथक,
स्यात्पदपूर्व यतिगण रंजक ॥१०७ ॥

जिन आगे होई गलित माना,
एकान्ती तजैं वाद थाना ॥
विकसित सुवरण अम्बुज दल से,
भू भी हंसती प्रभु पद तल से ॥१०८ ॥

जिन-चन्द्र वचन किरणें चमकें,
चहुँ ओर शिष्य यति-ग्रह दमकें।
निज आत्मतीर्थ अति पावन है,
भावसागर-जन इक तारन है ॥१०९ ॥

जिन शुक्ल ध्यान तप अग्नि बली,
जिससे कर्मौघ अनन्त जली।
जिन सिंह परम कृतकृत्य भये,
निःशल्य मल्लि हम शरण गये ॥११० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मुनिसुव्रत जिन-स्तुति

अधिगत-मुनि-सुव्रत-स्थिति-
र्मुनि-वृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः ।
मुनि-परिषदि निर्बभौ भवा-
नुडु-परिषत्परिवीत-सोमवत् ॥१११ ॥

परिणत-शिखि-कण्ठ-रागया
कृत-मद-निग्रह-विग्रहाभया ।
तव जिन ! तपसः प्रसूतया
ग्रह परिवेष-रुचेव शोभितम् ॥११२ ॥

शशि-रुचि-शुचि-शुक्ल-लोहितं
सुरभितरं विरजो निजं वपुः ।
तव शिवमतिविस्मयं यते !
यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम् ॥११३ ॥

स्थिति-जनन-निरोध-लक्षणं
चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम् ।
इति जिन ! सकलज्ञ-लाञ्छनं
वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥११४ ॥

दुरित-मल-कलङ्कमष्टकं
निरुपम-योग-बलेन निर्दहन् ।
अभवदभव-सौख्यवान् भवान्
भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥११५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मुनिसव्रतनाथ जिन-स्तुति

(स्रग्विणी छन्द)

साधु-उचित व्रतों में सुनिश्चित थये,
कर्म हर तीर्थंकर साधु-सुव्रत भये।
साुधगण की सभा में सुशोभित भये,
चन्द्र जिम उडुगणों से सुवेष्टित भये ॥१११॥

मोर के कण्ठ सम नील रंग रंग है,
काममद जीतकर शान्तिमय अंग है।
नाथ ! तेरी तपस्या जनित अंग जो,
शोभता चन्द्रमण्डल मई रंग जो ॥११२॥

आपके अंग में शुक्ल ही रक्त था,
चन्द्रसम निर्मल रजरहित गन्ध था।
आपका शान्तिमय अद्भुतं तन जिनं,
मनवचन का प्रवर्तन परम शुभ गणं ॥११३॥

जनन व्यय ध्रौव्य लक्षण जगत प्रतिक्षणं,
चित अचित आदि से पूर्ण यह हरक्षणं।
यह कथन आपका, चिह्न सर्वज्ञ का,
है वचन आपका आप्त उत्कृष्ट का ॥११४॥

आपने अष्ट कर्म कलंक महा,
निरूपमं ध्यान बल से सभी है दहा।
भवरहित मोक्ष-सुख के धनी हो गये,
नाश संसार हो भाव मेरे भये ॥११५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री नमिनाथ जिन-स्तुति

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायस-पथे
स्तुयान्न त्वां विद्वान्सततमभिपूज्यं नमि-जिनम् ॥११६॥

त्वया धीमन् ! ब्रह्म-प्रणिधि-मनसा जन्म-निगलं
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्ष-पदवी।
त्वयि ज्ञान-ज्योतिर्विभव-किरणैर्भाति भगव-
न्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः ॥११७॥

विधेयं वार्यं चाऽनुभयमुभयं मिश्रमपि तद्-
विशेषैः प्रत्येकं नियम-विषयैश्चापरिमितैः।
सदाऽन्योन्यापेक्षैः सकल-भुवन-ज्येष्ठ-गुरुणा
त्वया गीत तत्त्वं बहु-नय-विवक्षेतर-वशात् ॥११८॥

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्राऽऽरम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राऽऽश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम-करुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवाऽत्याक्षीन्न च विकृत-वेषोपधि-रतः ॥११९॥

वपुर्भूषा-वेष-व्यवधि-रहितं शान्त-करणं
यतस्ते संचष्टे स्मर-शर-विषाऽऽतङ्क-विजयम्।
विना भीमैः शस्त्रैरदय-हृदयाऽमर्ष-विलयं
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्ति-निलयः ॥१२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री नमिनाथ जिन-स्तुति

(स्रग्विणी छन्द)

साधु जब स्तुति करे भाव निर्मल धरे,
स्तुति हो वा नहीं, फल करै न करै।
इम सुगम मोक्षमग जग स्व-आधीन है,
नमिजिनं आप पूजे गुणाधीन है॥११६॥

आपने सर्ववित्! आत्मध्यानं किया,
कर्म बन्धं जला मोक्षमग कह दिया।
आपमें केवलज्ञान पूरण भया,
अनमती आप रवि-जुगनु सम हो गया॥११७॥

अस्ति नास्ति उभय वानुभय मिश्र तत्,
सप्तभंगीमयं तत् अपेक्षा स्वकृत।
त्रियमितं धर्ममय तत्त्व गाया प्रभू,
नैक नय की अपेक्षा, जगतगुरु प्रभू॥११८॥

अहिंसा जगत ब्रह्म परमं कही है,
जहां अल्प आरंभ वहाँ नहीं रही है।
अहिंसा के अर्थ तजा द्वय परिग्रह,
दयामय प्रभू वेष छोड़ा उपधिमय॥११९॥

आपका अंग भूषण वसन से रहित,
इंद्रियाँ शांत जग कहत तुम कामजित।
उग्र शस्त्र बिना निर्दयी क्रोध जित,
आप निर्मोह, शममय, शरण राख नित॥१२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री नेमिनाथ जिन-स्तुति

भगवानृषिः परम-योग-
दहन-हुत-कल्मषेन्धनः ।
ज्ञान-विपुल-किरणैः सकलं
प्रतिबुद्ध-कमलायतेक्षणाः ॥१२१ ॥

हरिवंश-केतुरनवद्य-
विनय-दम-तीर्थ-नायकः ।
शील-जलधिरभवो विभव-
स्त्वमरिष्टनेमि-जिनकुञ्जरोऽजरः ॥१२२ ॥

त्रिदशेन्द्र-मौलि-मणि-रत्न-
किरण-विसरोपचुम्बितम् ।
पाद-युगलममलं भवतो
विकसत्कुशेशय-दलाऽरुणोदरम् ॥१२३ ॥

नख-चन्द्र-रश्मि-कवचाऽति-
रुचिर-शिखराऽङ्गुलि-स्थलम् ।
स्वार्थ-नियत-मनसः सुधियः
प्रणमन्ति मन्त्र-मुखरा महर्षयः ॥१२४ ॥

द्युतिमद्रथाङ्ग-रवि-बिम्ब-
किरण-जटिलांशुमण्डलः ।
नील-जलद-जल-राशि-वपुः
सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥१२५ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

श्री नेमिनाथ जिन-स्तुति

(छन्द त्रोटक)

भगवन् ऋषि ध्यान सु शुक्ल किया,
ईंधन चहु कर्म जलाय दिया।
विकसित अम्बुजवत् नेत्र धरे,
हरिवंश-केतु, नहिं जरा धरे ॥१२१॥

निर्दोष विनय दम वृष कर्ता,
शुचि ज्ञान किरण जन हित कर्ता।
शीलोदधि नेमि अरिष्ट जिनं,
भवनाश लिए प्रभु मुक्त जिनं ॥१२२॥

तुम पाद कमल युग निर्मल है,
पदतल-द्वय रक्त-कमल-दल है।
नख चन्द्र किरण मण्डल छाया,
अति सुन्दर शिखरांगुलि भाया ॥१२३॥

इन्द्रादि मुकुट मणि किरण फिरै,
तब चरण चूम्बकर पुण्य भरै।
निज हितकारी पण्डित मुनिगण,
मंत्रोच्चारी प्रणमें भविगण ॥१२४॥

द्युतिमय रविसम रथचक्र किरण,
करती व्यापक जिस अंग धरन।
है नील जलद सम तन नीलं,
है केतु गरुड़ जिस कृष्ण हलं ॥१२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हलभृच्च ते स्वजनभक्ति-
　　मुदित-हृदयौ जनेश्वरौ।
धर्म-विनय-रसिकौ सुतरां
　　चरणाऽरविन्द-युगलं प्रणेमतुः ॥१२६॥

ककुदं भुवः खचरयोषि-
　　दुषित-शिखरैरलङ्कृतः।
मेघ-पटल-परिवीत-तट-
　　स्तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥१२७॥

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च
　　सततमभिगम्यतेऽद्य च।
प्रीति-वितत-हृदयैः परितो
　　भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥ १२८ ॥

बहिरन्तरप्युभयथा च
　　करणमविघाति नाऽर्थकृत्।
नाथ ! युगपदखिलं च सदा
　　त्वमिदं तलाऽऽमलकवद्विवेदिथ ॥१२९॥

अत एव ते बुध-नुतस्य
　　चरित-गुणमद्भुतोदयम्।
न्याय-विहितमवधार्य जिने
　　त्वयि सुप्रसन्न-मनसः स्थिता वयम् ॥१३०॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

दौनों भ्राता प्रभु-भक्ति-मुदित,
वृषविनय-रसिक जननाथ उदित।
सहबन्धु नेमिजिन-सभा गये,
युग चरणकमल वह नमत भये ॥१२६॥

भुवि काहि कुमुद गिरनार अचल,
विद्याधरणी सेवित स्वशिखर।
है मेघ पटल छाये जिस तट,
तव चिन्ह उकेरे वज्र-मुकुट ॥१२७॥

इम सिद्धक्षेत्र धर तीर्थ भया,
अब भी ऋषिगण से पूज्य थया।
जो प्रीति हृदयधर आवत है,
गिरनार प्रणम सुख पावत है ॥१२८॥

जिननाथ ! जगत सब तुम जाना,
युगपत जिम करतल अमलाना।
इन्द्रिय वा मन नहिं घात करे,
न सहाय करैं, इम ज्ञान धरे ॥१२९॥

यातें हे जिन ! बुधनुत तव गुण,
अद्भुत प्रभावधर न्याय सुगुण।
चिन्तन कर मन हम लीन भये,
तुमरे प्रणमन तल्लीन भये ॥१३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पार्श्वनाथ जिन-स्तुति

तमाल-नीलैः सधनुस्तडिद्गुणैः ।
प्रकीर्ण-भीमाऽशनि-वायु-वृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरि-वशैरुपतो
महामना यो न चचाल योगतः ॥ १३१ ॥

बृहत्फणा-मण्डल-मण्डपेन
यं स्फुरत्तडित्पिङ्ग-रुचोपसर्गिणम् ।
जुगूह नागो धरणो धराधरं
विराग-संध्या-तडिदम्बुदो यथा ॥ १३२ ॥

स्व-योग-निस्त्रिंश-निशात-धारया
निशात्य यो दुर्जय-मोह-विद्विषम् ।
अवापदाऽऽर्हन्त्यमचित्यमद्भुतं
त्रिलोकपूजातिशयाऽऽस्पदं पदम् ॥ १३३ ॥

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूत-कल्मषं
तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्व-श्रम-बन्ध्य-बुद्धयः
शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥ १३४ ॥

स सत्य-विद्या-तपसां प्रणायकः
समग्रधीरुग्रकुलाऽम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते
विलीन-मिथ्यापथ-दृष्टि-विभ्रमः ॥ १३५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री पार्श्वनाथ जिन-स्तुति

जय पार्श्वनाथ अति धीर वीर,
नीले बादल बिजली गंभीर।
अति उग्र वज्र जल पवन पात,
वैरी उपद्रुत नहिं ध्यान जात ॥१३१॥

धरणेन्द्र नाग निज फण प्रसार,
बिजलीवत् पीत सुरंग धार।
श्री पार्श्व उपद्रुत छाय लीन,
जिम नग तडिदम्बुद सांझ कीन ॥१३२॥

प्रभु ध्यानमयी असि तेजधार,
कीना दुर्जय मोह प्रहार।
त्रैलोक्य पूज्य अद्‌भुत अचिन्त्य,
पाया अर्हन्त पद आत्मचिन्त्य ॥१३३॥

प्रभु देख कर्म से रहित नाथ,
वनवासी तपसी आये साथ ।
निज श्रम असार लख आप चाह,
धरकर शरणा ली मोक्षराह ॥१३४॥

श्री पार्श्व उग्र कुल नभ सुचन्द्र ,
मिथ्यातम हर सत् ज्ञानचन्द्र।
केवलज्ञानी सत् मग प्रकाश,
हूँ नमत सदा रख मोक्ष-आश ॥१३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री महावीर जिन-स्तुति

कीर्त्या भुवि भासि तया
वीर! त्वं गुण-समुत्थया भासितया।
भासोडुसभाऽसितया
सोम इव व्योम्नि कुन्द-शोभासितया ॥१३६॥

तव जिन! शासन-विभवो
जयति कलावपि गुणानुशासन-विभवः।
दोषकशासनविभवः
स्तुवन्ति प्रभा-कृशासनविभवः ॥१३७॥

अनवद्यः स्याद्वादस्तव
दृष्टेष्टाविरोधतः स्याद्वादः।
इतरो न स्याद्वादो सद्वितय-
विरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥१३८॥

त्वमसि सुराऽसुर-महितो
ग्रन्थिकसत्त्वाऽऽशयप्रणामाऽमहितः।
लोक-त्रय-परमहितो-
ऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धाम-हितः ॥१३९॥

सभ्यानामभिरुचितं
दधासि गुण-भूषणं श्रिया चारु-चितम्।
मग्नं स्वस्यां रुचितं
जयसि च मृग-लाञ्छनं स्व-कान्त्या रुचितम् ॥१४०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री महावीर जिन-स्तुति

(त्रोटक छन्द)

तुम वीर धवल गुण कीर्ति धरे
जग में शोभै गुण आत्म भरे ।
जिम नभ शोभै शुचि चन्द्रग्रहं,
सित कुन्द समं नक्षत्र ग्रहं ॥१३६ ॥

हे जिन! तुम शासन की महिमा ,
भविभव नाशक कलिमांहि रमा ।
निज-ज्ञान-प्रभा अनक्षीण-विभव,
मलहर गणधर पण मैं मत तब ॥१३७ ॥

हे मुनि ! तुम मत स्याद्वाद अनघ,
दृष्टेष्ट विरोध बिना स्यात् वद ।
तुमसे प्रतिपक्षी बाध सहित ,
नहिं स्याद्वाद है दोष सहित ॥१३८ ॥

हे जिन! सुर असुर तम्हें पूजें ,
मिथ्यात्वी चित नहिं तुम पूजें ।
तुम लोकत्रय हित के कर्ता,
शुचि ज्ञानमई शिव-धर धर्ता ॥१३९ ॥

हे प्रभु! गुणभूषण सार धरे,
श्री सहित सभा जन हर्ष करे ।
तुम वपु कान्ती अति अनुपम है,
जगप्रिय शशि जीते रुचितम है ॥१४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वं जिन! गत-मद-माय-
स्तव भावानां मुमुक्षु-कामद! मायः।
श्रेयान् श्रीमदमाय-
स्त्वया समादेशि सप्रयामदमायः१४१॥

गिरिभित्त्यवदानवतः
श्रीमत इव दन्तिनः स्त्रवद्दानवतः॥
तव शम-वादानवतो
गतमूर्जितमपगत-प्रमादानवतः॥१४२॥

बहुगुण-सम्पदसकलं
परमतपि मधुर-वचन-विन्यास-कलम्।
नय-भक्त्यवतंस-कलं
तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम्॥१४३॥

परमानन्द स्तोत्र

परमानन्दसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्॥१॥

अनन्तवीर्यसम्पन्नं ज्ञानामृतपयोधरम्।
अनन्तवीर्यसम्पन्नं, दर्शनं परमात्मनः॥२॥

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंगविवर्जितम्।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम्॥३॥

उत्तमा स्वात्मचिन्ता स्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, परचिन्ताऽधमाधमा॥४॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

हे जिन! मायामद नाहिं धरे,
तुम तत्त्व-ज्ञान से श्रेय करे ।
मोक्षेच्छु कामकर वच तेरा,
व्रत-दमकर सुखकर मत तेरा ॥१४१ ॥

हे प्रभु! तव गमन महान हुआ ,
शममत रक्षक भय हान हुआ ।
जिनवर हस्ती मद स्तवन करै,
गिरितट को खण्डित गमन करै ॥१४२ ॥

परमत मृदुवचन-रचित भी है,
निज गुण संप्राप्ति रहित वह है।
तव मत नय-भंग विभूषित है,
सुसमन्तभद्र निर्दूषित है ॥१४३ ॥

हिन्दी अनुवाद

परमानन्दयुक्त विकाररहित, रोगों से मुक्त और (निश्चयनय से) अपने शरीर में ही विराजमान परमात्मा को ध्यानहीन पुरुष नहीं देखते हैं ॥१ ॥ अनन्त सुख से परिपूर्ण, ज्ञानरूपी अमृत से भरे हुए समुद्र के समान और अनन्त बल युक्त परमात्मा के स्वरूप का ही अवलोकन करना चाहिए ॥२ ॥

विकारों से रहित, बाधाओं से मुक्त, सम्पूर्ण परिग्रहों से शून्य और परमानन्द विशिष्ट शुद्ध(केवलज्ञानरूप) चैतन्य ही (परमात्मा का) लक्षण जानना चाहिये ॥३ ॥

अपनी आत्मा की (उद्धार की) चिन्ता करना उत्तम चिन्ता है, शुभरागवश (दूसरे जीवों का भला करने की) चिन्ता करना मध्यम चिन्ता है, काम-भोग की चिन्ता करना अधम चिन्ता है और दूसरों का विचार करना अधम से भी अधम चिन्ता है ॥४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्विकल्पं समुत्पन्नं ज्ञानमेव सुधारसं।
विवेकमञ्जुलिं कृत्वा, तत्पिबंति तपस्विनः ॥५ ॥

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥६ ॥

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥७ ॥

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं भावकर्मविवर्जितम्।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥८ ॥

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं निज देहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९ ॥

तद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१० ॥

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानास्ते दुखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव ॥११ ॥

आनन्दरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तं।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ॥१२ ॥

चिदानन्दमयं शुद्धं निराकारं निरामयं।
अनन्तसुखसम्पन्नं सर्वसंगविवर्जितम् ॥१३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकल्प-विकल्पों को नाश करने से समुत्पन्न जो ज्ञानरूपी सुधारस उसको तपस्वी महात्मा ज्ञानरूपी अञ्जुलि से पीते है ॥५ ॥

जो पुरुष सदा ही परमानन्दविशिष्ट आत्मा को जानता है, वही (वास्तव में) पण्डित है और वही पुरुष परमानन्द के कारणभूत अपनी आत्मा की सेवा करता है ॥६ ॥

जैसे कमलपत्र के ऊपर पानी की बूंद कमल से सदा ही भिन्न रहती है, उसी प्रकार यह निर्मल आत्मा शरीर के भीतर रहकर भी स्वभाव की अपेक्षा शरीर से सदा भिन्न ही रहता है। अथवा कार्माण शरीर के भीतर रहकर भी शरीरजन्य रागादि मलों से सदा अलिप्त रहता है ॥७ ॥

इस चैतन्य आत्मा का स्वरूप निश्चय से ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्मों से रहित, रागद्वेषादि भावकर्मों से शून्य और औदारिकादि शरीररूप नोकर्मों से पृथक जानो ॥८ ॥

जैसे जन्मांध पुरुष सूर्य को नहीं जानता है, वैसे ही शरीर के भीतर स्थित परमात्मा के आनन्दमय स्वरूप को ध्यानहीन पुरुष नहीं जान पाते हैं ॥९ ॥

जिस ध्यान के द्वारा यह चंचल मन स्थिर होकर परमानन्दस्वरूप में विलीन(मग्न) हो जाता है, वही ध्यान (मोक्ष के इच्छुक) भव्य जीव करते हैं तथा उसी समय चैतन्य चमत्कारमात्र शुद्ध परमात्मा का साक्षात् दर्शन होता है ॥१० ॥

उत्तम ध्यान करने वाले जो मुनि हैं, वे नियम से सभी दुःखों से छूट जाते हैं तथा शीघ्र ही परमात्मपद को प्राप्त करके (और बाद में अयोग केवली होकर) क्षण मात्र में में ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं ॥११ ॥

निज स्वभाव में लीन हुए मुनि ही समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित परमानन्दमय परमात्मा के स्वरूप में निरन्तर तन्मय रहते हैं और इस प्रकार के योगी महात्मा ही परमात्मस्वरूप को स्वयं जानते हैं ॥१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकप्रमाणोऽयं निश्चये न हि संशयः ॥
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरै : ॥१४॥

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं तत्क्षणं गतविभ्रमः ।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना ॥१५॥

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः ।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः ॥१६॥

स एव सर्वकल्याणं, स एव परमं तपः ।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः ॥१७॥

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनं ।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमः शिवः ॥१८॥

स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः ।
स एव परमचैतन्यं, स एव गुणसागरः ॥१९॥

परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम् ।
अर्हन्तं देहमध्ये तु, यो जानाति स पण्डितः ॥२०॥

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपव्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम् ॥२१॥

सत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे ।
सहजानन्दचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सर्वज्ञदेव ने परमात्मा का स्वरूप चिदानन्दमय, शुद्ध, रूपरसादि आकार से रहित, अनेक प्रकार के रोगों से सर्वथा शून्य, अनन्त सुख विशिष्ट व सर्व परिग्रह रहित बताया है। निश्चयनय से आत्मा का आकार लोकाकाश के समान असंख्यातप्रदेशी तथा व्यवहार नय से प्राप्त छोटे व बड़े शरीर के समान बताया है ॥१३-१४॥

इसप्रकार ऊपर कहे हुए परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को योगीपुरुष जिस समय निर्विकल्प समाधि के द्वारा जान लेता है, उसी समय उस योगी का चित्त आकुलता रहित स्थिर होता है और अज्ञान का नाश हो जाता है ॥१५॥

वह परमध्यानी योगी मुनि ही परमब्रह्म कर्मों को जीतने से जिन, शुद्धरूप हो जाने से परम आत्मतत्त्व, जगतमात्र के हित का उपदेशक हो जाने से परमगुरु, समस्त पदार्थों के प्रकाश करने वाले ज्ञान से युक्त हो परमध्यान व परम तपरूप परमात्मा के यथार्थ स्वरूपमय हो जाता है। वही परमध्यानी मुनि ही सर्व प्रकार के कल्याणों से युक्त, परमसुख का पात्र, शुद्ध चिद्रूप, परम शिव कहलाता है और वही परमानन्दमय, सर्वसुखदायक, परम चैतन्य आदि अनन्त गुणों का समुद्र हो जाता है ॥१६-१९॥

परम आह्लादयुक्त, रागद्वेषरहित अरहंतदेव को जो ज्ञानी पुरुष अपने देहरूपी मन्दिर में विराजमान देखता व जानता है, वस्तुतः वही पुरुष पण्डित है ॥२०॥

आकाररहित, शुद्ध, निजस्वरूप में विराजमान, विकाररहित, कर्ममल से शून्य और क्षायिक सम्यग्दर्शनादि अष्टगुणों से सहित सिद्ध परमेष्ठियों के स्वरूप का चिन्तवन करे ॥२१॥

सिद्ध परमेष्ठी के समान परमज्योतिस्वरूप केवलज्ञानादि गुणों की प्राप्ति के लिए जो पुरुष अपनी आत्मा को परमानन्दमय, चैतन्यचमत्कार-युक्त जानता है, वही वास्तव में पण्डित है ॥२२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥२३॥

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

स्वरूप संबोधन स्तोत्र

(श्रीमद्भट्टाकलङ्क प्रणीत)

मुक्ताऽमुक्तैकरूपो यः, कर्मभिः संविदादिना।
अक्षयं परमात्मानं, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥१॥

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावहः।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्तः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥२॥

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः ॥३॥

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥४॥

स्वदेहप्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा ॥५॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जिसप्रकार सुवर्ण-पाषाण में सोना, दूध में घी और तिलों में तेल रहता है उसीप्रकार शरीर में शिवस्वरूप आत्मा विराजमान है। जैसे काष्ठ के भीतर आग शक्तिरूप से रहती है उसी प्रकार शरीर के भीतर यह शुद्ध आत्मा विराजमान है। इस प्रकार जो समझता है, वही वास्तव मे पण्डित है ॥२३-२४॥

हिन्दी अनुवाद

मंगलाचरण करते हुये श्री भट्टाचार्य अकलंक कहते हैं कि जो अविनश्वर, ज्ञानमूर्ति, परमात्मा, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों से, रागादि भावकर्मों से, व शरीररूप नोकर्म से मुक्त (रहित) हैं और सम्यकज्ञान आदि अपने स्वाभाविक गुणों से अमुक्त (युक्त) हैं, उन परमानन्दमय परमात्मा को नमस्कार करता हूँ ॥१॥

वह परमात्मा आत्मरूप होने से कारणस्वरूप है और ज्ञान-दर्शनरूप होने से कार्यस्वरूप भी है। इसी तरह केवलज्ञान के द्वारा जानने योग्य होने से ग्राह्य स्वरूप है और इन्द्रियों के द्वारा न जानने योग्य होने से अग्राह्य स्वरूप भी है॥ २ ॥

प्रमेयत्वादिक धर्मों की, अपेक्षा से वह परमात्मा अचेतनरूप है और ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से चेतनरूप भी है अर्थात् दोनों अपेक्षाओं से चेतन-अचेतन स्वरूप है॥ ३ ॥

वह परमात्मा ज्ञान से भिन्न है और ज्ञान से भिन्न नहीं भी है । अर्थात् ज्ञान से कथंचित् (किसी अपेक्षा से) भिन्न है सर्वथा (सब अपेक्षाओं से) भिन्न भी नहीं है। इसीप्रकार वह परमात्मा ज्ञान से अभिन्न भी नहीं है अर्थात् ज्ञान से कथंचित् अभिन्न है सर्वथा अभिन्न भी नहीं है; क्योंकि पहिले पिछले सब ज्ञानों का समुदाय ही मिलकर आत्मा कहलाता है ॥ ४॥

वह अरहन्त परमात्मा अपने परम औदारिक शरीर के बराबर है और बराबर भी नहीं है अर्थात् समुद्घात (मूल शरीर में रहते हुए भी आत्मा के प्रदेशों का कारण विशेष से कार्माण आदि शरीरों के साथ बाहर निकलना) अवस्था में जिस समय केवली भगवान की आत्मा के प्रदेश सम्पूर्ण लोकाकाश में फैल जाते हैं, उस समय आत्मा औदारिक शरीर के बराबर नहीं है । इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकोऽनेकोपि नैव सः ।
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥६ ॥

स वक्तव्यः स्वरूपाद्यैर्निर्वाच्यः परभावतः ।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो नापि वाचामगोचरः ॥७ ॥

स स्याद्विधिनिषेधात्मा, स्वधर्मपरधर्मयोः ।
समूर्तिर्बोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥८ ॥

इत्याद्यनेकधर्मत्वं, बंधमोक्षौ तयोः फलम् ।
आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु ॥९ ॥

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु ।
बहिरन्तरुपायाभ्यां तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥१० ॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

तरह वह परमात्मा ज्ञानमात्र है और ज्ञानमात्र नहीं भी है अर्थात् ज्ञानगुण को मुख्य करके व अन्य समस्त गुणों को गौण करके यदि विचारा जाय तो आत्मा या परमात्मा में ज्ञानमात्र ही दृष्टि में आता है और यदि अन्य गुणों को मुख्य किया जाय तो ज्ञानमात्र दृष्टि में नहीं भी आता है । इसी तरह जब केवल ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण लोक व अलोक को जानने को अपेक्षा लेते हैं, तब परमात्मा को सर्वगत भी कह सकते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थ परमात्मा से गत है अर्थात् ज्ञात है और सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हुए भी अरहंत परमात्मा अपने दिव्य औदारिक शरीर में ही स्थित रहता है, इसलिए वह विश्वव्यापी नहीं भी है ॥५ ॥

उस आत्मा में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि अनेक ज्ञान होते हैं तथा और भी सम्यक्त्व, चारित्र आदि अनेक गुण होते हैं, जिनके कारण यह आत्मा यद्यपि अनेक रूप हो रहा है तथापि अपने चेतन स्वरूप की अपेक्षा एकपने को नहीं छोड़ता; इसलिए इस आत्मा को कथञ्चित् एक रूप भी जानना चाहिये और कथञ्चित् अनेक रूप भी जानना चाहिये ॥६ ॥

वह आत्मा अपने स्वरूप अपेक्षा वक्तव्य (कहे जाने योग्य) भी नहीं है, और पर पदार्थों के स्वरूप की अपेक्षा अवक्तव्य होने से सर्वथा वक्तव्य भी नहीं है ॥७ ॥

वह आत्मा अपने धर्मों का विधान करने वाला प अन्य पदार्थों के धर्मों का अपने में निषेध करने वाला है और ज्ञान के आकार होने से वह आत्मा मूर्तिक तथा पुद्गलमय शरीर से भिन्न होने के कारण अमूर्तीक है ॥८ ॥

इस प्रकार पहले कहे हुए क्रम के अनुसार यह आत्मा अनेक धर्मों को धारण करता है और उन धर्मों के फलस्वरूप, बंध व मोक्षरूप फल को भी उन-उन कारणों से स्वयं अपनाता है ॥९ ॥

जो आत्मा बाह्य शत्रु-मित्र आदि व अंतरंग राग-द्वेष आदि कारणों से ज्ञानावरणादिक कर्मों का कर्ता व उनके सुख-दु:खादि फलों का भोक्ता है, वही आत्मा बाह्य स्त्री, पुत्र, धन, धान्यादिका त्याग करने से कर्मों के कर्ता भोक्तापने के व्यवहार से मुक्त भी है। अर्थात् जो संसारदशा में कर्मों का कर्ता व भोक्ता है, वही मुक्तदशा में कर्मों का कर्ता-भोक्ता नहीं भी है ॥१० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मस्वरूप की प्राप्ति का उपाय

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रमुपाय: स्वात्मलब्धये।
तत्त्वे याथात्म्यसौस्थित्यमात्मनो दर्शनं मतं ॥११॥

यथावद्वस्तुनिर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत्।
तत्स्वार्थव्यवसायात्मकथञ्चित्प्रमितेः पृथक् ॥१२॥

दर्शनज्ञानपर्यायेषूत्तरोत्तरभाविषु।
स्थिरमालम्बनं यद्वा माध्यस्थ्यं सुखदुःखयोः ॥१३॥

ज्ञाता दृष्टाऽहमेकोऽहं सुखे दुःखे न चापरः।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्रमथवा परम् ॥१४॥

तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम्।
यद्बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरंगकम् ॥१५॥

इतीदं सर्वमालोच्य, सौस्थ्ये दौस्थ्ये च शक्तितः।
आत्मानं भावयेन्नित्यं, रागद्वेषविवर्जितम् ॥१६॥

कषायै रञ्जितं चेतस्तत्त्वं नैवावगाहते।
नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौंकुमः ॥१७॥

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः।
उदासीनत्वमाश्रित्य तत्त्वचिंतापरो भव ॥१८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों अपने शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति अर्थात् संसार से मुक्त होने के कारण हैं । आत्मा के वास्तविक स्वरूप या सात तत्त्वों के सच्चे श्रद्धान को तो सम्यग्दर्शन कहते हैं। पदार्थों के वास्तविकपने से निर्णय करने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह सम्यग्ज्ञान दीपक की तरह अपना तथा अन्य पदार्थों का प्रकाशक होता है। अज्ञान निवृत्ति रूप जो फल है उससे कथंचित् भिन्न भी है। जो अपनी ही क्रम-क्रम से होने वाली ज्ञानदर्शनादिक पर्यायों में स्थिररूप आलम्बन है उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं । अथवा सांसारिक सुख-दुःखों में मध्यस्थ भाव रखने को सम्यग्चारित्र कहते हैं । या मैं ज्ञाता हूँ, मैं दृष्टा हूँ, अपने कर्तव्य के फलस्वरूप सुख-दुःखों का भोगने वाला स्वयं अकेला ही हूँ, बाह्य स्त्री पुत्रादि पदार्थों का मेरे से कोई सम्बन्ध नहीं है-इत्यादि अनेक प्रकार की शुद्ध आत्मस्वरूप में तल्लीन करानेवाली भावनाओं की दृढ़ता को भी सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥११-१४॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को जो ऊपर के श्लोकों में मोक्षप्राप्ति का मूल कारण बताया है । उनके सहकारी कारण देशकालादिक को व अनशन अवमौदर्य आदि बाह्य तप को समझना चाहिए॥ १५ ॥

इस प्रकार तर्क वितर्क के साथ आत्मस्वरूप को अच्छी तरह जानकर सुख में व दुःख में यथाशक्ति आत्मा को नित्य ही राग-द्वेष रहित चिन्तवन करना चाहिए । अर्थात् सुख सामग्री के मिलने पर राग नहीं करना चाहिए और अनिष्ट समागम में द्वेष नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये सब इष्ट अनिष्ट पदार्थ आत्मा की कुछ भी हानि नहीं कर सकते । इनका सम्बन्ध सिर्फ शरीर से रहता है, ऐसा विचार रखना चाहिए ॥ १६ ॥

जैसे नीले रंग के कपड़े पर केशर का रंग नहीं चढ़ सकता, वैसे ही क्रोधादि कषायों से रंजायमान हुए मनुष्य का चित्त, वस्तु के असली स्वरूप को नहीं पहिचान सकता ॥ १७ ॥

आचार्य व्यवहारी जीव से कहते हैं कि हे भाई ! जब राग-द्वेष के दूर करने के बिना आत्महित नहीं हो सकता, तब तुमको राग-द्वेष दूर करने के लिए शरीरादिक परपदार्थों का मोह त्याग कर और संसार, शरीर व भोगों से उदासीन भाव धारण करके तत्त्व विचार में तन्मय रहना चाहिए ॥ १८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेयोपादेयतत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयत: ।
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये सावलम्बन: ॥१९ ॥

स्व-परं चेति वस्तुत्त्वं, वस्तुरूपेण भावय।
उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते, शिवमाप्नुहि ॥२० ॥

मोक्षेऽपि यस्य नाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।
इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषि, कांक्षां न क्वापि योजयेत् ॥२१ ॥

साऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभा यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यसि ॥२२ ॥

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम्।
अनाकुलस्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥२३ ॥

स्व: स्वं स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम्।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्स्वोत्थमानंदममृतं पदम् ॥२४ ॥

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाड्मयम्,
य एतदाख्याति श्रृणोति चादरात्।
करोति तस्मै परमार्थसम्पदम्,
स्वरूपसंबोधनपंचविंशति: ॥२५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेय (त्यागने योग्य) व उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्त्व का स्वरूप जानकर पररूप जो हेयतत्त्व, उससे निरालंबी होकर उपादेयस्वरूप का आलंबन करना चाहिए ॥ १९ ॥

अपनी आत्मा के व पर पदार्थों के असली स्वरूप का बार-बार चिन्त्वन करना चाहिए और समस्त संसारी पदार्थों की इच्छा का त्याग करके उपेक्षा भावना (राग-द्वेष के त्याग की भावना) को बढ़ाते-बढ़ाते मोक्षपद प्राप्त करना चाहिए ॥ २० ॥

जब किसी साधु महात्मा पुरुष के हृदय से मोक्ष की भी इच्छा निकल जाती है तभी उसको मुक्ति कहते हैं । इस सिद्धान्त वाक्य के ऊपर ध्यान देते हुए आत्महित के इच्छुक जीवों को सभी पदार्थों की इच्छा का त्याग करना चाहिए ॥२१ ॥

यदि कोई यह कहे कि इच्छा करना तो अपने अधीन होने से सुलभ है, किन्तु फल प्राप्ति अपने अधीन न होने से कठिन है, इसलिए इच्छा किसी भी वस्तु की जा सकती है । ऐसा कहने वाले को आचार्य करुणापूर्वक कहते हैं कि हे भाई ! जैसे इच्छा करना आत्माधीन होने से सुलभ है, वैसे ही परमानन्दमय सुख का पाना भी तो आत्मा के ही आधीन है । इसलिए तुम उसकी प्राप्ति का प्रयत्न ही क्यों नहीं करते, जिससे कि संसार के झगड़ों से छूटकर हमेशा के लिए निराकुलित हो जाओ ॥२२ ॥

आचार्य कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त करना भी अपने ही आधीन समझ कर स्व और पर को जानना चाहिए तथा बाह्य पदार्थों के मोह को नष्ट करना चाहिए और आकुलतारहित स्वानुभवगम्य केवल अपने निजस्वरूप में ही स्थिर होना चाहिए ॥२३ ॥

इस श्लोक में आचार्य आत्मा में ही सातों कारक सिद्ध करते हुये कहते हैं कि व्यवहारी जीवों को अपनी ही आत्मा में उत्पन्न हुए परमानन्दमय अविनश्वर पद को प्राप्त करना चाहिए ॥२४ ॥

श्री अकलङ्क भट्टाचार्य उपसंहार करते हुए ग्रन्थ का माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुरुष पच्चीस श्लोकों में कहे इस स्वरूप सम्बोधन ग्रन्थ को आदर से पढ़ेंगे, सुनेंगे और इसके वाक्यों द्वारा कहे हुए आत्मतत्व का बारम्बार मनन करेंगे उनको यह ग्रन्थ परमार्थ की सम्पत्ति अर्थात् मोक्षपद प्राप्त करेगा ॥२५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावना द्वात्रिंशतिका

(सामायिक पाठ)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव॥१॥
शरीरत: कर्तुमनन्तशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्ति:॥२॥
दु:खे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेषममत्वबुद्धे: समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ॥३॥
मुनीश! लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निषाताविव बिंबिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव॥४॥
एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिन:, प्रमादत: संचरता इतस्तत:।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥५॥
विमुक्ति-मार्ग-प्रतिकूलवर्त्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दु:कृतं प्रभो॥६॥
विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनोवच:कायकषायनिमित्तम्।
निहन्मि पापं भवदु:खकारणं भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्॥७॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्म्मण:।
व्यधादनाचारमपि प्रमादत: प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥८॥
क्षतिं मन: शुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वन्दत्यनाचारमिहातिसक्तताम्॥९॥
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवि सरस्वति केवलबोधलब्धिम्॥१०॥
बोधि: समाधि: परिणामशुद्धि:, स्वात्मोपलब्धि: शिवसौख्यसिद्धि:।
चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावानुवाद

(भावना बत्तीसी)

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणी जनों में हर्ष प्रभो।
करुणा-स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥१ ॥
यह अनन्त बल-शील आतमा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥२ ॥
सुख-दुख बैरी बन्धु वर्ग में, कांच कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में, नहीं खेद नहिं ममता हो ॥३ ॥
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु ! मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥४ ॥
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की, यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य प्रभो ॥५ ॥
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्त्तन, जो कुछ किया कषायों से।
विपथ-गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥६ ॥
चतुर वैद्य विष विपक्ष करता, त्यों प्रभु ! मैं भी आदि उपांत।
अपनी निन्दा आलोचन से, करता हूँ पापों को शान्त ॥७ ॥
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी, मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत-प्रवर्त्तन करके , शीलाचरण विलीन किया ॥८ ॥
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा, मुझ में पागलपन आया ॥९ ॥
मैंने छली और मायावी, हो असत्य-आचरण किया।
पर-निन्दा गाली चुगली जो, मुंह पर आया वमन किया ॥१० ॥
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, उर में निर्मल ज्ञान बहे ॥११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यः स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैर्यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२ ॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः, समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३ ॥
निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालं ।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१४ ॥
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्व्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्कः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१५ ॥
क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६ ॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७ ॥
न स्पृश्यते कर्मकलङ्कदोषैर्यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८ ॥
विभासते यत्र मरीचिमालि, न विद्यमाने भुवनावभासि ।
स्वात्मस्थितं बोधमयं प्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९ ॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२० ॥
येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिंता ।
क्षयोऽनलेनेव तरुप्रपंचस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१ ॥
न संतरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः ।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥२२ ॥
न संस्तरो भद्रसमाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम् ।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ॥२३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥१२॥
दर्शन-ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम परमदेव मम हृदय रहे ॥१३॥
जो भव-दुख का विध्वंसक है विश्वविलोकी जिसका ज्ञान।
योगीजन के ध्यानगम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥१४॥
मुक्तिमार्ग का दिग्दर्शक है, जन्म-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्यदर्शि वह, देव रहे मम हृदय समीप ॥१५॥
निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूपी, परम देव मम हृदय रहे ॥१६॥
देख रहा जो निखिल विश्व को, कर्मकलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह, देव करे मम हृदय पवित्र ॥१७॥
कर्मकलंक अछूत न जिसका, कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो, परम शरण मुझको वह आप्त ॥१८॥
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर प्रकाशी, परमशरण मुझको वह आप्त ॥१९॥
जिसके ज्ञानरूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदिअंत से रहित शांत शिव, परम शरण मुझको वह आप्त ॥२०॥
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुये स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता सब जिसके परम शरण मुझको वह देव ॥२१॥
तृण, चौकी, शिल, शैल, शिखर नहिं, आत्म-समाधि के आसन।
संस्तर पूजा संघ सम्मिलन, नहीं समाधी के साधन ॥२२॥
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, विश्व मानता है मातम।
हेय सभी हैं विश्व-वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चत्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थ: सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै ॥२४॥
आत्मानमात्मान्यवलोकमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्त: खलु यत्र-तत्र, स्थितोपि साधुर्लभते समाधिम् ॥२५॥
एक: सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मल: साधिगमस्वभाव:।
बहिर्भवा सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वता: कर्मभव: स्वकीया: ॥२६॥
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथककृते चर्मणि रोमकूपा:, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥२७॥
संयोगतो दु:खमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥२८॥
सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं, संसारकान्तारनिपातसेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो, निलीयसे त्वं परमात्मत्त्वे ॥२९॥
स्वयंकृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानस:, परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥३१॥

(स्वागता)

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्वविवक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

(अनुष्टुप)

इति द्वात्रिंशतिवृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाह्य जगत कुछ भी नहिं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥२४॥
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृगतृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥२५॥
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञानस्वभावी है।
जो कुछ बाहर है सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥२६॥
तन से जिसका ऐक्य नहीं, हो सुत तिय मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥२७॥
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़ देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥२८॥
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द्व आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥२९॥
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप फल देय अन्य तो, स्वयं किये निष्फल होते ॥३०॥
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो छोड़ प्रमादी धी ॥३१॥

निर्मल सत्य शिवं सुन्दर है, 'अमितगति' वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वयंभू स्तोत्र भाषा

(चौपाई)

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भवि शिवपद लियो।
स्वयंबोध स्वयंभू भगवान, वन्दौं **आदिनाथ** *गुणखान ॥१ ॥*
इन्द्र क्षीरसागर जल लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन--विनाशक सुख करतार, वन्दौं **अजित** *अजित पदकार ॥२ ॥*
शुकल ध्यानकरि करमविनाशि, घाति अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुक्तिपद सुख अविकार, वन्दौं **सम्भव** *भव दु:ख टार ॥३ ॥*
माता पच्छिम रयन मंझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, वन्दौं **अभिनन्दन** *मन लाय ॥४ ॥*
सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्वाद-धुनि धार।
जैन-धरम--परकाशक स्वाम, **सुमतिदेव** *-पद करहूँ प्रनाम ॥५ ॥*
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमौं **पदमप्रभु** *सुख की रास ॥६ ॥*
इन्द्र फनिन्द्र नरिन्द्र त्रिकाल, वाणी सुनि-सुनि होहिं खुस्याल।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमौं **सुपारसनाथ** *निहार ॥७ ॥*
सुगुन छियालिस हैं तुम माहिं, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमौं **चन्द्रप्रभ** *राख समीप ॥8 ॥*
द्वादशविधि तप करम विनाश, तेरह भेद चरित परकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छकदान, वन्दौं **पुहुपदंत** *मन आन ॥9 ॥*
भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविधि धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुख देय, वन्दौं **शीतल** *धर्म-सनेह ॥10 ॥*
समता-सुधा कोप-विष-नाश, द्वादशांग वानी परकाश।
चार संघ-आनन्द-दातार, नमों **श्रेयांस** *जिनेश्वर सार ॥11 ॥*
रतनत्रय शिर मुकुट विशाल, शोभै कण्ठ सुगुण मणि माल।
मुक्ति--नार-भरता भगवान, **वासुपूज्य** *वन्दौं धर ध्यान ॥12 ॥*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित-उपदेश।
कर्म नाशि शिव सुख विलसन्त, वन्दौं **विमलनाथ** भगवन्त ॥13॥
अन्तर बाहिर परिग्रह टारि, परम दिगम्बर-व्रत को धारि।
सर्व जीव-हित राह दिखाय, नमौं **अनन्त** वचन-मन लाय ॥१४॥
सात तत्व पंचासतिकाय, अरथ नवों छः दरब बहु भाय।
लोक अलोक सकल परकाश, वन्दौं **धर्मनाथ** अविनाश ॥१५॥
पंचम चक्रवर्ति निधिभोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, **शान्तिनाथ** वन्दौं हरषाय ॥१६॥
बहु थुति करै हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान परब्रह्मस्वरूप, वन्दौं **कुन्थुनाथ** शिवभूप ॥१७॥
द्वादश गण पूजैं सुखदाय, थुति वन्दना करैं अधिकाय।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, वन्दौं **अर जिनवर**-पद दोय ॥१८॥
पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह-भव ब्याह समय वैराग।
बाल-ब्रह्म-पूरन व्रतधार, वन्दौं **मल्लिनाथ** जिनसार ॥१९॥
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लोकान्त करैं पग लाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहिं, वन्दौं **मुनिसुव्रत** व्रत देहिं ॥२०॥
श्रावक विद्यावंत निहार, भगति-भावसों दियो अहार।
बरसी रतन-राशि तत्काल, वन्दौं **नमिप्रभु** दीनदयाल ॥२१॥
सब जीवन की बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वै बन्धन तोर।
रजमति तजि शिव-तिय सों मिले, **नेमिनाथ** वन्दौं सुख मिले ॥२२॥
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठशठ मुख कर श्याम, नमों मेरुसम **पारस स्वामि** ॥२३॥
भव-सागर तैं जीव अपार, धरम पोत में धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, **वर्द्धमान** वन्दौं बहुबार ॥२४॥

(दोहा)

चौबीसौं पद-कमल जुग, वन्दौं मन-वच-काय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलोचना पाठ

(दोहा)

वन्दों पांचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरन के काज ॥१ ॥

(चौपाई)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अतिभारी।
तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरन लही जिनराजा ॥२ ॥
इक-वे-ते-चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहीं करुना धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३ ॥
समरम्भ समारम्भ आरम्भ, मन-वच-तन कीने प्रारम्भ।
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥४ ॥
शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने पर-छेदन तैं।
तिनकी कहूँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५ ॥
विपरीत एकान्त विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने ॥६ ॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विध मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७ ॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सौं दृग जोरी।
आरम्भ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८ ॥
सपरस रसना घ्रानन को, दृग कान विषय सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ॥९ ॥
फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहीं अष्ट मूलगुण धारे, सेये जु विषय दुखकारे ॥१० ॥
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदि भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ॥११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतानुबन्धी जु जाने, प्रत्याखान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥
निद्रावश शयन कराई, सुपनन मधि दोष लगाई।
फिर जाग विषयवन धायो, नानाविध विषफल खायो ॥१४॥
आहार विहार निहारा, इनमें नहीं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठायी, बिन शोधी वस्तु जु खायी ॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो।
कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥१६॥
मरयादा तुम ढिंग लीनी, ताहु में दोष जु कीनी।
भिन्न-भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषैं सब पइये ॥१७॥
हा हा मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी ॥१८॥
पृथ्वी बहु खोद कराई, महलादिक जागा चिनाई।
पुनि विन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखा तैं पवन विलोल्यो ॥१९॥
हा हा मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनन्दा ॥२०॥
हा हा परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥२१॥
बींध्यो अन्न राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागा बुहारी, चींटी आदिक जीव विदारी ॥२२॥
जल छान जिवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जलथानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया ॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजै।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी ॥२६॥
इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवंता।
सन्तति चिरकाल उपाई, वाणी तैं कहिय न जाई ॥२७॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुःख पावे, वचतैं कैसे करि गावै ॥२८॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरन लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥
इक गाँवपति जो होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटो अन्तरजामी ॥३०॥
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अन्तरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अन्तरजामी ॥३२॥
इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज पद दीजे ॥३३॥

(दोहा)

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीजो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़े, आनंद मंगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन शरन आनन्द ॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध-वीर-जिन-हरि-हर-ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो॥१॥
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, सन्तोषामृत पिया करूँ॥३॥
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ॥४॥
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर-कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥५॥
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवै।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥७॥
होकर सुख में मग्न न फूलैं, दुख में कभी न घबरावें।
पर्वत नदी श्मसान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावें॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावें।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावें॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-भाव अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावै॥९॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करै।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करै॥
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करै।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करै॥१०॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करै।
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करै॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करै।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करै॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक पाठ भाषा

॥ प्रथम प्रतिक्रमण कर्म ॥

काल अनन्त भ्रम्यो जग में सहिये दुख भारी।
जन्म-मरण नित किये पापको है अधिकारी॥
कोटि भवान्तर माहिं मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक॥१॥
हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय योग की गुप्ति बिना लभ॥
आप समीप हजूर माहिं मैं खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूँ सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब॥२॥
क्रोध मान मद लोभ मोह माया वशि प्रानी।
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी॥
बिना प्रयोजन एकेन्द्रिय विति चउ पञ्चेन्द्रिय।
आप प्रसादहिं मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय॥३॥
आपस में इकठौर थापकरि जे दुख दीने।
पेलि दिए पगतलैं दाबि करि प्राण हरीने॥
आप जगत के जीव जिते तिन सब के नायक।
अरज करूँ मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक॥४॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि।
यह पडिकोणो कियो आदि षट् कर्म माहिं विधि॥५॥

॥ द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म ॥

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढ़ेरे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो सब झूठो होऊ जगतपति के परसादैं।
जा प्रसाद तें मिलैं सर्व सुख दुःख न लाधैं॥६॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ।
किये पाप अघ ढ़ेर पापमति होय चित्त दुठ॥
निंदूँ हूँ मैं बार-बार निज जिय को गरहुँ।
जा प्रसाद तें मिलैं सर्व सुख दुःख न लाधै॥७॥
दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत संगति संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी॥
जिन वचनामृत धार समावर्तैं जिनवानी।
तोहू जीव संहारे धिक्-धिक्-धिक् हम जानी॥८॥
इन्द्रियलम्पट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करै तिसि विधि हिंसक ह्वै अब॥
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निन्दूँ अब मन वच तोले॥९॥
आलोचनविधि थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे॥
बार-बार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिक तें भये निंदिये जे भयभीता॥१०॥

॥तृतीय सामायिक भाव कर्म॥

सब जीवन में मेरे समताभाव जग्यो है।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है॥
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूँ सामायिक।
संयम मो कब शुद्ध होय यह भावबधायक॥११॥
पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पति।
पंचहि थावरमांहि तथा त्रस जीव बसैं जित॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बे इन्द्रिय तिय चउ पञ्चेन्द्रिय माहिं जीव सब।
तिनतें क्षमा कराऊँ मुझ पर क्षमा करो अब ॥१२॥
इस अवसर में मेरे सब सम कञ्चन अरु तृण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनि।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी ॥१३॥
मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो॥
मात-पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतें न्यारे जानि जथारथ रूप करयो गह ॥१४॥
मैं अनादि जगजाल माहिं फँसि रूप न जाण्यो।
एकेन्द्रिय दे आदि जन्तु को प्राण हराण्यो॥
ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव-भव को अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी ॥१५॥

॥ चतुर्थ स्तवन कर्म॥

नमों ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्म को।
संभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्म को॥
सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर।
पद्मप्रभु पद्माभ भानि भव भीति प्रीति धर ॥१६॥
श्री सुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्ध कर।
श्री चन्द्रप्रभ चंद्रकांति सम देह कांति धर॥
पुष्पदंत दमि दोषकोश भविपोष रोषहर।
शीतल शीतल करण हरण भव ताप दोषहर ॥१७॥
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमल विमलमति देत अंतगत हैं अनंत जिन।
धर्मशर्म शिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन ॥१८॥
कुंथकुंथुमुख जीवपाल अरनाथजाल हर।
मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघ हि नमि जिन।
नेमिनाथ जिननमि धर्म रथमाहिं ज्ञानधन ॥१९॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्षरमापति।
वर्द्धमान जिन नमूँ वमूँ भवदुःख कर्मकृत॥
या विधि मैं जिन संघरूप चौबीस संख्यधर।
स्तवूँ नमूँ हूँ बार-बार बंदूँ शिव सुखकर॥२०॥

॥ पंचम वन्दना कर्म॥

वन्दूँ मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति।
वर्द्धमान अतिवीर वन्दिहूँ मन-वच-तनकृत॥
त्रिशलातनुज महेशधीश विद्यापति वन्दूँ।
वन्दूँ नितप्रति कनकरूप तनु पाप निकन्दूँ॥२१॥
सिद्धारथनृपनंद द्वन्द दुःख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जग जीव उधारन॥
कुण्डलपुर करि जन्म जगत जिय आनन्द कारन।
वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुःख टारन॥२२
सप्त हस्त तनु तुङ्ग भङ्गकृत जन्म मरण भय।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन।
आप बसे शिव माहिं ताहि वंदों मन-वच-तन॥२३॥
जाके वंदन थकी दोष दुख दूरहि जावैं।
जाके वंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवैं॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जाके वंदन थकी वंद्य होवें सुरगन के ।
ऐसे वीर जिनेश वंदिहूँ क्रमयुग तिनके ॥२४॥
सामायिक षट्कर्ममाहिं वंदन यह पंचम।
वंदों वीर जिनेन्द्र इंद्रशतवंद्य वंद्य मम॥
जन्ममरण भय हरो, करो अघ शांति शांतिमय।
मैं अघकोष सुपोष दोष को दोष विनाशय॥२५॥

॥ षष्टम कायोत्सर्ग कर्म॥

कायोत्सर्ग विधान करूँ अंतिम सुखदाई।
काय त्यजनमय होय काय सब को दुखदाई॥
पूरब दक्षिण नमूँ दिशा पश्चिम उत्तर मैं।
जिनगृह वंदन करूँ हरूँ भव पाप तिमिर मैं॥२६॥
शिरोनती मैं करूँ नमूँ मस्तक करि धरिकैं।
आवर्तादिक क्रिया करूँ मन-वच-मद हरिकैं॥
तीनलाक जिन भवन माहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धदीपमाहिं वंदों जिम॥२७॥
आठ कोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्याणूँ।
चार शतक पर असी एक जिनमन्दिर जाणूँ॥
व्यंतर ज्यातिषि माहिं संख्यरहिते जिनमंदिर।
ते सब वंदन करूँ हरहु मम पाप संघकर॥२८॥
सामायिक सम नाहिं और कोउ बैर-मिटायक।
सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्रीदायक॥
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुख हानक॥२९॥
जे भवि आतम काज करण उद्यम के धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी॥
राग-द्वेष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय तातैं कीज्यो अब॥३०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक पाठ

(दोहा)

पंच परम गुरु को प्रणमि, सरस्वती उर धार।
करूँ कर्म छेदंकरी, सामायिक सुखकार ॥१ ॥

(चाल-छन्द)

आत्मा ही समय कहावे, स्वाश्रय से समता आवे।
वह ही सच्ची सामायिक, पाई नहिं मुक्ति विधायक ॥२ ॥
उसके कारण मैं विचारूँ, उन सबको अब परिहारूँ।
तन में 'मैं हूँ' मैं विचारी, एकत्वबुद्धि यों धारी ॥३ ॥
दुखदाई कर्म जु माने, रागादि रूप निज जाने।
आस्रव अरु बन्ध ही कीनो, नित पुण्य पाप में भीनो ॥४ ॥
पापों में सुख निहारा, शुभ करते मोक्ष विचारा।
इन सबसे भिन्न स्वभावा, दृष्टि में कबहुँ न आवा ॥५ ॥
मद मस्त भयो पर ही में, नित भ्रमण कियो भव भव में।
मन वचन योग अरु तन से, कृत कारित अनुमोदन से ॥६ ॥
विषयों में ही लिपटाया, निज सच्चा सुख नहीं पाया।
निशाचर हो अभक्ष्य भी खाया, अन्याय किया मन भाया ॥७ ॥
लोभी लक्ष्मी का होकर, हित-अहित विवेक मैं खोकर।
निज-पर विराधना कीनी, किञ्चित् करुणा नहिं लीनी ॥८ ॥
षट्काय जीव संहारे, उर में आनन्द विचारे।
जो अर्थ वाक्य पद बोले, थे त्रुटि प्रमाद विष घोले ॥९ ॥
किञ्चित व्रत संयम धारा, अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचारा।
उनमें अनाचार भी कीने, बहु बाँधे कर्म नवीने ॥१० ॥
प्रतिकूल मार्ग यों लीना, निज-पर का अहित ही कीना।
प्रभु शुभ अवसर अब आयो, पावन जिनशासन पायो ॥११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लब्धि त्रय मैंने पायी, अनुभव की लगन लगायी।
अतएव प्रभो मैं चाहूँ, सबके प्रति समता लाऊँ॥१२॥
नहिं इष्टानिष्ट विचारूँ, निज सुक्ख स्वरूप संभारूँ।
दु:खमय हैं सभी कषायें, इनमें नहिं परिणति जाये॥१३॥
वेश्या सम लक्ष्मी चंचल, नहिं पकडूँ इसका अंचल।
निर्ग्रन्थ मार्ग सुखकारी, भाऊँ नित ही अविकारी॥१४॥
निज रूप दिखावन हारी, तव परिणति जो सुखकारी।
उसको ही नित्य निहारूँ, यावत् न विकल्प निवारूँ॥१५॥
तुम त्याग अठारह दोषा, निजरूप धरो निर्दोषा।
वीतराग भाव तुम भीने, निज अनन्त चतुष्टय लीने॥१६॥
तुम शुद्ध बुद्ध अनपाया, तुम मुक्तिमार्ग बतलाया।
अतएव मैं दास तुम्हारा, तिष्ठो मम हृदय मंझारा॥१७॥
तव अवलम्बन से स्वामी, शिवपद पाऊँ जगनामी।
निर्द्वन्द्व निशल्य रहाऊँ, श्रेणि चढ़ कर्म नशाऊँ॥१८॥
जिनने मम रूप न जाना, वे शत्रु न मित्र समाना।
जो जाने मुझ आतम रे, वे ज्ञानी पूज्य हैं मेरे॥१९॥
जो सिद्धात्मा सो मैं हूँ, नहिं बाल युवा नर मैं हूँ।
सब तैं न्यारो मम रूप, निर्मल सुख ज्ञान स्वरूप॥२०॥
जो वियोग संयोग दिखाता, वह कर्म जनित है भ्राता।
नहिं मुझको सुख दु:खदाता, निज का मैं स्वयं विधाता॥२१॥
आसन संघ संगति शाला, पूजन भक्ति गुणमाला।
इनतैं समाधि नहिं होवे, निज में थिरता दु:ख खोवे॥२२॥
घिन गेह देह जड़ रूपा, पोषत नहिं सुक्ख स्वरूपा।
जब इससे मोह हटावे, तब ही निज रूप दिखावे॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनिता बेड़ी गृह कारा, शोषक परिवार है सारा।
शुभ जनित भोग जो पाई, वे भी आकुलता दायी ॥२४॥
सबविधि संसार असारा, बस निज स्वभाव ही सारा।
निज में ही तृप्त रहूँ मैं, निज में संतुष्ट रहूँ मैं ॥२५॥
निज स्वभाव का लक्ष्य ले, मैंटूँ सकल विकल्प।
सुख अतीन्द्रिय अनुभवूँ, यही भावना अल्प ॥२६॥

सामायिक भावना

(हरिगीतिका)

श्रीसिद्ध आगम अर्हंत जिन, नमि प्रकट की जिन आत्मा।
उन प्रशममय कृतकृत्य प्रभु सम, आत्म में विचरण करूँ ॥१॥
कोलाहलों से रहित सम्यक्, शान्तता में तिष्ठ कर।
सब कर्मध्वंसक ज्ञानमय, निज समय को अब मैं वरूँ ॥२॥
समता मुझे सब जीव प्रति, नहिं बैर किञ्चित् भी रहा।
मैं सर्व आशा रहित हो, सम्यक् समाधि को धरूँ ॥३॥
हो राग वश या द्वेष वश मैंने विराधे जीव जो।
उनसे क्षमा की प्रार्थना कर मैं क्षमा धारण करूँ ॥४॥
मन वचन अथवा काय से, कृत कारिते अनुमोदते।
निज रत्नत्रय में दोष लागे, गर्हा द्वारा परिहरूँ ॥५॥
आहार विषय कषाय तज, अत्यन्त शुद्धि भाव से।
तिर्यंच मानव देव कृत, उपसर्ग में समता धरूँ ॥६॥
भय शोक राग अरु द्वेष, हर्ष अरु दीनता औत्सुक्यता।
रति अरति के परिणाम तज, सर्वज्ञता अब मैं धरूँ ॥७॥
जीवन मरण या हानि लाभे, योग और वियोग में।
मैं बन्धु-शत्रु दुःख में, या सुक्ख में, सम ही रहूँ ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मम ज्ञान में है आत्मा, दर्शन चरित में आत्मा।
प्रत्याख्यान संवर योग में भी मात्र है मम आत्मा ॥९ ॥
दृग ज्ञान लक्षित और शाश्वत, मात्र आत्मा मैं अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित, भाव मुझसे हैं परे ॥१० ॥
संयोगदृष्टि की सदा से, इसलिए दुःख अनुभवे।
संयोगदृष्टि दुखमय, मन-वचन-तन से अब तजूँ ॥११ ॥
जो समय मय रहते सदा अरु मोक्ष जिनकी दशा में।
उन सम समय की प्राप्ति हेतु, भक्ति से निज प्रभु नमूँ ॥१२ ॥

आत्म-भावना

(तर्ज- मेरी भावना)

निजस्वभाव में लीन हुए, तब वीतराग सर्वज्ञ हुए।
भव्य भाग्य अरु कुछ नियोग से, जिनके वचन प्रसिद्ध हुए ॥१ ॥
मुक्तिमार्ग मिला भव्यों को, वे भी बंधन मुक्त रहें।
उनमें निजस्वभाव दर्शकता, देख भक्ति से विनत रहें ॥२ ॥
वीतराग सर्वज्ञ ध्वनित जो, सप्त तत्त्व परकाशक है।
अविरोधी जो न्याय तर्क से, मिथ्यामति का नाशक है ॥३ ॥
नहीं उल्लंघ सके प्रतिवादी, धर्म अहिंसा है जिसमें।
आत्मोन्नति की मार्ग विधायक, जिनवाणी हम नित्य नमें ॥४ ॥
विषय कषाय आरम्भ न जिनके, रत्नत्रय निधि रखते हैं।
मुख्य रूप से निज स्वभाव, साधन में तत्पर रहते हैं ॥५ ॥
अट्ठाईस मूल गुण जिनके, सहज रूप से पलते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु गुरु का, हम अभिनन्दन करते हैं ॥६ ॥
उन सम निज का हो अवलम्बन, उनका ही अनुकरण करूँ।
उन ही जैसी परिचर्या से, आत्मभाव को प्रकट करूँ ॥७ ॥
अष्ट मूलगुण धारण कर, अन्याय अनीति त्यागूँ मैं।
छोड़ अभक्ष्य सप्त व्यसनों को, पंच पाप परिहारूँ मैं ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा करूँ स्वाध्याय तत्त्व, निर्णय सामायिक आराधन।
विनय युक्ति और ज्ञान दान से, राग घटाऊँ मैं पावन॥९॥
जितनी मंद कषाय होय, उसका न करूँ अभिमान कभी।
लक्ष्य पूर्णता का अपनाकर, सहूँ परीषह दुःख सभी॥१०॥
गुणीजनों पर हो श्रद्धा, व्यवहार और निश्चय सेवा।
उनकी करें दुःखी प्रति करुणा, हमको होवे सुख देवा॥११॥
शत्रु न जग में दीखे कोई उन पर भी नहिं क्षोभ करूँ।
यदि संभव हो किसी युक्ति से, उनमें भी सद्ज्ञान भरूँ॥१२॥
राग नहीं हो लक्ष्मी का, ना लोकजनों की किंचित् लाज।
प्रभु वचनों से जो प्रशस्त पथ, उसमें ही होवे अनुराग॥१३॥
होय प्रशंसा अथवा निंदा कितने हों उपसर्ग कदा।
उन पर दृष्टि भी नहिं जावे, परिणति में हो साम्य सदा॥१४॥
होवे मौत अभी ही चाहे, कभी न पथ से विचलित हो।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सदा मेरु से अचलित हो॥१५॥
चाह नहीं हो परद्रव्यों की, विषयों की तृष्णा जावे।
क्षण-क्षण चिन्तन रहे तत्त्व का, खोटे भाव नहीं आवे॥१६॥
समय-समय निज अनुभव होवे, आतम में थिरता आवे।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण से, शिवसुख स्वयं निकट आवे॥१६॥
प्रगट होय निर्ग्रन्थ अवस्था, निश्चय आतम ध्यान धरूँ।
स्वाभाविक आतम गुण प्रगटें, सकल कर्ममल नाश करूँ॥१८॥
होवे अन्त भावनाओं का, यही भावना भाता हूँ।
भेद दृष्टि के सब विकल्प तज, निज स्वभाव में रहता हूँ॥१९॥

(दोहा)

सुखमय आत्मस्वभाव है, ज्ञाता-दृष्टा ग्राह्य।
लीन आत्मा में रहे, स्वयं सिद्ध पद पाय॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी वैभव गाथा

(मरहठा-माधवी)

आत्मन् अपनी वैभव गाथा, सुनो परम आनन्दमय।
स्वानुभूति से कर प्रमाण, प्रगटाओ सहज सौख्य अक्षय ॥टेक॥
स्वयं सिद्ध सत रूप प्रभो, नहिं आदि मध्य अवसान है।
तीन लोक चूड़ामणि आतम, प्रभुता सिद्ध समान है॥
सिद्ध प्रभू ज्यों ज्ञाता त्यों ही, तुम ज्ञाता भगवान हो।
करो विकल्प न पूर्ण अपूर्ण का निर्विकल्प अम्लान हो॥
निश्चय ही परमानन्द विलसे, सर्व दुखों का होवे क्षय ॥१॥
हों संयोग भले ही कितने, संयोगों से भिन्न सदा।
नहीं तजे निजरूप कदाचित, होवे नहीं पररूप कदा॥
कर्मबंध यद्यपि अनादि से, तदपि रहे निर्बन्ध सदा।
वैभाविक परिणमन होय, फिर भी तो है निर्द्वन्द्व अहा॥
देखो-देखो द्रव्यदृष्टि से, चित्स्वरूप अनुपम सुखमय ॥२॥
एक-एक शक्ति की महिमा, वचनों में नाहिं आवे।
शक्ति अनंतों उछलें शाश्वत, चिन्तन पार नहीं पावे॥
प्रभु स्वाधीन अखंड प्रतापी, अकृत्रिम भगवान अहो।
जो भी ध्यावे शिवपद पावे, ध्रुव परमेष्ठी रूप विभो।
भ्रम को छोड़ो करो प्रतीति, हो निशंक निश्चल निर्भय ॥३॥
केवलज्ञान अनंता प्रगटे, ऐसा ज्ञान स्वरूप अहो।
काल अनंत-अनंतसुख विलसे, है अव्ययसुख सिंधु अहो॥
अनंत ज्ञान में भी अनंत ही, निज स्वरूप दर्शाया है।
पूर्णपने तो दिव्यध्वनि में भी, न ध्वनित हो पाया है॥
देखो प्रभुता इक मुहूर्त में, सब कर्मों पर लहे विजय ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मज्ञान बिन चक्री इन्द्रादिक भी, तृप्ति नहीं पावें।
सम्यक ज्ञानी नरकादिक में भी अपूर्व शान्ति पावें॥
इसीलिये चक्री तीर्थंकर, बाह्य विभूति को तजते।
हो निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनिवर, चिदानन्द पद में रमते॥
धन्य-धन्य वे ज्ञानी ध्यावें, समयसार निज समय-समय ॥५ ॥
चक्रवर्ती की नवनिधियाँ, पर निज निधियों का पार नहीं।
चौदह रत्न चक्रवर्ती के, आतम गुण भण्डार सही॥
चक्रवर्ती का वैभव नश्वर, आत्म विभूति अविनाशी।
जो पावे सो होय अयाची, कट जाये आशापाशी।
झूठी दैन्य निराशा तजकर, पाओ वैभव मंगलमय ॥६ ॥
चंचल विपुल विकल्पों को तो, एक स्फुलिंग ही नाशे।
आतम तेज पुञ्ज सर्वोत्तम, कौन मुमुक्षु न अभिलाषे॥
चिंतामणि तो पुण्य प्रमाणे, जग इच्छाओं को पूरे।
धन्य-धन्य चेतन चिंतामणि, क्षण में वांछायें चूरे॥
निर्वांछिक हो अहो अनुभवो, अविनश्वर कल्याण मय ॥७ ॥
जिनधर्मों की पूजा करते, उनका धर्मी शुद्धातम।
परमपूज्य जानो पहिचानो, शुद्ध चिदम्बर परमातम॥
परमपारिणामिक ध्रुव ज्ञायक, लोकोत्तम अनुपम अभिराम।
नित्यनिरंजन परमज्योतिमय, परमब्रह्म अविचल गुणधाम॥
करो प्रतीति अनुभव परिणति, निज में ही हो जाये विलय ॥८ ॥
गुरु की गुरुता, प्रभु की प्रभुता, आत्माश्रय से ही प्रगटे।
भव-भव के दुखदायी बंधन, स्वाश्रय से क्षण में विघटे।।
आत्मध्यान ही उत्तम औषधि, भव का रोग मिटाने को।
आत्मध्यान ही एक मात्र साधन है, शिवसुख पाने को।
झूठे अंहकार को छोड़ो, शुद्धातम की करो विनय ॥९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुचि न लगे यदि कहीं तुम्हारी, एक बार निज को देखो।
खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से निज महिमा को देखो॥
भ्रांति मिटेगी, शांति मिलेगी, सहज प्रतीति आयेगी।
समाधान निज में ही होगा, आकुलता मिट जायेगी।
चूक न जाना स्वर्णिम अवसर, करो निजातम का निश्चय ॥१०॥

श्री नेमिकुमार निष्क्रमण

श्री नेमि प्रभु की वंदना कर, भक्ति भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से ॥टेक॥
देखा पशुओं को रुका हुआ प्रभु हो गये गम्भीर।
धिक्-धिक् ऐसी विषयांधता, दीखे न पराई पीर॥
इन भोगों की अग्नि में कितने जीव हैं जलते।
और भोगी भी परिपाक में, भव भव में दुख सहते ॥
पीड़ा है विषय कषायों की, मृत्यु से भयंकर।
हों सहने में असमर्थ तब फिर मूढ़ जन फँसकर॥
दोई भव नाशे, मोही व्यर्थ मोह भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छुटूँ विभाव से ॥१॥
ऐसी शोभा से क्या जिसमें, निज-पर का पीड़न हो।
ऐसी शादी से क्या जिसमें, दुखमय भव बंधन हो॥
स्वतंत्रता का हो हनन, आराधना का घात।
परिग्रह के ग्रहण में होते, अगणित दुखमय उत्पात॥
रहता है चंचल चित्त सदा, ही परिग्रहवान का।
विषयों में जो आसक्त उनके, नित ही मलिनता॥
सुख लेश भी पावे नहीं, अज्ञानभाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पापों के बीज इन्द्रिय सुख, तो दुखमय ही अरे।
परलक्षी इन्द्रिय ज्ञान भी अज्ञान जान रे॥
अतीन्द्रिय सुख ही सुख जो पाते हैं जितेन्द्रिय।
वे ही शिवसाधक हैं, जिन्हें हो ज्ञान अतीन्द्रिय॥
अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमय, शुद्धातम ही है सार।
है सहज ज्ञेय-ध्येय रूप, मुक्ति का आधार॥
शुद्धात्मा प्रभु नित्य निरंजन स्वभाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥३॥
तृप्ति सहज ही प्राप्य निज में निज से ही सदा।
है झूठी कल्पना भोगों से तृप्ति न कदा॥
रहते अतृप्त, मूढ़ आत्मज्ञान के बिना।
कितने भव यूँ ही बीत जावें संयम के बिना।
होते हैं हास्य पात्र जो ले दीप भी गिरते।
पाकर भी नरभव आत्मन फिर जग जाल में फँसते।
कल्याण का अवसर गँवावें मूढ़ भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥४॥
संयममय जीवन ही अहो, ज्ञानी को शोभता।
बढ़ती प्रभावना सहज होती है पूज्यता॥
जो त्यागने के योग्य ही, फिर क्यों करूँ स्वीकार।
इससे अधिक क्या कायरता, नरभव की जिसमें हार।
क्षण भी विलम्ब योग्य नहीं, कल्याणमार्ग में।
निरपेक्ष हो बढ़ना मुझे अब मुक्तिमार्ग में॥
निर्ग्रन्थ हो आराधूँ निज पद सहजभाव से॥
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोड़े कंगन के बंधन, सिर का मौर उतारा।
धनि-धनि प्रभुवर का भाव ,जिससे काम था हारा॥
जिन-भावना भाते हुए गिरनार चल दिए।
आसन्नभव्य दीक्षा लेने साथ चल लिए॥
गूँजा था जय-जयकार उत्सव धर्ममय हुआ।
तपकल्याणक का शुभ नियोग देवों ने किया॥
साक्षात् दिगम्बर हुए अत्यन्त चाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥६॥
ज्यों ही जाना यह हाल, राजुल हो गयी विह्वल।
होकर सचेत शीघ्र ही, जागृत किया निज बल॥
परिवारी जन तो रागवश, अति खिन्न चित्त थे।
शादी करें किसी और से, समझावते यों थे॥
बोली राजुल मत गालियाँ, मम शील को तुम दो।
सतवंती नारियों का केवल, एक पति ही हो॥
नाता जोड़ा मैंने अब केवल, ज्ञायकभाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥७॥
व्यवहार में भी भाव से श्री नेमि स्वीकारे।
दर्शाकर श्रेयो मार्ग वे, गिरनार पधारे॥
उनका ही पावन मार्ग, अंगीकार है मुझे।
उनके द्वारा त्यागे भोगों, की चाह नहीं मुझे।
आनंदित हो मोदन करो, मैं होऊँ आर्यिका।
छोड़ूँ स्त्रीलिंग नाशूँ, दुखमय बीज पाप का॥
धारूँ निवृत्तिमय दीक्षा अति हर्षभाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलमय ऐसे अवसर में, आसूँ ना बहाओ।
आनंदमय जिनमार्ग, कुछ विकल्प मत लाओ॥
आदर्श रूप नेमि प्रभु का अनुसरण करो।
परभावों से है भिन्न आतम अनुभवन करो॥
होता नहीं स्त्री-पुरुष व क्लीव आत्मा।
ध्रुव एक रूप ज्ञानमय है शुद्ध आत्मा॥
परमार्थ प्रतिक्रमण करो, सहज भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥९॥
कुछ मोहवश संकोचवश, भवि चूक ना जाना।
साधो परम उत्साह से, शंका नहीं लाना॥
उत्कृष्ट समयसार से, कुछ अन्य नहीं है॥
अनुभव प्रमाण स्वयं करो, धोखा नहीं है।
शुद्धात्मा के ध्यान में, सब कर्म नशायें।
आत्मा बने परमात्मा गुण सर्व विलसायें॥
अनुभूत-मग दर्शाया प्रभु, वीतरागभाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥१०॥
सम्बोधन करके यों राजुल, गिरनार को गई।
वन्दन कर नेमिनाथ को, वह आर्यिका हुई॥
नेमीश्वर तो मुक्ति गये, वह स्वर्ग को गई।
पावन गाथा वैराग्यमयी विख्यात है हुई॥
प्रेरित करे भव्यों को, सम्यक् निवृत्ति मार्ग में।
मैं भी विचरूँ साक्षात् प्रभु निर्ग्रन्थ मार्ग में॥
हो सहज सफल भावना अंतरंग भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोधर गाथा

धन्य यशोधर मुनि-सी समता, मम परिणति में प्रगटावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावे ॥टेक॥
एक दिवस जंगल में मुनिवर, आतम ध्यान लगाया है।
जैन धर्म प्रति द्वेष धरे, श्रेणिक मृगया को आया है॥
किन्तु यत्न सब व्यर्थ हुये, कोई शिकार नहिं पाता है।
तभी शिला पर श्री मुनिवर का, पावन रूप दिखाता है।
जिनकी वीतराग मुद्रा लख, भव-भव के दुःख नश जावें।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें ॥१॥
जान चेलना के गुरु हैं, तो बदला लेने की ठानी।
क्रूर शिकारी कुत्ते छोड़े, किंचित् दया न उर आनी॥
उन ऋषिवर का साम्यभाव लख, वे कुत्ते तो शान्त हुये।
किन्तु समझ कीलित कुत्तों को, भाव नृपति के क्रुद्ध हुये॥
जैसी होनहार हो जिसकी, वैसी परिणति हो जावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें ॥२॥
देखो सबका स्वयं परिणमन, निमित्त नहीं कुछ करता है।
नहीं प्रेरणा, मदद, प्रभावित कोई किसी को करता है॥
वस्तु स्वभाव न जाने मूरख, व्यर्थ खेद अभिमान करे।
ठाने उद्यम झूठे जग में, सदाकाल आकुलित रहे॥
छोड़ निमित्ताधीन दृष्टि निज भाव लखे सुख ही पावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें ॥३॥
तत्क्षण सर्प भयंकर देखा, मार गले में डाल दिया।
क्रूर रौद्र परिणामों से, तब नरक सातवाँ बंध किया॥
अट्टहास कर घर आया, पर तीन दिनों तक व्यस्त रहा।
समाचार देने चौथे दिन, सती चेलना पास गया॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोही पाप बंध करके भी देखो कैसा हरषाये।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें ॥४॥
सुनकर दुखद भयानक घटना, भक्ति उर में उमड़ानी।
त्याग अन्न जल उसी समय, उपसर्ग निवारण की ठानी॥
श्रेणिक बोला अरे प्रिये! क्यों मुनि ने कष्ट सहा होगा।
मेरे आने के तत्क्षण ही, सर्प दूर फैंका होगा॥
अज्ञानी क्या ज्ञानी जन का, अन्तर रूप समझ पावें।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावे ॥५॥
बोली तुरन्त चेलना राजन् यदि वे सच्चे गुरु होंगे।
उसी अवस्था में अविचल, निज ध्यान लीन बैठे होंगे॥
तुमने द्वेष भाव से भूपति, घोर पाप का बंध किया।
मुनि पर कर उपसर्ग स्वयं को स्वयं दुख में डाल दिया॥
व्यर्थ कषायें करके प्राणी, खुद ही भव-भव दुख पावें।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें ॥६॥
आगे-आगे चले चेलना उर दुख-सुख का मिश्रण था।
कौतूहलमय विस्मय पूरित, श्रेणिक का अन्तस्तल था॥
परम शान्त निज ध्यान लीन, मुनिवर को ज्यों देखा ही था।
किया दूर उपसर्ग शीघ्र ही, श्रद्धा से नत श्रेणिक था॥
ज्ञानीजन तो पहले सोचे, मूरख पीछे पछतावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें ॥७॥
धन्य मुनीश्वर साम्यभाव धर, धर्मवृद्धि दोनों को दी।
श्रेणिक और चेलना में नहिं, इष्ट-अनिष्ट कल्पना की॥
पश्चात्ताप नृपति को भारी, कैसे मुँह दिखलाऊँ मैं।
अश्रुपूर्ण हो गये नेत्र अरु, आत्मघात आया मन में॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निज दुष्कृत्यों पर अब नृप को, बार-बार ग्लानि आवे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें॥८॥
मन की बात ऋषीश्वर जानी, बोले नृप क्या सोच रहे?
पाप नहीं पापों से धुलते, आत्मघात क्यों सोच रहे?
प्राग्भाव है भूतकाल में, ग्लानि चिंता दूर करो॥
धर्म नहीं पहिचाना अब तक, तो अब ही पुरुषार्थ करो॥।
जागो तभी सवेरा राजन गया वक्त फिर नहिं आवे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें॥९॥
पर्यायें तो प्रतिक्षण बदलें, मैं उन रूप नहीं होता।
आभूषण बहु भाँति बनें, स्वर्णत्व नहीं सोना खोता॥
मत पर्यायों को ही देखो, ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि धरो।
परभावों से भिन्न ज्ञानमय, ही मैं हूँ श्रद्धान करो॥
ये ही निश्चय सम्यक् दर्शन, मुक्तिपुरी में ले जावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें॥१०॥
सच्चे सुख का मार्ग प्रदर्शक, जिनशासन ही सुखकारी।
भावी तीर्थंकर तुम होंगे, सोच तजो सब दुखकारी॥
आनंदित होकर श्रेणिक तब, जैनधर्म स्वीकार किया।
अन्तर-दृष्टि धारण करके, सम्यग्दर्शन प्रगट किया॥
आयु बंध भी हीन हो गया, प्रथम नरक में ही जावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें॥११॥
देखो निमित्त सुख-दुख देता, झूठी पर की आश तजो।
पर से भिन्न सहज सुख सागर में ही प्रतिक्षण केलि करो॥
दोष नहीं देना पर को, निज में सम्यक् पुरुषार्थ करो।
मोह हलाहल बहुत पिया है, साम्य सुधा अब पान करो॥
साम्यभाव ही उत्तम औषधि, भ्रमण रोग जासों जावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावें॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्री जिनसेन गाथा

पूछ उठा अपनी माता से, इक बालक छह साल का।
सरलस्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ।।टेक।।
माँ इस घर में कल-सी, गाने की आवाज नहीं है।
ध्वनि क्यों बदली है क्या, गानेवाली बदल गयी है।।
माँ बोली बेटा इस घर में, कल एक पुत्र जन्मा था।
ढोलक पर थी बजी बधाई, जिसका बँधा समा था।।
अरुण रूप जिसका विलोक, शरमाया रूप प्रवाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ।।१ ।।
आज वही मर गया, इसी से सब घर के रोते हैं।
मन में टूटी आशाओं का, व्यर्थ भार ढोते हैं।।
बालक बोला सहजभाव से, माँ क्यों पुत्र मरा है।
कल जन्मा मर गया आज ही, ये तो खेल बुरा है।।
माँ बोली बेटा क्या अचरज, नहीं भरोसा काल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ।।२ ।।
बेटा सबको ही मरना है, जिसने जन्म लिया है।
अनादि काल से इस प्राणी ने, जग में यही किया है।
तो क्या माँ मुझको भी, मरना होगा कभी ज़हां से।
माँ बोली चुप रह पगले, मत ऐसा बोल जुबाँ से।।
जग में बाँका बाल न हो, प्रभु कभी हमारे लाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ।।३ ।।
माँ क्या कोई है उपाय, जिससे न जीव मर पावे।
क्या दुनिया में ऐसा कोई, यह रहस्य बतलावे।।
माँ बोली इसके ज्ञाता, श्री वीरसेन स्वामी हैं।।
मिथ्यातम हर भानु आज के, युग में वे नामी हैं।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वही पकड़ कर हाथ उठाते, विषयाश्रित कंगाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ॥४ ॥
सुन उपाय माता से बालक, वीरसेन के पास गया।
हो आनन्द विभोर पकड़, जिसने गुरु चरण सरोज लिया॥
विह्वल हो बोला कि देव मैं, मरने से घबराया हूँ।
आप बचा लोगे मरने से, ऐसा सुनकर आया हूँ॥
तुमरे आश्रित बाल न बाँका, होगा मुझ-सम बाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ॥५ ॥
मेरी माँ ने इस उपाय का, ज्ञाता तुम्हें बताया है।
दया करो कातर हो बालक, शरण आपकी आया है॥
चरण पकड़ गुरुवर के बालक, फूट-फूट कर रोया है।
अविरल धारा अश्रु बहाकर, गुरुपद पंकज धोया है॥
विह्वल हो बोला प्रभु कर दो, अन्त जगत जंजाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ॥६ ॥
गुरु ने लिया उठाय प्रेम से, बालक को बैठाया है।
सुधा गिरा से आश्वासन दे, मन का क्लेश मिटाया है॥
कालान्तर में कुशलबुद्धि पर, रंग चढ़ा जिनवाणी का।
पाया मर्म अपूर्व निराकुल, बोध आत्मकल्याणी का॥
गुरु प्रसाद से खुला भेद, शिवपुर की सीधी चाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ॥७ ॥
वीरसेन गुरुवर ने ही, इस बालक को जिनसेन कहा।
दीक्षा दे अपने समान ही, इन्हें किया मुनिराज महा॥
वीरसेन जिनसेन परम प्रभु मेरे सिर पर हाथ धरो।
'चन्द्रसेन' से तुच्छ दास का भी, प्रणाम स्वीकार करो॥
तेरा दास दुःखी मैं क्यों? उत्तर दें इसी सवाल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री देशभूषण-कुलभूषण गाथा

आओ अहो अराधना के मार्ग में आओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥टेक॥
श्री देशभूषण-कुलभूषंण भगवान की गाथा।
हो सबको ज्ञान विरागमय, आनन्द प्रदाता॥
दोनों भाई बचपन में ही गुरुकुल चले गये।
सुध-बुध नहीं घर की कुछ अध्ययन में ही लग गये॥
गृह त्यागी लक्षण विद्यार्थी का चित्त में लाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१॥
साहित्य धर्म शास्त्र न्याय आदि पढ़ लिये।
थोड़े समय में ही सहज विद्वान हो गये॥
पुरुषार्थ विशुद्धि विनय से ज्ञान विकसाता।
गुरु तो निमित्त मात्र ज्ञान अन्तर से आता॥
अन्तर्मुखी पुरुषार्थ से सद्ज्ञान को पाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥२॥
कितने भव यों ही खो दिए निज ज्ञान के बिना।
सुख लेश भी पाया नहीं, निज भान के बिना॥
पुण्योदय से वैभव पाये, अरु भोग भी कितने।
उलझाया तड़प-तड़प दुख पाया, मोह वश इसने॥
जिनवाणी का अभ्यास कर, अब होश में आओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥३॥
पढ़-लिख कर घर आने की थी तैयारी जिस समय।
रे इन्द्रपुरी सम नगरी की शोभा थी उस समय॥
उल्लास का वातावरण चारों तरफ़ छाया।
खो बैठे उपनी सुध-बुध ऐसा रंग वर्षाया॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो मूढ़ राग-रंग में, ना निज को भुलाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ ॥४॥
निज कन्यायें लेकर, अनके राजा आये थे।
देखा नहीं सुनकर ही वे मन में हरषाये थे॥
सपने संजोये थी कन्यायें, उनको वरने की।
उनमें भी होड़ लगी थी, उनके चित्त हरने की॥
पर होनहार सो ही होवे विकल्प मत लाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ ॥५॥
आते हुए उन राजपुत्रों को दिखी कमला।
उल्लास से जिसकी दिखी तन कान्ति अति विमला॥
कर्मोदय वश दोनों ही उस पर लुब्ध थे हुए।
मन में विवाह की उससे ही लालसा लिए॥
लखकर विचित्रता अरे सचेत हो जाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ ॥६॥
इक कन्या को दो चाहते, संघर्ष हो गया।
दोनों के भ्रातृ प्रेम का भी ह्रास हो गया॥
धिक्कार इन्द्रिय भोगों को जो सुख के हैं घातक।
रे भासते हैं मूढ़ को ही सुख प्रदायक॥
कर तत्त्व का विचार श्वानवृत्ति नशाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ ॥७॥
इच्छाओं की तो पूर्ति सम्भव नहीं होती।
मिथ्या पर-लक्ष्यी वृत्ति तो निजज्ञान ही खोती॥
सुख का कारण इच्छाओं का अभाव ही जानो।
उसका उपाय आत्मसुख की भावना मानो॥
भवि भेदज्ञान करके आत्मभावना भाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आते देखा भ्राताओं को वह कन्या हरषायी।
भाई भाई कहती हुई, नजदीक में आई॥
तब समझा यह तो बहिन है जिस पर ललचाये थे।
ग्लानि मन में ऐसी हुई, कुछ कह नहिं पाये थे॥
नाशा विकार ज्ञान से, प्रत्यक्ष लखाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥९॥
ज्यों ही जाना हम भाई हैं, यह तो पावन भगिनी।
फिर कैसे जागृत हो सकती है, वासना अग्नि॥
त्यों ही मैं ज्ञायक हूँ ऐसी अनुभूति जब होती॥
तब ही रागादिक परिणति तो सहज ही खोती॥
अतएव स्वानुभूति का पुरुषार्थ जगाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१०॥
अज्ञान से उत्पन्न दुख तो ज्ञान से नाशे।
अस्थिरता जन्य विकार भी थिरता से विनाशे॥
भोगों के भोगने से इच्छा शान्त नहीं होती।
अग्नि में ईंधन डालने सम शक्ति ही खोती॥
अतएव सम्यग्ज्ञान कर, संयम को अपनाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥११॥
दोनों कुमार सोचते थे, प्रायश्चित्त सुखकर।
इसका यही होवेगा, हम तो होंय दिगम्बर॥
दुनिया की सारी स्त्रियाँ, हम बहिन सम जानी।
आराधें निज शुद्धात्मा दुर्वासना हानी॥
निष्काम आनंदमय परम जिनमार्ग में आओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा विचार करते ही सब खेद मिट गया।
अक्षय मुक्ति के मार्ग का फिर, द्वार खुल गया॥
अज्ञानी पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हैं॥
ज्ञानी तो दोष लगने पर प्रायश्चित्त करते हैं।
शुद्धात्म आश्रित भावमय प्रायश्चित्त प्रगटाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१३॥
हम कर्म के प्रेरे बहिन, दुर्भाव कर बैठे।
अज्ञानवश निज शील का उपहास कर बैठे॥
करना क्षमा हम ज्ञानमय दीक्षा को धरेंगे।
अज्ञानमय दुष्कर्मों को निर्मूल करेंगे॥
समता का भाव धार कर कुछ खेद नहिं लाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१४॥
रोको नहीं तुम भी बहिन, आओ इस मार्ग में।
दुर्मोहवश अब मत बढ़ो संसार मार्ग में॥
निस्सार है संसार बस शुद्धात्मा ही सार।
अक्षय प्रभुता का एक ही है आत्मा आधार॥
निर्द्वन्द्व निर्विकल्प हो निज आत्मा ध्याओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१५॥
ले के क्षमा करके क्षमा, गुरु ढिंग चले गये।
आया था राग घर का, ज्ञानी वन चले गये॥
संग में चले निर्मोही, रागी देखते रहे।
धारा था जैन तप, उपसर्ग घोर थे सहे॥
पाया अचल, ध्रुव सिद्ध पद भक्ति से सिरनाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकलंक-निकलंक गाथा

अकलंक अरु निकलंक दो थे सहोदर भाई।
प्राणों पर खेल की, धर्म की रक्षा सुखदाई।।टेक।।
धनि-धनि हैं भोगों को न अंगीकार ही किया।
बचपन में ही मुनिराज से ब्रह्मचर्य व्रत लिया।।
व्रत लेकर आनन्दमय जीवन की नींव धराई।।१।।
तत्त्वज्ञान के अभ्यास में ही चित्त लगाया।
दुर्वासनाओं की जिन्हें, नहीं छू सकी छाया।।
दुर्मोहतम हो कैसे?, ज्ञान ज्योति जगाई।।२।।
अज्ञान में ही कष्टमय, संयम अरे भासे।
संयम हो परमानन्दमय, जहाँ ज्ञान प्रकाशे।।
इससे ही भेदज्ञान कला मूल बताई।।३।।
बौद्धों का बोलबाला था, जिनधर्म संकट में।
अत्याचारों से त्रस्त थे जिनधर्मी क्षण-क्षण में।।
जिनधर्म की प्रभावना की भावना भाई।।४।।
माता-पिता ने जब रखा, प्रस्ताव शादी का।
बोले बरबादी का है मूल, स्वांग शादी का।।
दिलवा करके ब्रह्मचर्य, तात! क्या ये सुनाई।।5।।
बोले पिता अष्टाह्निका, में मात्र व्रत दिया।
हे तात! तुमने कब कहा, हम पूर्ण व्रत लिया।।
मुक्ति के मार्ग में नहीं होती है हँसाई।।६।।
आजीवन पालेंगे, हम तो ब्रह्मचर्य सुखकारी।
सौभाग्य से पाया है, रत्न ये मंगलकारी।।
भव रोग की एक मात्र ये ही साँची दवाई।।७।।
मोदन करो सब ही अहो, हम ब्रह्मचर्य धारें।
जीवन तो धर्म के लिये, हम मौत स्वीकारें।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आराधना ही सुख स्वरूप मन में समाई ॥८ ॥
आशीष ले माता-पिता से, बौद्ध मठ गये।
प्रच्छन्न बौद्ध रूप में दर्शन सभी पढ़े ।
जैनों को शिक्षा पाने की थी सख्त मनाई ॥९ ॥
स्याद्वाद पढ़ाते श्लोक एक अशुद्ध हुआ।
प्राचार्य थे बाहर गये, अकलंक शुद्ध किया ॥
श्लोक शुद्ध करना हुआ, गजब दुखदाई ॥१० ॥
प्राचार्य को शंका हुई, कोई जैन होने की।
प्रतिमा दिगम्बर रखकर, आज्ञा दी थी लँघने की ॥
तब धागा ग्रीवा में लपेट, लाँघ गये भाई ॥११ ॥
फिर अर्द्ध रात्रि के समय, घनघोर स्वर हुआ।
अरहंत, सिद्ध कहते हुये, सैनिक पकड़ लिया ॥
होकर निडर बोले थे हम, जिनधर्म अनुयायी ॥१२ ॥
लालच दिये और भय दिखाये, पर नहीं डिगे।
श्रद्धान से जिनधर्म के किंचित् नहीं चिगे ॥
झुँझला कर निर्दय होकर, सजा मौत सुनाई ॥१३ ॥
पर रात्रि को ही भागे, कारागार से दोई।
टाले कभी टलती नहीं, भवितव्य जो होई ॥
पीछे दोड़ाये सैनिक अति ही क्रूरता छाई ॥१४ ॥
निकलंक बोले देखो भाई, आ रही सेना।
हो धर्म की रक्षा, न कोई और कामना ॥
छिप जाओ तुम तालाब में, मैं मरता हूँ भाई ॥१५ ॥
अकलंक कहा भाई तुम अपने को बचाओ।
निकलंक बोले भ्रात उर में मोह मत लाओ ॥
तुम अति समर्थ धर्म की रक्षा में हे भाई ॥१६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल्दी करो अब न समय, मैं भावना भाऊँ।
हो धर्म की प्रभावना, मैं शीश कटाऊँ॥
जबरन छिपा दिया, अहो धनि युक्ति यह आई॥१७॥
धोबी को लेकर साथ फिर निकलंक थे दौड़े।
आये निकट थे सैनिकों के शीघ्र ही घोड़े॥
आदर्श छोड़ गये अपना शीश कटाई॥१८॥
होकर विरक्त ली अहो, अकलंक मुनि दीक्षा।
शास्त्रार्थ में पाकर विजय, की धर्म की रक्षा॥
जिनधर्म की पावन पताका, फिर से फहराई॥१९॥
राजा हिमशीतल की सभा, में था हुआ विवाद।
छह माह तक बाँटा था, श्री जिनधर्म का प्रसाद॥
परदा हटा घट फोड़ तारा देवी भगाई॥२०॥
निकलंक का उत्सर्ग तो, सोते से जगाये।
अकलंक का दर्शन अहो, सद्बोध कराये॥
जिनशासन के नभ मण्डल में रवि-शशि सम दो भाई॥२१॥
अकलंक अरु निकलंक का आदर्श अपनायें।
युक्ति सद्ज्ञान, आचरण से धर्म दिपायें॥
मंगलमय ब्रह्मचर्य होवे हमको सहाई॥२२॥

सेठ सुदर्शन गाथा

धनि धन्य हैं सेठ सुदर्शन, अद्भुत शील व्रतधारी।
जिनकी पावन दृढ़ता से, कुटिला नारी भी हारी॥टेक॥
इक रोज महल में बैठे, दासी ने आय बताया।
तव मित्र बहुत घबड़ाये, इस क्षण ही तुम्हें बुलाया॥
कुछ छल को समझ न पाये, थे सरल परिणति धारी।
वैसे ही दौड़े पहुँचे, पर वहाँ थी लीला न्यारी॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यों सेठ गये थे अन्दर, दरवाजा बंद सु कीना।
आसक्ति भरी नारी ने, निर्लज्ज प्रदर्शन कीना॥
वह मित्र गया था बाहर, कपिला ने चाल विचारी।
हो सेठ रूप पर मोहित, उसने की थी तैयारी॥२॥
फँस गये धर्म संकट में, तब सेठ विचार सु कीना।
इससे तो मरण भला है, निज शील बिना क्या जीना?
तब हँसे वचन यों बोले, वे अनेकांत के धारी।
मैं तो हूँ अरे नपुंसक, तूने पहिले न विचारी॥३॥
तत्क्षण ही घृणाभाव कर, हट गयी स्वयं ही पतिता।
तब सेठ सहज घर आये, लेकर अपनी पावनता।
पुरुषत्व शीलधारी का, नहीं होय कदापि विकारी।
नहीं धर्म मार्ग से च्युत हो, रहते ज्ञानी अविकारी॥४॥
ओ भव्य समझना यों ही, आत्मा में शक्ति अनंता।
पर ज्ञाता-दृष्टा ही है, नहीं होवे पर का कर्त्ता॥
आत्मन् अब भी तो चेतो, छोड़ो भ्रांति दुखकारी।
कर्तृत्व विकल्प न लाओ, तब सुख पाओ अविकारी॥५॥
इक रोज वसंतोत्सव में, जाते थे सब नर-नारी।
अभया रानी भी जावे, कपिला भी जाये बेचारी॥
तब रथ में आती देखी, सुत गोद लिये एक नारी।
अभया रानी ने पूछा, किसके सुत सुन्दर प्यारी॥६॥
दासी ने तुरन्त बताया, जो सेठ सुदर्शन नामी।
उनके ही हैं सुत नारी, सुनकर कपिला मुस्कानी॥
है सेठ नपुंसक कैसे फिर वह नारी सुत धारी।
हँस कर रानी तब बोली, धनि सेठ शील व्रतधारी॥७॥
चाहा था उन्हें फंसाना, ठग गयी स्वयं ही तू तो।
मूर्खा तू समझ न पाई, तत्काल सेठ युक्ति को॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं तो मूर्खा ही ठहरी, बोली झुंझला बेचारी।
वश में करके दिखलाओ, तुम रूप बुद्धिबलधारी ॥८॥
रानी बातों में आयी, बुद्धि विवेक विसरानी।
दूती को लालच देकर, तब सेठ मिलन की ठानी॥
धर्मात्मा सेठ सुदर्शन, धर नग्न दशा अविकारी॥
मरघट में ध्यान लगाते, चौदश निशि धीरज धारी ॥९॥
दूती ने जाल बिछाया नर मूर्ति तुरत बनवायी।
कंधे पर रखकर उसको, महलों के द्वारे आयी॥
ज्यों द्वारपाल ने रोका, दूती ने मूर्ति गिरादी।
व्रत टूट गया रानी का, तोहि सजा दिलाऊँ भारी ॥१०॥
यों द्वारपाल वश कीने, तब उठा सेठ को लाई।
बैठाया जाय पलंग पर, रानी अति ही हरषाई॥
भारी चेष्टायें कीनी, यों रात गुजर गयी सारी।
पर ध्यानमग्न थे श्रेष्ठी, उपसर्ग समझ अतिभारी ॥११॥
ध्रुव का अवलम्बन जिनके, विचलित नहीं होते जग में।
उपसर्ग परीषह आवे, पर सतत बढ़ें शिवमग में॥
है आत्मज्ञान की महिमा, हो अद्‌भुत समता धारी।
उनकी गरिमा वर्णन में, इन्द्रों की बुद्धि हारी ॥१२॥
जब विफल स्वयं को जाना, रानी षडयंत्र रचाया।
बिखराकर वस्त्राभूषण, तब उसने शोर मचाया॥
तत्क्षण सब दौड़े आये, नृप क्रोध किया अतिभारी।
कुछ न्याय अन्याय न जाना, शूली की सजा सुना दी ॥१३॥
शूली के तख्ते पर थे, बैठे वे धर्म धुरन्धर।
किंचित् घबड़ाहट नाहीं, डूबे समता के अन्दर॥
तब नभ से पुष्प बरसते, सिंहासन रच गया भारी।
इन्द्रादिक स्तुति करते, जय-जय बोलें नर नारी ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चम्पापुरी धन्य हुयी थी, अरु वृषभदत्त यश पाया।
जिनके सुत सेठ सुदर्शन, यह चमत्कार दिखलाया॥
पिछले ग्वाले के भव में, श्रद्धा जिनधर्म की धारी।
फिर श्रेष्ठी सुत होकर यों, महिमा पाई सुखकारी॥१५॥
चरणों में नत हो भूपति, पछताते क्षमा कराते।
तब सेठ सुदर्शन बोले, हम दीक्षा ले वन जाते॥
नहीं दोष किसी का कुछ भी, कर्मों की लीला न्यारी।
कर्मों का नाश करेंगे, निर्ग्रन्थ दशा धर प्यारी॥१६॥
उत्तम सुयोग पाकर भी, मैं समय न व्यर्थ गवाऊँ।
भोगों के दुख बहु पाये, अब इनमें नाहिं फसाऊँ॥
नश्वर अशरण जगभर में, शुद्धातम ही सुखकारी।
निज में ही तृप्ति पाऊँ, संकल्प जगा हितकारी॥१७॥
मुनि हो तप करते-करते, पटना नगरी में आये।
उपसर्ग वहाँ भी भारी, पर किंचित् नहीं चिगाये॥
फिर शुक्लध्यान के द्वारा कर्मों की धूल उड़ा दी।
प्रभु पौष शुक्ल पंचमी को, निर्वाण गये सुखकारी॥१८॥
है निमित्त अकिंचित्कर ही, किंचित् नहिं सुख-दुखदाता।
निज की सम्यक् दृढ़ता से मिटती है सर्व असाता॥
प्रभु यही भावना मेरी, तुमसा पुरुषार्थ सु धारी।
होकर शिवपदवी पाऊँ, चरणों में ढोक हमारी॥१९॥
भवि पढ़ें सुनें यह गाथा, हो तत्त्वज्ञान के धारी।
निज सम नारी भगनी सम, लघु सुता, बड़ी महतारी॥
आत्मन् ज्ञानाराधन से, उपजे नहीं भाव विकारी।
सारे ही जग में फैले यह, शील धर्म सुखकारी॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सती अनन्तमती गाथा

ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा, सुनो भव्यजन ध्यान से।
सती शिरोमणि अनन्तमती, की गाथा जैन पुराण से ॥टेक॥
बहुत समय पहले चम्पानगरी में, प्रियदत्त सेठ हुये।
न्यायवान गुणवान बड़े, धर्मात्मा अति धनवान थे वे॥
पुत्री एक अनन्तमती, इनकी प्राणों से प्यारी थी।
संस्कारों में पली परम विदुषी रुचिवंत दुलारी थी॥
सदाचरण की दिव्य मूर्ति निज उन्नति करती ज्ञान से ॥१॥
मंगलपर्व अठाई आया, श्री मुनिराज पधारे थे।
स्वानुभूति में मग्न रहे, अरु अद्भुत समता धारे थे॥
धर्मकीर्ति मुनिराज धर्म का, मंगल रूप सुनाया था।
श्रद्धा, ज्ञान, विवेक, जगा, वैराग्य रंग बरसाया था॥
धन्य-धन्य नर नारी कहते, स्तुति करते तान से ॥२॥
प्रियदत्त सेठ ने धर्म पर्व में, ब्रह्मचर्य का नियम लिया।
सहज भाव से अनन्तमती ने, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया॥
जब प्रसंग शादी का आया, बोली पितु क्या करते हो?
ब्रह्मचर्य सा नियम छुड़ा, भोगों में प्रेरित करते हो॥
भोगों में सुख किसने पाया, फंसे व्यर्थ अज्ञान से ॥३॥
व्रत को लेना और छोड़ना, हंसी खेल का काम नहीं।
भोगों के दुख प्रत्यक्ष दीखें, अब तुम लेना नाम नहीं ॥
गज, मछली, अलि, पतंग, हिरण, इक-इक विषयों में मरते हैं।
फिर भी विस्मय मूढ़, पंचेन्द्रिय भोगों में फंसते हैं॥
मिर्च भरा ताम्बूल चबाते, हँसते झूठी शान से ॥४॥
चिंतामणि सम दुर्लभ नरभव नहिं इनमें फंस जाने को।
यह भव हमें सु प्रेरित करता निजानंद रस पाने को॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगों की अग्नि में अब यह जीवन हवन नहीं होगा।
क्षणिक सुखाभासों में शाश्वत सुख का दमन नहीं होगा॥
निज का सुख तो निज में ही है देखो सम्यक्ज्ञान से॥५॥
अब मैं पीछे नहीं हटूँगी ब्रह्मचर्य व्रत पालूँगी।
शील बाढ़ नौ धारण करके अन्तर ब्रह्म निहारूँगी॥
नहीं बालिका मुझको समझो मैं भी तो प्रभु सम प्रभु हूँ॥
भय शंका का लेश न मुझमें अनन्त शक्ति धारी विभु हूँ॥
मूढ़ बनो मत, स्व महिमा पहिचानो भेद विज्ञान से॥६॥
मिट्टी का टीला तो देखो जल धारा से बह जाता।
धारा ही मुड़ जाती, लेकिन अचल अडिग पर्वत रहता॥
ध्रुव कीली के पास रहें वे दाने नहिं पिस पाते हैं।
छिन्न-भिन्न पिसते हैं वे ही कीली छोड़ जो जाते हैं॥
निज स्वभाव को नहीं छोड़ना सुनो भ्रात अब कान दे॥७॥
अनन्तमती की दृढ़ता देखी मात-पिता भी शांत हुये।
आनन्दित हो धर्मध्यान में वे सब ही लवलीन हुये॥
झूला झूल रही थी एक दिन कुंडलमंडित आया था।
कामासक्त हुआ विद्याधर जबरन उसे उठाया था॥
पर पत्नी के भय के कारण छोड़ा उसे विमान से॥८॥
एकाकी वन में प्रभु सुमरे भीलों का राजा आया।
कामवासना पूरी करने को वह भी था ललचाया॥
देवों द्वारा हुआ प्रताड़ित सती तेज से काँप गया।
पुष्पक व्यापारी को दी उसने वेश्या को बेच दिया॥
देखो सुर भी होंय सुहाई सम्यक् धर्म ध्यान से॥९॥
वेश्या ने बहु जाल बिछाया पर वह भी असमर्थ रही।
भेंट किया राजा को उसने सती वहाँ भी अडिग रही॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देखो कर्मोदय की लीला कितनी आपत्ति आयी।
महिमा निज स्वभाव की निरखो सती न किंचित् घबरायी॥
कर्म विकार करे नहीं जबरन व्यर्थ रुले अज्ञान से॥१०॥
निकल संकटों से फिर पहुँची पद्मश्री आर्यिका के पास।
निज स्वभाव साधन करने का मन में था अपूर्व उल्लास॥
उधर दुखी प्रियदत्त मोहवश यहीं अयोध्या में आये।
बिछुड़ी निज पुत्री को पाकर मन में अति ही हरषाये॥
घर चलने को कहा तभी दीक्षा ली हर्ष महान से॥११॥
निज स्वरूप विश्रान्तिमयी इच्छा निरोध तप धारा था।
रत्नत्रय की पावन गरिमामय निजरूप सम्भाला था॥
मगन हुयी निज में ही ऐसी मैं स्त्री हूँ भूल गयी।
छूटी देह समाधि सहित द्वादशम स्वर्ग में देव हुयी॥
पढ़ो-सुनो ब्रह्मचर्य धरो सुख पाओ आतमज्ञान से॥१२॥
परभाव शून्य चिद्भावपूर्ण मैं परम ब्रह्म श्रद्धा जागे।
विषय-कषायें दूर रहें मन निजानंद में ही पागे॥
ये ही निश्चय ब्रह्मचर्य आनंदमयी मुक्ति का द्वार।
संकट त्राता आनन्द दाता इससे ही होवे उद्धार॥
अंतः 'आत्मन्' उत्तम अवसर बनो स्वयं भगवान-से।
सती शिरोमणि अनन्तमती की गाथा जैन पुराण से॥१३॥

जिनमार्ग

कितना सुन्दर, कितना सुखमय, अहो सहज जिनपंथ है।
धन्य धन्य स्वाधीन निराकुल, मार्ग परम निर्ग्रन्थ है॥टेक॥
श्री सर्वज्ञ प्रणेता जिसके, धर्म पिता अति उपकारी।
तत्त्वों का शुभ मर्म बताती, माँ जिनवाणी हितकारी।
अंगुली पकड़ सिखाते चलना, ज्ञानी गुरु निर्ग्रन्थ हैं॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा ही, समकित का सोपान है।
महाभाग्य से अवसर आया, करो सही पहिचान है॥
पर की प्रीति महा दुखदायी, कहा श्री भगवंत है॥२॥
निर्णय में उपयोग लगाना ही, पहला पुरुषार्थ है।
तत्त्वविचार सहित प्राणी ही, समझ सके परमार्थ है॥
भेदज्ञान कर करो स्वानुभव, विलसे सौख्य बसंत है॥३॥
ज्ञानाभ्यास करो मनमाहीं, विषय-कषायों को त्यागो।
कोटि उपाय बनाय भव्य, संयम में ही नित चित पागो॥
ऐसे ही परमानन्द वेदें, देखो ज्ञानी संत हैं॥४॥
रत्नत्रयमय अक्षय सम्पत्ति, जिनके प्रगटी सुखकारी।
अहो शुभाशुभ कर्मोदय में, परिणति रहती अविकारी॥
उनकी चरण शरण से ही हो, दुखमय भव का अंत है॥५॥
क्षमाभाव हो दोषों के प्रति, क्षोभ नहीं किंचित् आवे।
समता भाव आराधन से निज, चित्त नहीं डिगने पावे॥
उर में सदा विराजें अब तो, मंगलमय भगवंत हैं॥६॥
हो निशंक, निरपेक्ष परिणति, आराधन में लगी रहे।
क्लेशित हो नहीं पापोदय में, जिनभक्ति में पगी रहे॥
पुण्योदय में अटक न जावें, दीखे साध्य महंत है॥७॥
परलक्षी वृत्ति ही आकर, शिवसाधन में विघ्न करे।
हो पुरुषार्थ अलौकिक ऐसा, सावधान हर समय रहे॥
नहीं दीनता, नहीं निराशा, आतम शक्ति अनंत है॥८॥
चाहे जैसा जगत परिणमे, इष्टानिष्ट विकल्प न हो।
ऐसा सुन्दर मिला समागम, अब मिथ्या संकल्प न हो॥
शान्तभाव हो प्रत्यक्ष भासे, मिटे कषाय दुरन्त हैं॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही भावना प्रभो स्वप्न में भी, विराधना रंच न हो।
सत्य, सरल परिणाम रहें नित, मन में कोई प्रपंच न हो॥
विषय कषायारम्भ रहित, आनँदमय पद निर्ग्रन्थ है॥१०॥
धन्य घड़ी हो जब प्रगटावे, मंगलकारी जिनदीक्षा।
प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, होय सफल तब ही शिक्षा॥
अविरल निर्मल आत्मध्यान हो, होय भ्रमण का अंत है॥११॥
अहो जितेन्द्रिय जितमोही ही, सहज परम पद पाता है।
समता से सम्पन्न साधु ही, सिद्ध दशा प्रगटाता है॥
बुद्धि व्यवस्थित हुई सहज ही, यही सहज शिवपंथ है॥१२॥
आराधन में क्षण-क्षण बीते, हो प्रभावना सुखकारी।
इसी मार्ग में सब लग जावें, भाव यही मंगलकारी॥
सद्दृष्टि-सद्ज्ञान-चरणमय, लोकोत्तम यह पंथ है॥१३॥
तीन लोक अरु तीन काल में, शरण यही है भविजन को।
द्रव्य दृष्टि से निज में पाओ, व्यर्थ न भटकाओ मन को॥
इसी मार्ग में लगें लगावें, वे ही सच्चे संत हैं॥१४॥
है शाश्वत अकृत्रिम वस्तु, ज्ञानस्वभावी आत्मा।
जो आतम आराधन करते, बनें सहज परमात्मा॥
परभावों से भिन्न निहारो, आप स्वयं भगवंत है॥१५॥

अपूर्व अवसर

आवे कब अपूर्व अवसर जब, बाह्यान्तर होऊँ निर्ग्रन्थ।
सब सम्बन्धों के बन्धन तज, विचरूँ महत् पुरुष के पंथ॥१॥
सर्व भाव से उदासीन हो, भोजन भी संयम के हेतु।
किंचित् ममता नहीं देह से, कार्य सभी हों मुक्ती सेतु॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रगट ज्ञान मिथ्यात्व रहित से, दीखे आत्म काय से भिन्न।
चरितमोह भी दूर भगाऊँ, निज स्वभाव का ध्यान अछिन्न ॥३॥
जब तक देह रहे तब तक भी, रहूँ त्रिधा मैं निज में लीन।
घोर परीषह उपसर्गों से, ध्यान न होवे मेरा क्षीण ॥४॥
संयम हेतु योग प्रवर्तन, लक्ष्य स्वरूप जिनाज्ञाधीन।
क्षण-क्षण चिन्तन घटता जावे, हाऊँ अन्त ज्ञान में लीन ॥५॥
रागद्वेष ना हो विषयों में, अप्रमत्त अक्षोभ सदैव।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव से, विचरण हो निरपेक्षित एव ॥६॥
क्रोध प्रति मैं क्षमा संभारूँ, मान तजूँ मार्दव भाऊँ।
माया को आर्जव से जीतूँ, वृत्ति लोभ नहिं अपनाऊँ ॥७॥
उपसर्गों में क्रोध न तिलभर, चक्री वन्दे मान नहीं।
देह जाय किञ्चित् नहिं माया, सिद्धि का लोभ निदान नहीं ॥८॥
नगन वेष अरु केशलोंच, स्नान दन्त धोवन का त्याग।
नहीं रुचि शृङ्गार प्रति, निज संयम से होवे अनुराग ॥९॥
शत्रु मित्र देखूँ न किसी को, मानामान में समता हो।
जीवन मरण दोऊ सम देखूँ, भव-शिव में न विषमता हो ॥१०॥
एकाकी जंगल मरघट में, हो अडोल निज ध्यान धरूँ।
सिंह व्याघ्र यदि तन को खायें, उनमें मैत्रीभाव धरूँ ॥११॥
घोर तपश्चर्या करते, आहार अभाव में खेद नहीं।
सरस अन्न में हर्ष न रजकण, स्वर्ग ऋद्धि में भेद नहीं ॥१२॥
चारित मोह पराजित होवे, आवे जहाँ अपूर्वकरण।
अनन्य चिन्तन शुद्धभाव का, क्षपक श्रेणि पर आरोहण ॥१३॥
मोह स्वयंभूरमण पार कर, क्षीणमोह गुणस्थान वरूँ।
ध्यान शुक्ल एकत्व धार कर, केवलज्ञान प्रकाश करूँ ॥१४॥
भव के बीज घातिया विनशे, होऊँ मैं कृतकृत्य तभी।
दर्शज्ञान सुख बल अनन्तमय, विकसित हों निजभाव सभी ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार अघाती कर्म जहाँ पर, जली जेबरी भाँति रहें।
आयु पूर्ण हो मुक्त दशा फिर, देह मात्र भी नहीं रहे ॥१६॥
मन वच काया कर्म वर्गणा, के छूटे सब ही सम्बन्ध।
सूक्ष्म अयोगी गुणस्थान हो, सुखदायक अरु पूर्ण अबन्ध ॥१७॥
परमाणु मात्र स्पर्श नहीं हो, निष्कलंक अरु अचल स्वरूप।
चैतन्य मूर्ति शुद्ध निरंजन, अगुरुलघु बस निजपद रूप ॥१८॥
पूर्व प्रयोगादिक कारण वश, ऊर्ध्व गमन सिद्धालय तिष्ठ।
सादि अनन्त समाधि सुख में, दर्शन ज्ञान चरित्र अनन्त ॥१९॥
जो पद श्री सर्वज्ञ ज्ञान में, कह न सके पर श्री भगवान।
वह स्वरूप फिर अन्य कहे को, अनुभव गोचर है वह ज्ञान ॥२०॥
मात्र मनोरथ रूप ध्यान यह, है सामर्थ्य हीनता आज।
'रायचन्द' तो भी निश्चय मन, शीघ्र लहूँगा निजपद राज ॥२१॥
सहज भावना से प्रेरित हो, हुआ स्वयं ही यह अनुवाद।
शब्द अर्थ की चूक कहीं हो, सुधी सुधार हरो अवसाद ॥२२॥

समाधिमरण पाठ

सहज समाधि स्वरूप सु ध्याऊँ, ध्रुव ज्ञायक प्रभु अपना।
सहज ही भाऊँ सहज ही ध्याऊँ, ध्रुव ज्ञायक प्रभु अपना ॥१॥
आधि व्याधि उपाधि रहित हूँ, नित्य निरंजन ज्ञायक।
जन्म मरण से रहित अनादि-निधन ज्ञानमय ज्ञायक ॥२॥
भाव कलंक से भ्रमता भव-भव, क्षण नहीं साता आयी।
पहिचाने बिन निज ज्ञायक को, असह्य वेदना पायी ॥३॥
मिला भाग्य से श्री जिनधर्म, सु तत्त्वज्ञान उपजाया।
देहादिक से भिन्न ज्ञानमय, ज्ञायक प्रत्यक्ष दिखाया ॥४॥
कर्मादिक सब पुद्गल भासे, मिथ्या मोह नशाया।
धन्य-धन्य कृतकृत्य हुआ, प्रभु जाननहार जनाया ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपजे विनसे जो यह परिणति, स्वांग समान दिखावे।
हुआ सहज माध्यस्थ भाव, नहीं हर्ष विषाद उपजावे ॥६ ॥
स्वयं-स्वयं में तृप्त सदा ही, चित्स्वरूप विलसाऊँ।
हानि वृद्धि नहीं होय कदाचित्, ज्ञायक सहज रहाऊँ ॥७ ॥
पूर्ण स्वयं मैं स्वयं प्रभु हूँ, पर की नहीं अपेक्षा।
शक्ति अनन्त सदैव उछलती, परिणमती निरपेक्षा ॥८ ॥
अक्षय स्वयं-सिद्ध परमातम, मंगलमय अविकारी।
स्वानुभूति विलसे अन्तर में, भागे भाव विकारी ॥९ ॥
निरुपम ज्ञानानन्दमय जीवन, स्वाश्रय से प्रगटाया।
इन्द्रिय विषय असार दिखे, आनन्द स्वयं मैं पाया ॥१० ॥
नहीं प्रयोजन रहा शेष कुछ, देह रहे या जावे।
भिन्न सर्वथा दिखे अभी ही, नहीं अपनत्व दिखावे ॥११ ॥
द्रव्य प्राण तो पुद्गलमय हैं, मुझसे अति ही न्यारे।
शाश्वत चैतन्यमय अन्तर में, भाव-प्राण सुखकारे ॥१२ ॥
उनही से ध्रुव जीवन मेरा, नाश कभी नहीं होवे।
अहो महोत्सव के अवसर में, कौन मूढ़जन रोवे ? ॥१३ ॥
खेद न किञ्चित् मन में मेरे, निर्ममता हितकारी।
ज्ञाता-दृष्टा रहूँ सहज ही, भाव हुए अविकारी ॥१४ ॥
आनन्द मेरे उर न समावे, निर्ग्रन्थ रूप सु धारूँ।
तोरि सकल जगद्वन्द्व, निज ज्ञायक भाव सँभारूँ ॥१५ ॥
धन्य सुकौशल आदि मुनीश्वर हैं आदर्श हमारे।
हो उपसर्गजयी समता से, कर्मशत्रु निरवारे ॥१६ ॥
ज्ञानशरीरी अशरीरी प्रभु शाश्वत शिव में राजें।
भाव सहित तिनके सुमरण तैं, भव-भव के अघ भाजें ॥१७ ॥
उन समान ही निजपद ध्याऊँ, जाननहार रहाऊँ।
काल अनन्त रहूँ आनन्द में, निज में ही रम जाऊँ ॥१८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षणभंगुरता पर्यायों की लखकर मोह निवारो।
अरे जगतजन द्रव्यदृष्टि धर, अपनो रूप संभारो ॥१९ ॥
क्षमाभाव है सबके ही प्रति, सावधान हूँ निज में।
पाने योग्य स्वयं में पाया, सहज तृप्त हूँ निज में ॥२० ॥
साम्यभाव धरि कर्म विडारूँ, अपने गुण प्रगटाऊँ।
अनुपम शाश्वत प्रभुता पाऊँ, आवागमन मिटाऊँ ॥२१ ॥

(दोहा)

शान्त हुआ कृतकृत्य हुआ, निर्विकल्प निज माँहि।
तिष्ठूँ परमानन्दमय, अविनाशी शिव माँहि ॥

समाधिमरण पाठ

गौतम स्वामी वन्दों नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ, निशदिन ध्याऊँ, गाऊँ वचन कला है ॥
देव-धर्म-गुरु प्रीति महादृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने।
त्याग बाईस अभक्ष्य संयमी बारह व्रत नित ठाने ॥१ ॥
चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै।
बनिज करै परद्रव्य हरै नहिं छहों करम इमि साधै ॥
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहु दानी।
पर-उपकारी अल्प-अहारी सामायिक-विधि ज्ञानी ॥२ ॥
जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तन की ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै ॥
आग लगै अरु नाव डुबे जब धर्म विघन है आवे।
चार प्रकार अहार त्याग के मंत्र सु मन में ध्यावै ॥३ ॥
रोग असाध्य जहाँ बहु देखै कारण और निहारै।
बात बड़ी है जो बनि आवै भार भवन को डारै ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो न बनै तो घर में रहकरि सब सों होय निराला।
मात पिता सुत तिय को सौंपे निज परिग्रह अहि काला ॥४॥
कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सबही सों कहिके मन की शल्य हनेई॥
शत्रुन सों मिल निज कर जोरै मैं बहु कीनि बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने ते सब बकसो भाई॥५॥
धन धरती जो मुख सों मांगै सो सब दे सन्तोषै।
छहों काय के प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै॥
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पय लै।
दूधाहारी क्रम-क्रम तजि के छाछ अहार गहे लै॥६॥
छाछ त्यागि के पानी राखे पानी तजि संथारा।
भूमि माहिं थिर आसन मांडै साधर्मी ढिंग प्यारा॥
जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लेय संन्यासी पंच परमपद गहिये॥७॥
चौ आराधना मन में ध्यावै बारह भावन भावै।
दश लक्षणमय धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावै॥
पैंतीस सोलह षट पन चार अरु दुई इक वरन विचारै।
काया तेरी दुख की ढेरी ज्ञानमयी तू सारै॥८॥
अजर अमर निज गुण सों पूरै परमानन्द सुभावै।
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावै।
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहै भाव सम राखै।
अतीचार पाँचों सब त्यागै ज्ञान सुधारस चाखै॥९॥
हाड़ माँस सब सूखि जाय जब धरम लीन तन त्यागै।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरग में सेज उठै ज्यों जागै॥
तहँते आवे शिवपद पावे विलसै सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धरम जयवन्तो॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधिमरण पाठ

(नरेन्द्र छन्द)

वन्दौं श्री अरहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं।
अन्त समय में यह वर मागूँ, सो दीजै जगराई॥१॥
भव-भव में तन धार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृपरिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो॥
भव-भव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनों॥२॥
भव-भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये विधि योगे॥
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मीजन को, संग मिल्यो हितकारी॥३॥
भव-भव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो॥
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो॥४॥
काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एकबार हू सम्यक्युत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख कांई।
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योति स्वरूप सदाई॥५॥
विषय कषायनि के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यों कलेश हिय धार मरण कर, चारों गति भरमायो।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो ॥६ ॥
अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों।
रोग जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यागद छीजै ॥७ ॥
यह तन सात कुधातुमई है, देखत ही घिन आवे।
चामलपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥
अतिदुर्गन्ध अपावन सों, यह मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनाशी, जिय अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै ॥८ ॥
यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै ॥
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो ॥९ ॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ॥१० ॥
जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥
राग रोष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पंथ सहाई ॥११ ॥
कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावै।
तन पिंजर में बंध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै।
मृत्युराज अब आय दया कर, तनपिंजर सों काढ़ै ॥१२॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध-सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस असन कराये॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी॥१३॥
मृत्युराज को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक्रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई॥१४॥
यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पत्ति तेती॥१५॥
चौ-आराधन सहित प्राण, तज तो ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो॥
मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥१६॥
इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन होहै।
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै॥१७॥
मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्‍यो पर्‍यो बिललावै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल के परमाणु मिलकैं, पिण्डरूप तन भासी।
याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञानजोति गुण खासी॥१८॥
रोग शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारै।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारै॥
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खानपान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है॥१९॥
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो॥
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई॥२०॥
अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी॥
इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागैं।
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागैं॥२१॥
बिन समता तनऽनंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो।
शस्त्र घाततैंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्तबार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥२२॥
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै।
जप-तप बिन इस जग के माहीं, कोई भी ना सीजै॥२३॥
स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
तप ही सों शिवकामिनि पति ह्वै, यासों तप चित लावै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब मैं जानी समता बिन, मुझ कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता सुत बाँधव तिरिया ये सब हैं दुखदाई॥२४॥
मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावे, यों लख मोह तज्यो है॥
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजे।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजे॥२५॥
जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो॥
परभव में जो संग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै॥२६॥
दशलक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवों प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो॥२७॥
अन्त समय में यह शुभ भावहिं, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाकैं।
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकैं॥२८॥
मन थिरता करके तुम चिंतौ, चौ-आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं॥
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी॥२९॥
तिनमें कछुइक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भाव सहित वन्दौं मैं तासों, दुर्गति होय न ताकै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हियेविच लावै॥३०॥
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत पाँव भख्यो दुखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३१॥
धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिग नहिं, आतम सों हित लायो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३२॥
देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगनि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकड़ी तिनकौ, तो भी नाहिं चिगारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३३॥
सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्यो गुण आपी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३४॥
श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितार्‍यो।
धर सलेखना परिग्रह छोड़्यो, शुद्ध भाव उर धार्‍यो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३५॥
समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
तो दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यौ निजगुण भाई॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३६॥
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशांबीतट जानो।
नद्दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३७॥
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दु:ख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३८॥
श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥३९॥
वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धर्यो मन लाई।
सूर्यघाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४०॥
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
बैरी चण्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दु:ख है? मृत्यु महोत्सव भारी॥४१॥
विद्युच्चर ने बहु दुख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२ ॥
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४३ ॥
दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४ ॥
अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरव कर्म विचारे ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५ ॥
चाणकमुनि गौघर के माहीं, मूंद अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६ ॥
सातशतक मुनिवर दुख पायो, हथिनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७ ॥
लोहमयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये।
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तो भी नाहिं चिगाये ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥
और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हमको हो सुखदाता, हरिहैं टेव प्रमादी॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकों सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों॥४९॥
यों समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै॥५०॥
मात-पितादिक सर्व कुटुम मिल, नीके शकुन बनावै।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै॥
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे॥५१॥
सर्वकुटुम जब रोवन लागैं, तोहि रुलावैं सारे।
ये अपशकुन करैं सुन तोकौं, तू यों क्यों न विचारै॥
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो मोह तनो दुख हानो॥५२॥
होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परमतत्त्व उर लावो॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो॥५३॥
मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो 'सूरचन्द' शिवथान॥५४॥
पंच उभय नव एक नभ संवत सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी कह्यो पाठ मन लाय॥५५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधि-भावना

दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ।।टेक।।
शत्रु अगर कोई हो सन्तुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर, सबसे क्षमा कराऊँ।।१।।
त्यागूँ अहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ।।२।।
जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुम से ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ।।३।।
आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ।
अरहन्त सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊँ।।४।।
धर्मात्मा निकट हों, चरचा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ।।५।।
जीने की हो न वाँछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ।।६।।
भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ।।७।।
रत्नत्रय का हो पालन, हो अन्त में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह जीवन सफल बनाऊँ।।८।।

वैराग्य भावना

(दोहा)

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं।।१।।

(जोगीरासा वा नरेंद्र छंद)

इहविध राज करै नर नायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक दिवस शुभ कर्म संजोगे, क्षेमंकर मुनि वन्दे।
देखें श्रीगुरु के पद पंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥२॥
तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यौ, चरनन में दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज-रमा-वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥३॥
मुनिसूरज कथनी किरणावलि, लगत भरमबुधि भागी।
भवतनभोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी॥
इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवै॥
जामन मरन जरा दव दाझै, जीव महादुख पावै॥४॥
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वध-बंधन-भयकारी॥
सुरगति में पर-संपत्ति देखे, राग उदय दुःख होई।
मानुषयोनि अनेक विपत्तिमय, सर्व सुखी नहिं कोई॥५॥
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विगूचे, कोई तन के रोगी॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुःख बाहिर दीखै, किस ही उर दुचिताई॥६॥
कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संतति सों दुःख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे, सब दीखै दुःख दाता॥७॥
जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते, संजम सों अनुरागे॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्त कुधातु भरी मल मूरत, चाम लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है॥
नव मल द्वार स्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै॥९॥
पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढावै॥
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै, यामैं सार यही है॥१०॥
भोग बुरे भव रोग बढावैं, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥
वज्र अगिनि विष से विषधर से, ये अधिके दुःखदाई।
धर्म रतन के चोर चपल अति, दुर्गति पंथ सहाई॥११॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै॥
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंकै, लहर जहर की आवै॥१२॥
मैं चक्रीपद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥
राज समाज महा अघ कारण, बैर बढ़ावन हारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतियारा॥१३॥
मोह महारिपु बैर विचार्‌यो, जगजिय संकट डारे।
तन कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण-तप, ये जिय के हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी॥१४॥
छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरणतृण सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत को, राज्य दियो बड़भागी ॥१५॥
होय निःशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्रीगुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिनपद धोक हमारी ॥१६॥

(दोहा)

परिग्रह पोट उतार सब, लीनो चारित पंथ।
निजस्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥१७॥

वैराग्य पच्चीसिका

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव।
मन वच शीश नवाय के, कीजे तिनकी सेव ॥१॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग।
मूल दुहुन को यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥२॥
क्रोध मान माया धरत, लोभ सहित परिणाम।
ये ही तेरे शत्रु हैं, समझो आतम राम ॥३॥
इनहीं चारों शत्रु को, जो जीते जगमाहिं।
सो पावहिं पथ मोक्ष को, यामें धोखो नाहिं ॥४॥
जा लक्ष्मी के काज तू, खोवत है निज धर्म।
सो लक्ष्मी संग ना चले, काहे भूलत मर्म ॥५॥
जा कुटुम्ब के हेत तू, करत अनेक उपाय।
सो कुटुम्ब अगनी लगा, तोकों देत जराय ॥६॥
पोषत है जा देह को, जोग त्रिविध के लाय।
सो तोकों छिन एक में, दगा देय खिर जाय ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मी साथ न अनुसरै, देह चले नहिं संग।
काढ़-काढ़ सुजनहिं करें, देख जगत के रंग॥८॥
दुर्लभ दस दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय।
विषय सुखन के कारने, सरवस चले गमाय॥९॥
जगहिं फिरत कई युग भये, सो कछु कियो विचार।
चेतन अब तो चेतहू, नरभव लहि अतिसार॥१०॥
ऐसे मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय॥११॥
पी तो सुधा स्वभाव की, जी तो कहूँ सुनाय।
तू रीतो क्यों जातु है, वीतो नरभव जाय॥१२॥
मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट।
भ्रष्ट करत है शिष्ट को, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट॥१३॥
चेतन कर्म उपाधि तज, राग-द्वेष को संग।
ज्यों प्रगटे परमात्मा, शिव सुख होय अभंग॥१४॥
ब्रह्म कहूँ तो मैं नहीं, क्षत्री हूँ पुनि नाहिं।
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानन्द हूँ माहिं॥१५॥
जो देखै इहि नैन सों, सो सब बिनस्यो जाय।
तासों जो अपनौ कहे, सो मूरख शिर राय॥१६॥
पुद्गल को जो रूप है, उपजे विनसै सोय।
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय॥१७॥
देख अवस्था गर्भ की, कौन-कौन दुख होहिं।
बहुरि मगन संसार में, सो लानत है तोहि॥१८॥
अधो शीश ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार।
थोरे दिन की बात यह, भूल जात संसार॥१९॥
अस्थि चर्म मल मूत्र में, रैन दिना को वास।
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोगादिक पीड़ित रहे, महा कष्ट जो होय।
तबहु मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय॥२१॥
मरन समै विललात है, कोऊ लेहु बचाय।
जाने ज्यों-त्यों जीजिये, जोर न कछु बसाय॥२२॥
फिर नरभव मिलिवो नहीं, किये हु कोट उपाय।
तातें बेगहिं चेतहू, अहो जगत के राय॥२३॥
'भैया' की यह बीनती, चेतन चितहिं विचार।
ज्ञान दर्श चारित्र में, आपो लेहु निहार॥२४॥
एक सात पंचास को, संवत्सर सुखकार।
पक्ष सुकल तिथिधर्म की, जैजै निशिपतिवार॥२५॥

आत्म सम्बोधन (वैराग्यभावना)

हे चेतन! तुम शान्तचित्त हो, क्यों न करो कुछ आत्मविचार।
पुन: पुन: मिलना दुर्लभ है, मोक्ष योग्य मानव अवतार॥
भव विकराल भ्रमण में तुझको, हुई नहीं निजतत्त्व प्रतीति।
छूटी नहीं अन्य द्रव्यों से, इस कारण से मिथ्या प्रीति॥१॥
संयोगों में दत्त चित्त हो, भूला तू अपने को आप।
होने को ही सुखी निरन्तर, करता रहता अगणित पाप॥
सहने को तैयार नहीं जब, अपने पापों के परिणाम।
त्याग उन्हें दृढ़ होकर मन में, कर स्वधर्म में ही विश्राम॥२॥
सत्य सौख्य का तुझे कभी भी, आता है क्या कुछ भी ध्यान।
विषयजन्य उस सुखाभास को, मान रहा है सौख्य महान॥
भवसुख के ही लिए सर्वथा, करता रहता यत्न अनेक।
जान-बूझकर फंसता दु:ख में, भुला विमल चैतन्य विवेक॥३॥
मान कभी धन को सुख साधन, उसे जुटाता कर श्रम घोर।
मलता रह जाता हाथों को, उसे चुरा लेते जब चोर॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मशान्ति मिलती कब धन से, चिन्ताओं का है वह गेह।
होने देता नहीं तनिक भी, मोक्ष साधनों से शुभ नेह ॥४॥
दुग्धपान से ज्यों सर्पों में, होता अधिक गरल विस्तार।
धन संचय से त्यों बढ़ते हैं, कभी-कभी मन में कुविचार॥
इसकी वृद्धि कभी मानव को, अहो बना देती है अन्ध।
दुखिया से मिलने में इसको, आती हाय! महा दुर्गन्ध॥५॥
हे चेतन धन की ममता वश, भोगे तुमने कष्ट अपार।
देखो अपने अमर द्रव्य को, जहाँ सौख्य का पारावार॥
देवों का वैभव भी तुमको, करना पड़ा अन्त में त्याग।
तो अब प्रभु के पदपंकज में, बनकर भ्रमर करो शुभ राग॥६॥
इन्द्र-भवन से बनवाता है, सुख के लिए बड़े प्रसाद।
क्यों तेरे यह संग चलेंगे, इसको भी तू करना याद॥
इस तन में से जिस दिन चेतन, कर जायेगा आप प्रयाण।
जाना होगा उस घर से ही, तन को बिना रोक शमशान॥७॥
अपना-अपना मान जिन्हें तू, खिला-पिलाकर करता पुष्ट।
अवसर मिलने पर वे ही जन, करते तेरा महा-अनिष्ट॥
ऐसी-ऐसी घटनाओं से, भरे हुए इतिहास पुराण।
पढ़कर सुनकर नहीं समझता, यही एक आश्चर्य महान॥८॥
क्षण-क्षण करके नित्य निरन्तर, जाता है जीवन का काल।
करता नहीं किन्तु यह चेतन, क्षण भर भी अपनी सम्भाल॥
दुःख इसे देता रहता है, इसका ही भीषण अज्ञान।
सत्पुरुषों से रहे विमुख नित, प्रगटे लेश न सम्यग्ज्ञान॥९॥
मिला तुझे है मानव का भव, कर सत्त्वर ऐसा सदुपाय।
मिले सौख्यनिधि अपनी उत्तम, जनम-मरण का दुःख टल जाय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखप्रद वही एक है जीवन, जहाँ स्वच्छ है तत्त्व प्रधान।
बाकी तो मनुजों का जीवन, सचमुच तो है मृतक समान ॥१०॥
सुखदायक क्या हुए किसी को, जगती में ये भीषण भोग।
अहि समान विकराल सर्वथा, जीवों को इनका संयोग॥
छली मित्र सम ऊपर से ये, दिखते हैं सुन्दर अत्यन्त।
पर इनकी रुचि मात्र विश्व में, कर देती जीवन का अन्त ॥११॥
स्पर्शन इन्द्रिय के वश ही, देखो वनगज भी बलबान।
पड़कर के बन्धन में सहसा, सहता अविरल कष्ट महान॥
मरती स्वयं पाश में फंसकर, रसनासक्त चपल जलमीन।
सुध-बुध खो देता है अपनी, भ्रमर कमल में होकर लीन ॥१२॥
दीपक पर पड़कर पतंग भी, देता चक्षु विवश निज प्राण।
सुनकर हिंसक-शब्द मनोहर, रहता नहीं हिरन को ध्यान॥
एक विषय में लीन जीव जब, पाता इतने कष्ट अपार।
पाँच इन्द्रियों के विषयों में, लीन सहेगा कितनी मार ॥१३॥
जनम-जनम में की है चेतन, तूने सुख की ही अभिलाष।
हुआ नहीं फिर भी किञ्चित् कम, अब तक भी तेरा भववास॥
त्रिविध ताप से जलता रहता, अन्तरात्मा है दिन-रात।
कर सत्त्वर पुरुषार्थ सत्य तू, जग प्रपञ्च में देकर लात ॥१४॥
रोगों का जिसमें निवास है, अशुचि पिण्ड ही है यह देह।
देख कौन सी इसमें सुषमा, करता है तू इस पर नेह॥
तेरे पीछे लगा हुआ है, हा! अनादि का मोह पिशाच।
छुड़ा स्वच्छ रत्नों को प्रतिपल, ग्रहण कराता रहता काँच ॥१५॥
भूल आप को क्षणिक देह में, तुझे हुआ जो राग अपार।
बढ़ता रहता राग-द्वेष से, महादुःखद तेरा संसार॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

त्याग देह की ममता सारी, सुद्गुरुओं के चरण उपास।
तो छूटेगा यहाँ सहज में, तेरा दुःखदायी भवपाश ॥१६ ॥
जड़ तन में आत्मत्वबुद्धि ही, सकल दुखों का है दृढ़मूल।
देहाश्रित भावों को अपना, मान भंयकर करता भूल ॥
जो-जो तन मिलता है तुझको, उसी रूप बन जाता आप।
फिर उसके परिवर्तन को लख, होता है तुझको संताप ॥१७ ॥
हो विरक्त तू भव भोगों से, ले श्री जिनवर का आधार।
रहकर सत्सङ्गति में निशदिन, कर उत्तम निजतत्त्व विचार ॥
निज विचार बिन इन कष्टों का, होगा नहीं कभी भी अन्त।
दुःख का हो जब नाश सर्वथा, विकसित हो तब सौख्य बंसत ॥१८ ॥
बिन कारण ही अन्य प्राणियों, पर करता रहता है रोष।
'मैं महान' कर गर्व निरन्तर, मन में धरता है सन्तोष ॥
बना रहा जीवन जगती में, यह मानव बन कपट प्रधान।
निज का वैभव तनिक न देखा, पर का कीना लोभ निदान ॥१९ ॥
करमबन्ध होता कषाय से, करो प्रथम इनका संहार।
राग-द्वेष की ही परिणति से, होता है विस्तृत संसार ।।
दुःख की छाया में बैठे हैं, मिलकर भू पर रंक नरेश।
प्रगट किसी का दुःख दिखता है, और किसी के मन में क्लेश ॥२० ॥
जिन्हें समझता सुख निधान तू, पूछ उन्हीं से मन की बात।
कर निर्धार सौख्य का सत्त्वर, करो मोह राजा का घात।
जिन्हें मानता तू सुखदायक, मिली कौन-सी उनसे शान्ति।
दुख में होती रही सहायक, दिन दूनी तेरी ही भ्रान्ति ॥२१ ॥
कर केवल अब आत्मभावना, पर-विषयों से मुख को मोड़।
मोक्षसाधना में निजमन को, तज विकल्प पर निशदिन जोड़ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म और उसके फल से भी, भिन्न एक अपने को जान।
सिद्धसदृश अपने स्वरूप का, कर चेतन दृढ़तम श्रद्धान॥२२॥
तूने अपने ही हाथों से, बिछा लिया है भीषण जाल।
नहीं छूटता है अब उससे, ममता वश सारा जंजाल॥
छोड़े बिना नहीं पावेगा, कभी शान्ति का नाम निशान।
परम शान्ति के लिए अलौकिक, कर अब तू बोधामृत पान॥२३॥
शत्रु मित्र की छोड़ कल्पना, सुख-दुख में रख समता भाव।
रत्न और तृण में रख समता, जान वस्तु का अचल स्वभाव॥
निन्दा सुनकर दुखित न हो तू, यशोगान सुन हो न प्रसन्न।
मरण और जीवन में सम हो, जगत इन्द्र सब ही हैं भिन्न॥२४॥
इस संसार भ्रमण में चेतन, हुआ भूप कितनी ही बार।
क्षीण पुण्य होते ही तू तो, हुआ कीट भी अगणित बार॥
प्राप्त दिव्य मानव जीवन में, कर न कभी तू लेश ममत्व।
करके दूर चित्त अस्थिरता, समझ सदा अपना अपनत्व॥२५॥
पर गुण-पर्यायों में चेतन, त्यागो तुम अब अपनी दौड़।
कर विचार शुचि आत्मद्रव्य का, परपरिणति से मुख को मोड़॥
एक शुद्ध चेतन अपना ही, ग्रहण योग्य है जग में सार।
शान्तचित्त हो पर-पुदग्ल से, हटा शीघ्र अपना अधिकार॥२६॥

परमार्थ विंशतिका

राग-द्वेष की परिणति के वश, होते नाना भाँति विकार।
जीव मात्र ने उन भावों को, देखा सुना अनेकों बार॥
किन्तु न जाना आत्मतत्त्व को, है अलभ्य सा उसका ज्ञान।
भव्यों से अभिवन्दित है नित, निर्मल यह चेतन भगवान॥१॥
अन्तर्बाह्य विकल्प जाल से, रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप।
शान्त और कृत-कृत्य सर्वथा, दिव्य अनन्त चतुष्टय रूप॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छूती उसे न भय की ज्वाला, जो है समता रस में लीन।
वन्दनीय वह आत्म-स्वस्थता, हो जिससे आत्मीक सुख पीन॥२॥
एक स्वच्छ एकत्व ओर भी, जाता है जब मेरा ध्यान।
वही ध्यान परमात्म तत्त्व का, करता कुछ आनन्द प्रदान॥
शील और गुण युक्त बुद्धि जो, रहे एकता में कुछ काल।
हो प्रगटित आनन्द कला वह, जिसमें दर्शन ज्ञान विशाल॥३॥
नहीं कार्य आश्रित मित्रों से, नहीं और इस जग से काम।
नहीं देह से नेह लेश अब, मुझे एकता में आराम॥
विश्वचक्र में संयोगों वश, पाये मैंने अतिशय कष्ट।
हुआ आज सबसे उदास मैं, मुझे एकता ही है इष्ट॥४॥
जाने और देखता सबको, रहे तथा चैतन्य स्वरूप।
श्रेष्ठ तत्त्व है वही विश्व में, उसी रूप मैं नहिं पररूप॥
राग द्वेष तन मन क्रोधादिक, सदा सर्वथा कर्मोत्पन्न।
शत-शत शास्त्र श्रवण कर मैंने, किया यही दृढ़ यह सब भिन्न॥५॥
दुषमकाल अब शक्ति हीन तनु, सहे नहीं परीषह का भार।
दिन-दिन बढ़ती है निर्बलता, नहीं तीव्र तप पर अधिकार॥
नहीं कोई दिखता है अतिशय, दुष्कर्मों से पाऊँ त्रास।
इन सबसे क्या मुझे प्रयोजन, आत्मतत्त्व का है विश्वास॥६॥
दर्शन ज्ञान परम सुखमय मैं, निज स्वरूप से हूँ द्युतिमान।
विद्यमान कर्मों से भी है, भिन्न शुद्ध चेतन भगवान॥
कृष्ण वस्तु की परम निकटता, बतलाती मणि को सविकार।
शुद्ध दृष्टि से जब विलोकते, मणि स्वरूप तब तो अविकार॥७॥
राग- द्वेष वर्णादि भाव सब, सदा अचेतन के हैं भाव।
हो सकते वे नहीं कभी भी, शुद्ध पुरुष के आत्मस्वभाव॥
तत्त्व-दृष्टि हो अन्तरंग में, जो विलोकता स्वच्छ स्वरूप।
दिखता उसको परभावों से, रहित एक निज शुद्ध स्वरूप॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर पदार्थ के इष्टयोग को, साधु समझते हैं आपत्ति।
धनिकों के संगम को समझें, मन में भारी दुःखद विपत्ति॥
धन मदिरा के तीव्रपान से, जो भूपति उन्मत्त महान।
उनका तनिक समागम भी तो, लगता मुनि को मरण समान॥९॥
सुखदायक गुरुदेव वचन जो, मेरे मन में करें प्रकाश।
फिर मुझको यह विश्व शत्रु बन, भले सतत दे नाना त्रास॥
दे न जगत भोजन तक मुझको, हो न पास में मेरे वित्त।
देख नग्न उपहास करें जन, तो भी दुःखित नहीं हो चित्त॥१०॥
दुःख व्याल से पूरित भव वन, हिंसा अघद्रुम जहाँ अपार।
ठौर-ठौर दुर्गति-पल्लीपति, वहाँ भ्रमे यह प्राणि अपार॥
सुगुरु प्रकाशित दिव्य पंथ में, गमन करे जो आप मनुष्य।
अनुपम- निश्चल मोक्षसौख्य को, पा लेता वह त्वरित अवश्य॥११॥
साता और असाता दोनों कर्म और उसके हैं काज।
इसीलिए शुद्धात्म तत्त्व से, भिन्न उन्हें माने मुनिराज॥
भेद भावना में ही जिनका, रात-दिवस रहता है वास।
सुख-दुःख जन्य विकल्प कहाँ से, रहते ऐसे भवि के पास॥१२॥
देव और प्रतिमा पूजन का, भक्ति भाव सह रहता ध्यान।
सुनें शास्त्र गुरुजन को पूजें, जब तक है व्यवहार प्रधान॥
निश्चय से समता से निज में, हुई लीन जो बुद्धि विशिष्ट।
वही हमारा तेज पुंजमय, आत्मतत्त्व सबसे उत्कृष्ट॥१३॥
वर्षा हरे हर्ष को मेरे, दे तुषार तन को भी त्रास।
तपे सूर्य मेरे मस्तक पर, काटें मुझको मच्छर डांस॥
आकर के उपसर्ग भले ही, कर दें इस काया का पात।
नहीं किसी से भय है मुझको, जब मन में है तेरी बात॥१४॥
मुख्य आँख इन्द्रिय कर्षकमय, ग्राम सर्वथा मृतक समान।
रागादिक कृषि से चेतन को, भिन्न जानना सम्यक्ज्ञान॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कुछ होना हो सो होगा, करूँ व्यर्थ ही क्यों मैं कष्ट?
विषयों की आशा तज करके, आराधूँ मैं अपना इष्ट ॥१५॥
कर्मों के क्षय से उपशम से, अथवा गुरु का पा उपदेश।
बनकर आत्मतत्त्व का ज्ञाता, छोड़े जो ममता निःशेष॥
करे निरन्तर आत्म-भावना, हों न दुःखों से जो संतप्त।
ऐसा साधु पाप से जग में, कमलपत्र सम हो नहिं लिप्त ॥१६॥
गुरु करुणा से मुक्ति प्राप्ति के, लिए बना हूँ मैं निर्ग्रन्थ।
उसके सुख से इन्द्रिय सुख को, माने चित्त दुःख का पंथ॥
अपनी भूल विवश नर तब तक, लेता रहा खली का स्वाद।
जब तक उसे स्वच्छ मधु रसमय, नहीं शर्करा का हो स्वाद ॥१७॥
ध्यानाश्रित निर्ग्रन्थ भाव से, मुझे हुआ है जो आनन्द।
दुर्ध्यानाक्ष सुखों का तो फिर, कैसे करे स्मरण मतिमन्द?
ऐसा कौन मनुज है जग में, तज करके जो जलता गेह।
छोड़ वापिका का शीतल जल, पड़े अग्नि में आप सनेह ॥१८॥
मोह जन्य मोक्षाभिलाष भी, करे मोक्ष का स्वयं विरोध।
अन्य द्रव्य की करें न इच्छा, जिन्हें तत्त्व का है शुभ बोध॥
आलोचन में दत्तचित्त नित, शुद्ध आत्म का जिन्हें विचार।
तत्त्वज्ञान में तत्पर मुनिजन, ग्रहें नहीं ममता का भार ॥१९॥
इस निर्मल चेतन के सुख का, जिस क्षण आता है आस्वाद।
विषय नष्ट होते सारे तब, रस समस्त लगते निःस्वाद॥
होती दूर देह की ममता, मन वाणी हो जाते मौन।
गोष्ठी कथा, कुतूहल छूटें, उस सुख को नर जाने कौन ॥२०॥
वचनातीत, पक्षच्युत सुन्दर निश्चय नय से है यह तत्त्व।
व्यवहृति पथ में प्राप्त शिष्य, वचनों द्वारा समझें आत्मत्त्व॥
करूँ तत्त्व का दिव्य कथन मैं, नहीं यहाँ वह शक्ति समृद्धि।
जान अशक्त आपको इसमें, मौन रहे मुझसा जड़ बुद्धि ॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानाष्टक

निरपेक्ष हूँ कृतकृत्य मैं, बहु शक्तियों से पूर्ण हूँ।
मैं निरालम्बी मात्र ज्ञायक, स्वयं में परिपूर्ण हूँ॥
पर से नहीं सम्बन्ध कुछ भी, स्वयंसिद्ध प्रभु सदा।
निर्बाध अरु निःशंक निर्भय, परम आनन्दमय सदा॥१॥
निज लक्ष से होऊँ सुखी, नहिं शेष कुछ अभिलाष है।
निज में ही होवे लीनता, निज का हुआ विश्वास है॥
अमूर्तिक चिन्मूर्ति मैं, मंगलमयी गुणधाम हूँ।
मेरे लिए मुझसा नहीं, सच्चिदानन्द अभिराम हूँ॥२॥
स्वाधीन शाश्वत मुक्त अक्रिय अनन्त वैभववान हूँ।
प्रत्यक्ष अन्तर में दिखे, मैं ही स्वयं भगवान हूँ॥
अव्यक्त वाणी से अहो, चिन्तन न पावे पार है।
स्वानुभव में सहज भासे, भाव अपरम्पार है॥३॥
श्रद्धा स्वयं सम्यक् हुई, श्रद्धान ज्ञायक हूँ हुआ।
ज्ञान में बस ज्ञान भासे, ज्ञान भी सम्यक् हुआ॥
भग रहे दुर्भाव सम्यक्, आचरण सुखकार है।
ज्ञानमय जीवन हुआ, अब खुला मुक्ति द्वार है॥४॥
जो कुछ झलकता ज्ञान में, वह ज्ञेय नहिं बस ज्ञान है।
नहिं ज्ञेयकृत किंचित् अशुद्धि, सहज स्वच्छ सुज्ञान है॥
परभाव शून्य स्वभाव मेरा, ज्ञानमय ही ध्येय है।
ज्ञान में ज्ञायक अहो, मम ज्ञानमय ही ज्ञेय है॥५॥
ज्ञान ही साधन, सहज अरु ज्ञान ही मम साध्य है।
ज्ञानमय आराधना, शुद्ध ज्ञान ही आराध्य है॥
ज्ञानमय ध्रुव रूप मेरा, ज्ञानमय सब परिणमन।
ज्ञानमय ही मुक्ति मग, मैं ज्ञानमय अनादिनिधन॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान ही है सार जग में, शेष सब निस्सार है।
ज्ञान से च्युत परिणमन का नाम ही संसार है॥
ज्ञानमय निजभाव को बस भूलना अपराध है।
ज्ञान का सम्मान ही, संसिद्धि सम्यक् राध है॥७॥
अज्ञान से ही बंध, सम्यग्ज्ञान से ही मुक्ति है।
ज्ञानमय संसाधना, दुख नाशने की युक्ति है॥
जो विराधक ज्ञान का, सो डूबता मंझधार है।
ज्ञान का आश्रय करे, सो होय भव से पार है॥८॥
यों जान महिमा ज्ञान की, निज ज्ञान को स्वीकार कर।
ज्ञान के अतिरिक्त सब, परभाव का परिहार कर॥
निजभाव से ही ज्ञानमय हो, परम-आनन्दित रहो।
होय तन्मय ज्ञान में, अब शीघ्र शिव-पदवी धरो॥९॥

सांत्वनाष्टक

शान्त चित्त हो, निर्विकल्प हो, आत्मन् निज में तृप्त रहो।
व्यग्र न होओ, क्षुब्ध न होओ, चिदानन्द रस सहज पिओ॥टेक॥
स्वयं स्वयं में सर्व वस्तुएँ, सदा परिणमित होती हैं।
इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, व्यर्थ कल्पना झूठी है॥
धीर-वीर हो मोहभाव तज, आतम-अनुभव किया करो॥१॥ व्यग्र.॥
देखो प्रभु के ज्ञान माहिं, सब लोकालोक झलकता है।
फिर भी सहज मग्न अपने में, लेश नहीं आकुलता है॥
सच्चे भक्त बनो प्रभुवर के ही पथ का अनुसरण करो॥२॥ व्यग्र.॥
देखो मुनिराजों पर भी, कैसे-कैसे उपसर्ग हुए।
धन्य-धन्य वे साधु साहसी, आराधन से नहीं चिगे॥
उनको निज-आदर्श बनाओ, उर में समता-भाव धरो॥३॥ व्यग्र.॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याकुल होना तो, दुख से बचने का कोई उपाय नहीं।
होगा भारी पाप बंध ही, होवे भव्य उपाय नहीं॥
ज्ञानाभ्यास करो मन माहीं, दुर्विकल्प दुखरूप तजो॥४॥ व्यग्र.॥
अपने में सर्वस्व है अपना, परद्रव्यों में लेश नहीं।
हो विमूढ़ पर में ही क्षण-क्षण, करो व्यर्थ संक्लेश नहीं॥
अरे विकल्प अकिंचित्कर ही, ज्ञाता हो ज्ञाता ही रहो॥५॥ व्यग्र.॥
अन्तर्दृष्टि से देखो नित, परमानन्दमय आत्मा।
स्वयंसिद्ध निर्द्वन्द्व निरामय, शुद्ध बुद्ध परमात्मा॥
आकुलता का काम नहीं कुछ, ज्ञानानन्द का वेदन हो॥६॥ व्यग्र.॥
सहज तत्त्व की सहज भावना, ही आनन्द प्रदाता है।
जो भावे निश्चय शिव पावे, आवागमन मिटाता है॥
सहजतत्त्व ही सहज ध्येय है, सहजरूप नित ध्यान धरो॥७॥ व्यग्र.॥
उत्तम जिन वचनामृत पाया, अनुभव कर स्वीकार करो।
पुरुषार्थी हो स्वाश्रय से इन, विषयों का परिहार करो॥
ब्रह्मभावमय मंगल चर्या, हो निज में ही मग्न रहो॥८॥ व्यग्र.॥

ब्रह्मचर्य द्वादशी

ब्रह्मचर्य की अद्‌भुत महिमा, आज बताऊँ भली-भली।
ब्रह्मचर्य बिन जीवन निष्फल, बात कहूँ मैं खरी-खरी॥टेक॥
निज सुख शान्ति निज में ही है, बाहर कहीं न पाओगे।
व्यर्थ भ्रमे हो और भ्रमोगे, समय चूक पछताओगे॥
भोगों में तो फँस कर भाई, तुमने भारी विपद भरी॥१॥
जैसे बड़ी-बड़ी नदियों पर, बाँध बँधे देखे होंगे॥
सोचो बाँध टूट जावे तो, क्यों नहीं नगर नष्ट होंगे॥
ब्रह्मचर्य का बाँध टूटने से, बरबादी घड़ी-घड़ी॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगों का घेरा ऐसा है, बाहर वाले ललचावें।
फँसने वाले भी पछतावें, सुख नहीं कोई पावे॥
धोखे में आवे नहीं ज्ञानी, शुद्धातम की प्रीति धरी॥३॥
पहले तो मिलना ही दुर्लभ, मिल जावें तो भोग कठिन।
भोगों से तृष्णा ही बढ़ती, इनसे होना तृप्ति कठिन॥
पाप कमावे धर्म गमावे, घूमे भव की गली-गली॥४॥
बत्ती तेल प्रकाश नाश ज्यों, दीपक धुआँ उगलता है।
रत्नत्रय को नाश मूढ़, भोगों में फँसकर हँसता है॥
सन्निपात का ही यह हँसना, सन्मुख जिसके मौत खड़ी॥५॥
सर्वव्रतों में चक्रवर्ती अरु, सब धर्मों में सार कहा।
अनुपम महिमा ब्रह्मचर्य की, शिवमारग शिवरूप अहा॥
ब्रह्मचर्य धारी ज्ञानी के, निजानन्द की झरे झड़ी॥६॥
पर-स्त्री-संग त्याग मात्र से, ब्रह्मचर्य नहिं होता है।
पंचेन्द्रिय के विषय छूट कर, निज में होय लीनता है॥
अतीचार जहाँ लगे न कोई, ब्रह्म भावना घड़ी-घड़ी॥७॥
सर्व कषायें अब्रह्म जानो, राग कुशील कहा दुखकार
सर्व विकारों की उत्पादक, पर-दृष्टि ही महा विकार॥
द्रव्यदृष्टि शुद्धात्म लीनता, ब्रह्मचर्य सुखकार यही॥८॥
सबसे पहले तत्त्वज्ञान कर, स्वपर भेद-विज्ञान करो।
निजानन्द का अनुभव करके, भोगों में सुखबुद्धि तजो॥
कोमल पौधों की रक्षा हित, शील बाढ़ नौ करो खड़ी॥९॥
समता रस से उसे सींचना, सादा जीवन तत्त्व विचार।
सत्संगति अरु ब्रह्म भावना, लगे नहिं किंचित् अतिचार॥
कमजोरी किंचित् नहीं लाना, बाधायें हों बड़ी-बड़ी॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मर्यादा का करें उल्लंघन, जग में भी संकट पावें।
निज मर्यादा में आते ही, संकट सारे मिट जावें॥
निज स्वभाव सीमा में आओ, पाओ अविचल मुक्ति मही॥११॥
चिंता छोड़ो स्वाश्रय से ही, सर्व विकल्प नशायेंगे।
कर्म छोड़ खुद ही भागेंगे, गुण अनन्त प्रगटायेंगे॥
'आत्मन्' निज में ही रम जाओ, आई मंगल आज घड़ी॥१२॥

अपना स्वरूप

रे जीव ! तू अपना स्वरूप देख तो जरा।
दृग-ज्ञान-सुख-वीर्य का भण्डार है भरा ॥टेक॥
न जन्मता मरता नहीं, शाश्वत प्रभु कहा।
उत्पाद व्यय होते हुये भी ध्रौव्य ही रहा॥१॥
पर से नहीं लेता नहीं देता तनिक पर को।
निरपेक्ष है पर से स्वयं में पूर्ण ही अहा॥२॥
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं स्वामी नहीं पर का।
अत्यंताभाव रूप से ज्ञायक ही प्रभु सदा॥३॥
पर को नहीं मेरी कभी मुझको नहीं पर की।
जरूरत पड़े सब परिणमन स्वतंत्र ही अहा॥४॥
पर दृष्टि झूठी छोड़कर निज दृष्टि तू करे।
निज में ही मगन होय तो आनन्द हो महा॥५॥
बस मुक्तिमार्ग है यही निज दृष्टि अनुभवन।
निज में ही होवे लीनता शिव पद स्वयं लहा॥६॥
'आत्मन्' कहूँ महिमा कहाँ तक आत्म भाव की।
जिससे बने परमात्मा शुद्धात्म वह कहा॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मङ्गल शृङ्गार

मस्तक का भूषण गुरु आज्ञा, चूड़ामणि तो रागी माने।
सत्-शास्त्र श्रवण है कर्णों का, कुण्डल तो अज्ञानी जाने ॥१॥
हीरों का हार तो व्यर्थ कण्ठ में, सुगुणों की माला भूषण।
कर पात्र-दान से शोभित हों, कंगन हथफूल तो हैं दूषण ॥२॥
जो घड़ी हाथ से बँधी हुई, वह घड़ी यहीं रह जायेगी।
जो घड़ी आत्म-हित में लागी, वह कर्म बंध विनशायेगी ॥३॥
जो नाक में नथुनी पड़ी हुई, वह अन्तर राग बताती है।
श्वास-श्वास में प्रभु सुमिरन से, नासिका शोभा पाती है ॥४॥
होठों की यह कृत्रिम लाली, पापों की लाली लायेगी।
जिसमें बँधकर तेरी आत्मा, भव-भव के दुःख उठायेगी ॥५॥
होठों पर हँसी शुभ्र होवे, गुणियों को लखते ही भाई।
ये होंठ तभी होते शोभित, तत्त्वों की चर्चा मुख आई ॥६॥
क्रीम और पाउडर मुख को, उज्ज्वल नहिं मलिन बनाता है।
हो साम्यभाव जिस चेहरे पर, वह चेहरा शोभा पाता है ॥७॥
आँखों में काजल शील का हो, अरु लज्जा पाप कर्म से हो।
स्वामी का रूप बसा होवे, अरु नाता केवल धर्म से हो ॥८॥
जो कमर करधनी से सुन्दर, माने उस सम है मूढ़ नहीं।
जो कमर ध्यान में कसी गई, उससे सुन्दर है नहीं कहीं ॥९॥
पैरों में पायल ध्वनि करतीं, वे अन्तर द्वन्द्व बताती हैं।
जो चरण चरण की ओर बढ़े, उनके सन्मुख शरमाती हैं ॥१०॥
जड़ वस्त्रों से तो तन सुन्दर, रागी लोगों को दिखता है।
पर सच पूछो उनके अन्दर, आतम का रूप सिसकता है ॥११।
जब बाह्य मुमुक्षु रूप धार, ज्ञानाम्बर को धारण करता।
अत्यन्त मलिन रागाम्बर तज, सुन्दर शिवरूप प्रकट करता ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्व ज्ञानमय ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र सुन्दर जग में।
जिसकी परिणति उसमें ठहरे, वह स्वयं विचरती शिवमग में ॥१३॥
वह समवसरण में सिंहासन पर, गगन मध्य शोभित होता।
रत्नत्रय के भूषण पहने, अपनी प्रभुता को प्रगटाता ॥१४॥
पर नहीं यहाँ भी इतिश्री, योगों को तज स्थिर होता।
अरु एक समय में सिद्ध हुआ, लोकाग्र जांय अविचल होता ॥१५॥

सूवा बत्तीसी

(दोहा)

नमस्कार जिनदेव को, करों दुहू कर जोर।
सुवा बत्तीसी सरस मैं, कहूँ अरिनदल मोर ॥१॥
आतम सुआ सुगरु-वचन, पढ़त रहै दिन रैन।
करत काज अघरीति के, यह अचरज लखि नैन ॥२॥
सुगुरु पढ़ावैं प्रेम सों, यहू पढ़त मन लाय।
घट के पट जे ना खुलैं, सबहि अकारथ जाय ॥३॥

(चौपाई)

सुवा पढ़ावै सुगुरु बनाय, करम वनहि जिन जइयो भाय।
भूल चूककर कबहु न जाहु, लोभ नलिनि पै चुगा न खाहु ॥१॥
दुर्जन मोह दगा के काज, बाँधी नलिनी तल धर नाज।
तुम जिन बैठहु सुवा सुजान, नाज विषयसुख लहि तिहँथान ॥२॥
जो बैठहु तो पकरि न रहो, जो पकरो तो दृढ़ जिन गहो।
जो दृढ़ गहो तो उलटि न जाव, जो उलटो तो तजि भजि धाव ॥३॥
इहविध सुआ पढ़ाओ नित्त, सुवटा पढ़िकै भयो विचित्त।
पढ़त रहै निशदिन ये बैन, सुनत लहैं सब प्रानी चैन ॥४॥
इक दिन सुवटै आई मनै, गुरु संगत तज भज गये वनै।
वन में लोभ नलिन अति बनी, दुर्जन मोह दगा कों तनी ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता तर विषय भोग अन धरे, सुवटै जान्यो ये सुख खरे।
उतरे विषय सुखन के काज, बैठ नलिनपै विलसै राज ॥६ ॥
बैठो लोभ नलिनपै जबै, विषय-स्वाद रस लटक्यो तबै।
लटकत तरैं उलटि गये भाय, तरमुंडी ऊपर भये पाँव ॥७ ॥
नलनी दृढ़ पकरे पुनि रहै, मुखतैं वचन दीनता कहै।
कोउ न तहाँ छुड़ावनहार, नलिनी पकरे करहि पुकार ॥८ ॥
पढ़त रहै गुरू के सब बैन, जे-जे हितकर रखिये ऐन।
सुवटा वन में उड़ जिन जाहु, जाहु तो भूल चुगा जिन खाहु ॥९ ॥
नलनी के जिन जइयो तीर, जाहु तो तहाँ न बैठहु वीर।
जो बैठो तो दृढ़ जिन गहो, जो दृढ़ गहो तो पकरि न रहो ॥१० ॥
जो पकरो तो चुगा न खइयो, जो तु खाव तो उलट न जइयो।
जो उलटो तो तज भज धइयो, इतनी सीख हृदय में लहियो ॥११ ॥
ऐसे वचन पढ़त पुन रहै, लोभ नलिन तज भज्यो न चहै।
आयो दुर्जन दुर्गति रूप, पकड़े सुवटा सुन्दर भूप ॥१२ ॥
डारे दुःख के जाल मंझार, सो दुख कहत न आवै पार।
भूख-प्यास बहु संकट सहै, परवस पर्यो महा दुख लहै ॥१३ ॥
सुवटा की सुधि-बुधि सब गई, यह तो बात और कछु भई।
आय पर्यो दुखसागर माहिं, अब इततैं कितको भज जाहिं ॥१४ ॥
केतो काल गयो इह ठौर, सुवटै जिय में ठानी और।
यह दुख जाल कटै किह भांति, ऐसी मन में उपजी ख्याति ॥१५ ॥
रात-दिना प्रभु सुमरन करै, पाप-जाल काटन चित धरै।
क्रम-क्रम कर काट्यो अघजाल, सुमरत फल भयो दीनदयाल ॥१६ ॥
अब इततैं जो भजकैं जाऊँ, तौ नलनी पर बैठ न खाऊँ।
पायो दाव भज्यो ततकाल, तज दुर्जन दुर्गति जंजाल ॥१७ ॥
आयो उड़त बहुरि वन माँहि, बैठ्यो नरभवद्रुम की छाँहि।
तित इक साधु महा मुनिराय, धर्म देशना देत सुभाय ॥१८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह संसार कर्मवन रूप, तामहिं चेतन सुआ अनूप।
पढ़त रहै गुरु वचन विशाल, तौहु न अपनी करै संभाल ॥१९ ॥
लोभ नलिन पै बैठ्यो जाय, विषय स्वादरस लटक्यो आय।
पकरहि दुर्जन दुर्गति परै, तामें दुःख बहुते जिय भरै ॥२० ॥
सो दुख कहत न आवै पार, जानत जिनवर ज्ञान मझाँर।
सुनतहि सुवटो चौंक्यो आप, यह तो मोह पर्‌यो सब पाप ॥२१ ॥
ये दुख तौ सब मैं ही सहे, जो मुनिवर ने मुखतैं कहे।
सुवटा सोचे हिये मँझार, ये गुरु साँचे तारनहार ॥२२ ॥
मैं शठ फिर्‌यो करमवन माहिं, ऐसे गुरु कहुँ पाये नाहिं।
अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो, साँचे गुरु को दर्शन लयो ॥२३ ॥
गुरु की थुति कर बारम्बार, सुवटा सोचे हिये मँझार।
सुमरत आप पाप भज गयो, घट के पट खुल सम्यक् थयो ॥२४ ॥
समकित होत लखी सब बात, यह मैं यह परद्रव्य विख्यात।
चेतन के गुण निजमहिं धरे, पुद्गल रागादिक परिहरे ॥२५ ॥
आप मगन अपने गुणमाहिं, जन्म-मरण भय जिनको नाहिं।
सिद्ध समान निहारत हिये, कर्मकलंक सबहि तज दिये ॥२६ ॥
ध्यावत आप माहिं जगदीश, दुहुं पद एक विराजत ईश।
इहविधि सुवटो ध्यावत ध्यान, दिन-दिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥२७ ॥
अनुक्रम शिवपद जिय को भयो, सुख अनन्त विलसत नित नयो।
सत् संगति सबको सुख देय, जो कछु हिय में ज्ञान धरेय ॥२८ ॥
केवलिपद आतम अनुभूत, घट-घट राजत ज्ञान संजूत।
सुख अनन्त विलसे जिय सोय, जाके निजपद परगट होय ॥२९ ॥
सुवा बत्तीसी सुनहु सुजान, निजपद प्रगटत परम निधान।
सुख अनन्त विलसहु ध्रुव नित्त, 'भैया' की विनती धर चित्त ॥३० ॥
सम्वत् सत्रह त्रैपन माहिं, आश्विन पहले पक्ष कहाहिं।
दशमी दशों दिशा परकाश, गुरु संगति तैं शिवसुखभास ॥३१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जकड़ी (रामकृष्ण कृत)

(तर्ज- अति पुण्य उदय मम आयो)

अरहंत चरन चित लाऊँ, पुनि सिद्ध शिवंकर ध्याऊँ।
वन्दौं जिन-मुद्रा धारी, निर्ग्रन्थ यती अविकारी॥
अविकारी करुणावंत वन्दौं, सकल लोक शिरोमणी।
सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूँ, देय सुख सम्पति घनी॥
ये परम मंगल चार जग में, चार लोकोत्तम सही।
भवभ्रमत इस असहाय जिय को और रक्षक कोउ नहीं॥१॥

मिथ्यात्व महारिपु दण्ड्यो, चिरकाल चतुर्गति हण्ड्यो।
उपयोग-नयन-गुन खोयौ, भरि नींद निगोदे सोयौ॥
सोयौ अनादि निगोद में जिय, निकर फिर थावर भयौ॥
भू तेज तोय समीर तरुवर, थूल सूच्छम तन लयौ॥
कृमि कुंथु अलि सैनी असैनी, व्योम जल थल संचर्यौ।
पशुयोनि बासठ लाख इसविध, भुगति मर-मर अवतर्यौं॥२॥

अति पाप उदय जब आयौ, महानिंद्य नरकपद पायौ।
थिति सागरों बंध जहाँ है, नानाविध कष्ट तहाँ है॥
है त्रास अति आताप वेदन, शीत-बहुयुत है मही।
जहाँ मार-मार सदैव सुनिये, एक क्षण साता नहीं॥
नारक परस्पर युद्ध ठानैं, असुरगण क्रीड़ा करैं।
इस विध भयानक नरक थानक, सहैं जी परवश परैं॥३॥

मानुषगति के दुख भूल्यो, बसि उदर अधोमुख झूल्यो।
जनमत जो संकट सेयो, अविवेक उदय नहिं बेयो॥
बेयो न कछु लघु बालवय में, वंशतरु कोंपल लगी।
दल रूप यौवन वयस आयौ, काम-द्यौं तब उर जगी॥
जब तन बुढ़ापो घट्यो पौरुष, पान पकि पीरो भयो।
झड़ि पर्यो काल-बयार बाजत, वादि नरभव यौं गयो॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरापुर के सुख कीने, मनवांछित भोग नवीने।
उर माल ज़बै मुरझानी, विलख्यो आसन मृतु जानी॥
मृतु जान हाहाकर कीनौं, शरण अब काकी गहौं।
यह स्वर्ग सम्पति छोड़ अब, मैं गर्भवेदन क्यों सहौं॥
तब देव मिलि समुझाइयो, पर कछु विवेक न उर वस्यो।
सुरलोक गिरिसों गिरि अज्ञानी, कुमति-कादौं फिर फस्यौ॥५॥
इहविध इस मोही जी ने, परिवर्तन पूरे कीने।
तिनकी बहु कष्ट कहानी, सो जानत केवलज्ञानी॥
ज्ञानी बिना दुख कौन जानै, जगत वन में जो लह्यो।
जर-जन्म-मरण-स्वरूप तीछन, त्रिविध दावानल दह्यो॥।
जिनमत सरोवर शीत पर, अब बैठ तपन बुझाय हो।
जिय मोक्षपुर की बाट बूझौ, अब न देर लगाय हो॥६॥
यह नरभव पाय सुज्ञानी, कर-कर निज कारज प्रानी।
तिर्जंच योनि जब पावै, तब कौन तुझे समझावै॥
समझाय गुरु उपदेश दीनों, जो न तेरे उर रहै।
तो जान जीव अभाग्य अपनो, दोष काहू को न है॥
सूरज प्रकाशै तिमिर नाशै, सकल जग को तम हरै।
गिरि-गुफा-गर्भ-उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै॥७॥
जगमाहिं विषयन फूल्यो, मनमधुकर तिहिं विच भूल्यो।
रसलीन तहाँ लपटान्यो, रस लेत न रंच अघान्यो॥
न अघाय क्यों ही रमैं निशिदन, एक छिन हू ना चुकै।
नहिं रहै बरज्यो बरज देख्यो, बार-बार तहाँ ढुकै॥
जिनमत सरोज सिद्धान्त सुन्दर, मध्य याहि लगाय हो।
अब 'रामकृष्ण' इलाज याकौ, किये ही सुख पाय हो॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाईस परीषह

क्षुधा तृषा हिम ऊश्न डंसमशक दुख भारी।
निरावरण-तन-अरति वेद-उपजावन नारी॥
चरया आसन शयन दुष्ट वायक वध बन्धन।
याचैं नहीं अलाभ रोग तृण परस होय तन॥
मलजनित मान-सनमान वश, प्रज्ञा और अज्ञान कर।
अदर्शन मलीन बाईस सब, साधु परीषह जान नर॥

(दोहा)

सूत्र पाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम।
इनके दुख को मुनि सहैं, तिन प्रति सदा प्रणाम॥

(१) क्षुधा परीषह

अनसन ऊनोदर तप पोषत, पक्ष मास दिन बीत गये हैं।
जो नहिं बने योग्य भिक्षाविधि, सूख अंग सब शिथिल भये हैं॥
तब तहाँ दुस्सह भूख की वेदन, सहत साधु नहिं नेक नये हें।
तिनके चरण कमल प्रति प्रतिदिन, हाथ जोड़ हम शीश नये हैं॥

(२) तृषा परीषह

पराधीन मुनिवर की भिक्षा, पर घर लेंय कहैं कुछ नाहीं।
प्रकृति विरुद्ध पारणा भुंजत, बढ़त प्यास की त्रास तहाँ ही ॥
ग्रीष्म काल पित्त अति कौपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं।
नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवन्ते वर्तो जग माहीं॥

(३) शीत परीषह

शीत काल सबही जन कम्पत, खड़े तहाँ वन वृक्ष डहे हैं।
झंझा वायु चलै वर्षा ऋतु, वर्षत बादल झूम रहे हैं॥
तहाँ धीर तटनी तट चौपट, ताल पाल पर कर्म दहे हैं।
सहैं संभाल शीत की बाधा, ते मुनि तारण-तरण कहे हैं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) उष्ण परीषह

भूख प्यास पीड़ै उर अन्तर, प्रजुलैं आँत देह सब दागै।
अग्नि सरूप धूप ग्रीष्म की, ताती वायु झाल-सी लागै॥
तपैं पहाड़ ताप तन उपजति, कोपै पित्त दाह ज्वर जागै।
इत्यादिक गर्मी की बाधा, सहैं साधु धीरज नहिं त्यागैं॥

(५) डंसमसक परीषह

डंसमश्क माखी तनु काटैं, पीड़ैं वन पक्षी बहुतेरे।
डसैं व्याल विषहारे बिच्छू, लगैं खजूरे आन घनेरे॥
सिंह स्याल सुंडाल सतावैं, रीछ रोझ दुःख देहिं घनेरे।
ऐसे कष्ट सहैं समभावन, ते मुनिराज हरो अघ मेरे॥

(६) नग्न परीषह

अन्तर विषय वासना वरतै, बाहर लोक-लाज भयभारी।
यातैं परम दिगम्बर मुद्रा, धर नहिं सकैं दीन-संसारी॥
ऐसे दुर्द्धर नगन परीषह, जीतैं साधु शील व्रतधारी।
निर्विकार बालकवत् निर्भय, तिनके चरणों धोक हमारी॥

(७) अरति परीषह

देश काल का कारण लहि कैं, होत अचैन अनेक प्रकारैं।
तब तहाँ खिन्न होत जगवासी, कल-मलाय थिरता पद छाड़ैं॥
ऐसी अरति परीषह उपजत, तहाँ धीर धीरज उर धारैं।
ऐसे साधुन को उर अन्तर, बसो निरन्तर नाम हमारे॥

(८) स्त्री परीषह

जो प्रधान केहरि को पकड़ै, पन्नग पकड़ पाँव से चापैं।
जिनकी तनक देख भौं बाँकी, कोटिन सूर दीनता जापैं॥
ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन, प्रलय पवन तिय वेद पयापै।
धन्य-धन्य वे सूर साहसी, मन सुमेर जिनका नहिं काँपैं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) चर्या परीषह

चार हाथ परवान परख पथ, चलत दृष्टि इत उत नहिं तानैं।
कोमल चरण कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहिं मानैं॥
नाग तुरंग पालकी चढ़ते, ते सर्वादि याद नहिं आनैं।
यों मुनिराज सहैं चर्या दुख, तब दृढ़ कर्म कुलाचल भानैं॥

(१०) आसन परीषह

गुफा मसान शैल तरु कोटर, निवसैं जहां शुद्ध भू हेरैं।
परहित काल रहैं निश्चल तन, बार-बार आसन नहिं फेरैं॥
मानुष देव अचेतन पशुकृत, बैठे विपत्ति आन जब घेरैं।
ठौर न तजैं भजैं थिरता पद, ते गुरु सदा बसो उर मेरे॥

(११) शयन परीषह

जो प्रधान सोने के महलन, सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं।
ते अब अचल अंग एकासन, कोमल कठिन भूमि पर सोवैं॥
पाहन खण्ड कठोर कांकरी, गड़त कोर कायर नहिं होवैं।
ऐसो शयन परीषह जीतैं, ते मुनि कर्म कालिमा धोवैं॥

(१२) आक्रोश परीषह

जगत जीव जीवन्त चराचर, सबके हित सबको सुखदानी।
तिन्हें देख दुर्वचन कहैं खल, पाखण्डी ठग यह अभिमानी॥
मारो याहि पकड़ पापी को, तपसी भेष चोर है छानी।
ऐसे वचन-बाण की बेला, क्षमा ढाल ओढ़ैं मुनि ज्ञानी॥

(१३) वध-बन्धन परीषह

निरपराध निर्बैर महामुनि, तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं।
कोई खैंच खम्भसै बाँधै, कोई पावक में परजारैं॥
तहाँ कोप करते न कदाचित्, पूरब कर्म विपाक विचारैं।
समरथ होय सहैं वध बन्धन, ते गुरु भव-भव शरण हमारे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१४) याचना परीषह

धीर वीर तप करत तपोधन, भये क्षीण सूखो गलवांही।
अस्थि चाम अवशेष रहो तन, नसा जाल झलकै तिसमाहीं॥
औषधि असन पान इत्यादिक, प्राण जाएँ पर जाचत नाहीं।
दुर्द्धर अयाचीक व्रत धारैं, करैं न मलिन धरम परछाहीं॥

(१५) अलाभ परीषह

एक बार भोजन की बेला, मौन साध बस्ती में आवैं।
जो नहिं बनै योग्य भिक्षा विधि, तो महन्त मन खेद न लावैं॥
ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीतैं, तब तप वृद्धि भावना भावैं।
यो अलाभ को परम परीषह, सहैं साधु सो ही शिव पावैं॥

(१६) रोग परीषह

वात पित्त कफ शोणित चारों, ये जब घटै बढ़ैं तनु माहीं।
रोग, संयोग शोक जब उपजत, जगत जीव कायर हो जाहीं॥
ऐसी व्याधि वेदना दारुण, सहैं सूर उपचार न चाहैं।
आतम लीन विरक्त देह सौं, जैन यती निज नेम निवाहैं॥

(१७) तृण स्पर्श परीषह

सूखे तृण अरु तीक्षण कांटे, कठिन कांकरी पाँय विदारैं।
रज उड़ आन पड़े लोचन में, तीर फाँस तनु पीर विथारैं॥
तापर पर-सहाय नहिं वांछत, अपने कर सैं काढ़ न डारैं।
यों तृण परस परीषह विजयी, ते गुरु भव-भव शरण हमारैं॥

(१८) मल परीषह

यावज्जीवन जल-न्हौन तजो जिन, नग्न रूप वन थान खड़े हैं।
चलै पसेव धूप की बेला, उड़त धूल सब अंग भरे हैं॥
मलिन देह को देख महा-मुनि, मलिन भाव उर नाहिं करैं हैं।
यो मलजनित परीषह जीतैं, तिनहिं हाथ हम सीस धरे हैं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१९) सत्कार-पुरस्कार परीषह

जो महान विद्या निधि विजयी, चिर तपसी गुण अतुल भरे हैं।
तिनकी विनय वचन से अथवा, उठ प्रणाम जन नाहिं करे हैं॥
तो मुनि तहाँ खेद नहिं मानत, उर मलीनता भाव हरे हैं।
ऐसे परम साधु के अह-निशि, हाथ जोड़ हम पांय परे हैं॥

(२०) प्रज्ञा परीषह

तर्क छन्द व्याकरण कला निधि, आगम अलंकार पढ़ जानैं।
जाकी सुमति देख परवादी, विलखत होंय लाज उर आनैं॥
जैसे सुनत नाद केहरि का, वन गयंद भाजत भय मानैं।
ऐसी महाबुद्धि के भाजन, पर मुनीश मद रंच न ठानैं॥

(२१) अज्ञान परीषह

सावधान वर्तें निशि-वासर, संयम सूर परम वैरागी।
पालत गुप्ति गये दीरघ दिन, सकल संग ममता पर त्यागी॥
अवधिज्ञान अथवा मनपर्यय, केवल ऋद्धि न अजहूँ जागी।
यों विकल्प नहिं करैं तपो निधि, सो अज्ञान विजयी बड़भागी॥

(२२) अदर्शन परीषह

मैं चिरकाल घोर तप कीना, अजौं ऋद्धि अतिशय नहिं जागै।
तप-बल सिद्धि होत सब सुनयत, सो कछु बात झूठ-सी लागै॥
यों कदापि चित में नहिं चिन्तत, समकित शुद्ध शान्ति रस पागै।
सोई साधु अदर्शन विजयी, ताके दर्शन से अघ भागै॥

किस कर्म के उदय से कौन-कौन से परीषह होते हैं -

(सवैया)

ज्ञानावरणी तैं दोई प्रज्ञा अज्ञान होई,
एक महा मोह तैं अदरस बखानिये।
अन्तराय कर्म सेती उपजै अलाभ दुख,
सप्त चारित्र मोहनीय के बल जानिये॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगन निषध्या नारि मान-सन्मान गारि,
याचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये।
एकादश बाकी रही वेदनीय उदय से कही,
बाइस परीषह उदय ऐसे उर आनिये॥

(अडिल्ल छंद)

एक बार इन माहिं एक मुनि के कही।
सब उनीस उत्कृष्ट उदय आवैं सही॥
आसन शयन विहार दोय इन माहिं की।
शीत उष्ण में एक तीन ये नाहिं की॥

मेरा सहज जीवन

अहो चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है।
अनादि अनंत पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है।।टेक॥
हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में।
द्रव्यदृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है॥१॥
अनंतों शक्तियाँ उछलें, सहज सुख ज्ञानमय विलसें।
अहो प्रभुता परम पावन, वीर्य का भी न पारा है॥२॥
नहीं जन्मूँ नहीं मरता, नहीं घटता नहीं बढ़ता।
अगुरुलघुरूप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है॥३॥
सहज ऐश्वर्य मय मुक्ति, अंनतों गुण मयी ऋद्धि।
विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है॥४॥
किसी से कुछ नहीं लेना, किसी को कुछ नहीं देना।
अहो निश्चिंत परमानन्दमय जीवन हमारा है॥५॥
ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।
परम निर्दोष समतामय, ज्ञान जीवन हमारा है॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्ति में व्यक्त है जैसा, यहाँ अव्यक्त है वैसा।
अबद्धस्पृष्ट अनन्य, नियत जीवन हमारा है ॥७॥
सदा ही है न होता है, न जिसमें कुछ भी होता है।
अहो उत्पाद व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है ॥८॥
विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी।
रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है ॥९॥
नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की।
अहो परिपूर्ण निष्पृह ज्ञान, मय जीवन हमारा है ॥१०॥

समता षोडशी

समता रस का पान करो, अनुभव रस का पान करो।
शान्त रहो शान्त रहो, सहज सदा ही शान्त रहो ॥टेक॥
नहीं अशान्ति का कुछ कारण, ज्ञान दृष्टि से देख अहो।
क्यों पर लक्ष करे रे मूरख, तेरे से सब भिन्न अहो ॥१॥
देह भिन्न है कर्म भिन्न हैं, उदय आदि भी भिन्न अहो।
नहीं अधीन हैं तेरे कोई, सब स्वाधीन परिणमित हो ॥२॥
पर नहीं तुझसे कहता कुछ भी, सुख दुख का कारण नहीं हो।
करके मूढ़ कल्पना मिथ्या, तू ही व्यर्थ आकुलित हो ॥३॥
इष्ट अनिष्ट न कोई जग में, मात्र ज्ञान के ज्ञेय अहो।
हो निरपेक्ष करो निज अनुभव, बाधक तुमको कोई न हो ॥४॥
तुम स्वभाव से ही आनंद मय, पर से सुख तो लेश न हो।
झूठी आशा तृष्णा छोड़ो, जिन वचनों में चित्त धरो ॥५॥
पर द्रव्यों का दोष न देखो, क्रोध अग्नि में नहीं जलो।
नहीं चाहो अनुरूप प्रवर्तन, भेद ज्ञान ध्रुवदृष्टि धरो ॥६॥
जो होता है वह होने दो, होनी को स्वीकार करो।
कर्त्तापन का भाव न लाओ, निज हित का पुरुषार्थ करो ॥७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दया करो पहले अपने पर, आराधन से नहीं चिगो।
कुछ विकल्प यदि आवे तो भी, सम्बोधन समतामय हो ॥८ ॥
यदि माने तो सहज योग्यता, अंहकार का भाव न हो।
नहीं माने भवितव्य विचारो, जिससे किंचित् खेद न हो ॥९ ॥
हीन भाव जीवों के लखकर, ग्लानि भाव नहीं मन में हो।
कर्मोदय की अति विचित्रता, समझो स्थितिकरण करो ॥१० ॥
अरे कलुषता पाप बंध का, कारण लखकर त्याग करो।
आलस छोड़ो बनो उद्यमी, पर सहाय की चाह न हो ॥११ ॥
पापोदय में चाह व्यर्थ है, नहीं चाहने पर भी हो।
पुण्योदय में चाह व्यर्थ है, सहजपने मन वांछित हो ॥१२ ॥
आर्तध्यान कर बीज दुख के, बोना तो अविवेक अहो।
धर्म ध्यान में चित्त लगाओ, होय निर्जरा बंध न हो ॥१३ ॥
करो नहीं कल्पना असम्भव, अब यथार्थ स्वीकार करो।
उदासीन हो पर भावों से सम्यक् तत्त्व विचार करो ॥१४ ॥
तजो संग लौकिक जीवों का, भोगों के आधीन न हो।
सुविधाओं की दुविधा त्यागो, एकाकी शिव पंथ चलो ॥१५ ॥
अति दुर्लभ अवसर पाया है, जग प्रपंच में नहीं पड़ो।
करो साधना जैसे भी हो, यह नर भव अब सफल करो ॥१६ ॥

चेतो -चेतो आराधना में

देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल।
चेतो-चेतो आराधना में, मत बनो निर्बल ॥टेक ॥
पाषाण खण्ड कह रहे, कठोरता त्यागो।
विनम्र हो उत्साह से, शिवमार्ग में लागो।
बहते हुए झरने कहें, धोओ मिथ्यात्व मल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ॥१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईर्ष्या त्यागो जलती हुई, अग्नि है कह रही।
मत चाह दाह में जलो, सुख अन्तर में सही॥
वायु कहे भ्रमना वृथा, होओ निज में निश्चल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल॥२॥
जड़ता छोड़ो प्रमाद को नाशो कहें तरुवर।
शुद्धातमा ही सार है, उपदेश दें गुरुवर॥
समझो-समझो निजात्मा, अवसर बीते पल-पल॥
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल॥३॥
मायाचारी संक्लेशता का, फल कहें तिर्यंच।
जागो अब मोह नींद से, छोड़ो झूठे प्रपञ्च॥
जिनधर्म पाया भाग्य से, दृष्टि करो निर्मल॥
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल॥४॥
श्रृंगार अरु भोगों की रुचि का, फल कहती नारी।
कंजूसी पूर्वक संचय का, फल कहते भिखारी॥
बहु आरम्भ परिग्रह फल में, नारकी व्याकुल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल॥५॥
असहाय शक्ति हीन, देखो दरिद्री रोगी।
कोई अनिष्ट संयोगी, कोइ इष्ट वियोगी॥
घिनावना तन रूप, अंगोपांग है शिथिल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल॥६॥
यदि ये दुःख इष्ट नहीं हैं, तो निज भाव सुधारो।
निवृत्त हो विषय कषायों से, निजतत्त्व विचारो॥
चक्री के वैभव भोग भी, सुख देने में असफल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल॥७॥
पाकर किञ्चित् अनुकूलताएँ, व्यर्थ मत फूलो।
हैं पराधीन आकुलतामय, नहीं मोह में भूलो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्रुव चिदानन्दमय आत्मा, लक्ष्य करो अविरल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ॥८ ॥
पुण्यों की भी तृष्णायतनता, अबाधित जानो।
बन्धन तो बन्धन ही है, उसे शिव मार्ग मत मानों ॥
ज्योंअंक बिन बिन्दी त्योंस्वानुभव बिन जीवन निष्फल ॥
देखो-देखो यह जीव की विराधना का फल ॥९ ॥
अब योग तो सब ही मिले, पुरुषार्थ जगाओ।
अन्तर्मुख हो बस मात्र, जाननहार जनाओ।
सन्तुष्ट निज में ही रहो, ब्रह्मचर्य हो सफल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ॥१० ॥
सब प्राप्य निज में ही अहो, स्थिरता उर लाओ।
तुम नाम पर व्यवहार के, बाहर न भरमाओ ॥
निर्ग्रन्थ हो निर्द्वन्द्व हो ध्याओ, निजपद अविचल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ॥११ ॥
निज में ही सावधान ज्ञानी, साधु जो रहते।
वे ही जग के कल्याण में, निमित्त हैं होते।
ध्याओ-ध्याओ शुद्धात्मा, पर की चिन्ता निष्फल।
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ॥१२ ॥
निर्बन्ध के इस पंथ में, जोड़ो नहीं सम्बन्ध।
विचरो एकाकी निष्प्रही, निर्भय सहज निशंक ॥
निर्मूढ़ हो निर्मोही हो, पाओ शिवपद अविचल ॥
देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल ॥१३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशलक्षण धर्म का मर्म

(सोरठा)

क्षमा भाव अविकार, स्वाश्रय से प्रकटे सुखद।
आनन्द अपरम्पार, शत्रु न दीखे जगत में ॥१ ॥
मार्दव भाव सुधार, निज रस ज्ञानानंद मय।
वेदूँ निज अविकार, नहीं मान नहीं दीनता ॥२ ॥
सरल स्वभावी होय, अविनाशी वैभव लहूँ।
वांछा रहे न कोय, माया शल्य विनष्ट हो ॥३ ॥
परम पवित्र स्वभाव, अविरल वर्ते ध्यान में।
नाशे सर्व विभाव, सहजहि उत्तम शौच हो ॥४ ॥
सत्स्वरूप शुद्धात्मा, जानूँ मानूँ आचरूँ।
प्रकटे पद परमात्म, सत्य धर्म सुखकार हो ॥५ ॥
संयम हो सुखकार, अहो अतीन्द्रिय ज्ञानमय।
उपजे नहीं विकार, परम अहिंसा विस्तरे ॥६ ॥
निज में ही विश्राम, जहाँ कोई इच्छा नहीं।
ध्याऊँ आतमराम, उत्तम तप मंगलमयी ॥७ ॥
परभावों का त्याग, सहज होय आनन्दमय।
निज स्वभाव में पाग, रहूँ निराकुल मुक्त प्रभु ॥८ ॥
सहज अकिंचन रूप, नहीं परमाणु मात्र मम।
भाऊँ शुद्ध चिद्रूप, होय सहज निर्ग्रंथ पद ॥९ ॥
परम ब्रह्म अम्लान, ध्याऊँ नित निर्द्वन्द हो।
ब्रह्मचर्य सुख खान, पूर्ण होय आनंदमय ॥१० ॥
एकरूप निज धर्म, दशलक्षण व्यवहार से।
स्वाश्रय से यह मर्म, जाना ज्ञान विरागमय ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमार्थ-शरण

अशरण जग में शरण एक शुद्धातम ही भाई।
धरो विवेक हृदय में आशा पर की दुखदाई॥१॥
सुख दुख कोई न बाँट सके यह परम सत्य जानो।
कर्मोदय अनुसार अवस्था संयोगी मानो॥२॥
कर्म न कोई देवे लेवे प्रत्यक्ष ही देखो।
जन्मे मरे अकेला चेतन तत्त्वज्ञान लेखो॥३॥
पापोदय में नहीं सहाय का निमित्त बने कोई।
पुण्योदय में नहीं दण्ड का भी निमित्त होई॥४॥
इष्ट अनिष्ट कल्पना त्यागो हर्ष विषाद तजो।
समता धर महिमामय अपना आतम आप भजो॥५॥
शाश्वत सुखसागर अन्तर में देखो लहरावे।
दुर्विकल्प में जो उलझे वह लेश न सुख पावे॥६॥
मत देखो पर्यायों को गुण-भेद नहीं देखो॥
मत देखो संयोगों को कर्मोदय मत देखो॥७॥
अहो देखने योग्य एक ध्रुव ज्ञायक प्रभु देखो।
हो अन्तर्मुख सहज दीखता अपना प्रभु देखो॥८॥
देखत होय निहाल अहो निज परम प्रभू देखो।
पाया लोकोत्तम जिनशासन आतमप्रभु देखो॥९॥
निश्चय नित्यानन्दमयी अक्षय पद पाओगे।
दुखमय आवागमन मिटे भगवान कहाओगे॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस तीर्थंकर स्तवन

जो अनादि से व्यक्त नहीं था त्रैकालिक ध्रुव ज्ञायक भाव।
वह युगादि में किया प्रकाशित वन्दन ऋषभ जिनेश्वर राव ॥१ ॥
जिसने जीत लिया त्रिभुवन को मोह शत्रु वह प्रबल महान।
उसे जीतकर शिवपद पाया वन्दन अजितनाथ भगवान ॥२ ॥
काललब्धि बिन सदा असम्भव निज सन्मुखता का पुरुषार्थ।
निर्मल परिणति के स्वकाल में संभव जिनने पाया अर्थ ॥३ ॥
त्रिभुवन जिनके चरणों का अभिनन्दन करता तीनों काल।
वे स्वभाव का अभिनन्दन कर पहुँचे शिवपुर में तत्काल ॥४ ॥
निज आश्रय से ही सुख होता यही सुमति जिन बतलाते।
सुमतिनाथ प्रभु की पूजन कर भव्य जीव शिवसुख पाते ॥५ ॥
पद्मप्रभ के पद-पंकज की सौरभ से सुरभित त्रिभुवन।
गुण अनन्त के सुमनों से शोभित श्री जिनवर का उपवन ॥६ ॥
श्री सुपार्श्व के शुभ सु-पार्श्व में जिनकी परिणति करे विराम।
वे पाते हैं गुण अनन्त से भूषित सिद्ध सदन अभिराम ॥७ ॥
चारु चन्द्र सम सदा सुशीतल चेतन चन्द्रप्रभ जिनराज।
गुण अनन्त की कला विभूषित प्रभु ने पाया निजपद राज ॥८ ॥
पुष्पदन्त सम गुण आवलि से सदा सुशोभित हैं भगवान।
मोक्षमार्ग की सुविधि बताकर भविजन का करते कल्याण ॥९ ॥
चन्द्र-किरण सम 'शीतल' वचनों से हरते जग का आताप।
स्याद्वादमय दिव्यध्वनि से मोक्षमार्ग बतलाते आप ॥१० ॥
त्रिभुवन के श्रेयस्कर हैं श्रेयाँसनाथ जिनवर गुणखान।
निज स्वभाव ही परम श्रेय का केन्द्र बिन्दु कहते भगवान ॥११ ॥
शतइन्द्रों से पूजित जग में वासुपूज्य जिनराज महान।
स्वाश्रित परिणति द्वारा पूजित पञ्चमभाव गुणों की खान ॥१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्मल भावों से भूषित हैं जिनवर विमलनाथ भगवान।
राग-द्वेष मल का क्षय करके पाया सौख्य अनन्त महान॥१३॥
गुण अनन्तपति की महिमा से मोहित है यह त्रिभुवन आज।
जिन अनन्त को वन्दन करके पाऊँ शिवपुर का साम्राज्य॥१४॥
वस्तु-स्वभाव धर्मधारक है धर्म धुरन्धर नाथ महान।
ध्रुव की धुनमय धर्म प्रगट कर वन्दित धर्मनाथ भगवान॥१५॥
रागरूप अंगारों द्वारा दहक रहा जग का परिणाम।
किन्तु शान्तिमय निजपरिणति से शोभित शान्तिनाथ भगवान॥१६॥
कुन्थु आदि जीवों की भी रक्षा का देते जो उपदेश।
स्व-चतुष्टय में सदा सुरक्षित कुन्थुनाथ जिनवर परमेश॥१७॥
पञ्चेन्द्रियों विषयों सुख की अभिलाषा है जिनकी अस्त।
धन्य-धन्य अरनाथ जिनेश्वर राग-द्वेष अरि किए परास्त॥१८॥
मोह-मल्ल पर विजय प्राप्त कर जो हैं त्रिभुवन विख्यात।
मल्लिनाथ जिन समवशरण में सदा सुशोभित हैं दिन रात॥१९॥
तीन कषाय चौकड़ी जयकर मुनि-सु-व्रत के धारी हैं।
वन्दन जिनवर मुनिसुव्रत जो भविजन को हितकारी हैं॥२०॥
नमि जिनवर ने निज में नमकर पाया केवलज्ञान महान।
मन-वच-तन से करूँ नमन सर्वज्ञ जिनेश्वर हैं गुणखान॥२१॥
धर्मधुरा के धारक जिनवर धर्मतीर्थ रथ संचालक।
नेमिनाथ जिनराज वचन नित भव्यजनों के हैं पालक॥२२॥
जो शरणागत भव्यजनों को कर लेते हैं आप समान।
ऐसे अनुपम अद्वितीय पारस हैं पार्श्वनाथ भगवान॥२३॥
महावीर सन्मति के धारक वीर और अतिवीर महान।
चरण-कमल का अभिनन्दन है वन्दन वर्द्धमान भगवान॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेहक्षेत्र-स्थित-विंशति-तीर्थङ्कर-स्तवन

स्वचतुष्टय की सीमा में, सीमित हैं सीमन्धर भगवान।
किन्तु असीमित ज्ञानानन्द से सदा सुशोभित हैं गुणखान ॥१ ॥
युगल धर्ममय वस्तु बताते नय प्रमाण भी उभय कहे।
युगमन्धर के चरण-युगल में, दर्श-ज्ञान मम सदा रमे ॥२ ॥
दर्शन-ज्ञान बाहुबल धरकर, महाबली हैं बाहु जिनेन्द्र।
मोह शत्रु को किया पराजित शीष झुकाते हैं शत इन्द्र ॥३ ॥
जो सामान्य-विशेष रूप उपयोग सुबाहु सदा धरते।
श्री सुबाहु के चरण कमल में भविजन नित वन्दन करते ॥४ ॥
शुद्ध स्वच्छ चेतनता ही है जिनकी सम्यक् जाति महान।
अन्तर्मुख परिणति में लखते वन्दन संजातक भगवान ॥५ ॥
निज स्वभाव से स्वयं प्रगट होती है जिनकी प्रभा महान।
लोकालोक प्रकाशित होता धन्य स्वयंप्रभ प्रभु का ज्ञान ॥६ ॥
चेतनरूप वृषभमय आनन से जिनकी होती पहिचान।
वृषभानन प्रभु के चरणों में नमकर परिणति बने महान ॥७ ॥
वीर्य अनन्त प्रगट कर प्रभुवर भोगें निज आनन्द महान।
ज्ञान लखें ज्ञेयाकारों में धन्य अनन्तवीर्य भगवान ॥८ ॥
सूर्यप्रभा भी फीकी पड़ती ऐसी चेतन प्रभा महान।
धारण कर जिनराज सूर्यप्रभ देते जग को सम्यग्ज्ञान ॥९ ॥
अहो विशाल कीर्ति धारण कर शत इन्द्रों से वन्दित हैं।
श्री विशालकीर्ति जिनवर नित, त्रिभुवन से अभिनन्दित हैं ॥१० ॥
स्वानुभूतिमय वज्रधार कर, मोह शत्रु पर किया प्रहार।
वन्दन वज्रधार जिनवर को, भोगें नित आनन्द अपार ॥११ ॥
चारु-चन्द्र सम आनन जिनका, हरण करे जग का आताप।
चन्द्रानन जिन चरण-कमल में प्रक्षालित हों सारे पाप ॥१२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन-ज्ञान सुबाहु भद्र लख, भद्र भव्य भूलें आताप।
वन्दन भद्रबाहु जिनवर को मोह नष्ट हों अपने आप॥१३॥
गुण अनन्त वैभव के धारी, सदा भुजङ्गम जिन परमेश।
जिनकी विषय विरक्त वृत्ति लख भोग भुजङ्ग हुए निस्तेज॥१४॥
हे ईश्वर! जग को दिखलाते निज में ही निज का ऐश्वर्य।
निज परिणति में प्रगट हुए हैं, दर्शन-ज्ञान वीर्य सुख कार्य॥१५॥
निज वैभव की परम प्रभा से, शोभित नेमप्रभ जिनराज।
ध्रुव की धुनमय धर्मधुरा से, पाया गुण अनन्त साम्राज्य॥१६॥
परम अहिंसामय परिणति से शोभित वीरसेन भगवान।
गुण अनन्त की सेना में हो व्याप्त द्रव्य तुम वीर महान॥१७॥
सहज सरल स्वाभाविक गुण से भूषित महाभद्र भगवान।
भद्रजनों द्वारा पूजित हैं, अतः श्रेष्ठ हैं भद्र महान॥१८॥
गुण अनन्त की सौरभ से है जिनका यश त्रिभुवन में व्याप्त।
धन्य-धन्य जिनराज यशोधर एक मात्र शिवपथ में आप्त॥१९॥
मोह शत्रु से अविजित रहकर, अजितवीर्य के धारी हैं।
वन्दन अजितवीर्य जिनवर जो त्रिभुवन के उपकारी हैं॥२०॥

रत्नाकर-पंचविंशतिका

(मूल संस्कृत में रत्नाकर सूरी द्वारा विरचित)

शुभकेलि के आनन्द के घन के मनोहर धाम हो,
नरनाथ से सुरनाथ से पूजित-चरण गतकाम हो।
सर्वज्ञ हो, सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में,
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में॥१॥
संसार-दुःख के वैद्य हो त्रैलोक्य के आधार हो,
जय श्रीश! रत्नाकरप्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतराग! है विज्ञप्ति मेरी मुग्ध की सुन लीजिए,
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञ हो, मुझको अभय वर दीजिए ॥२ ॥
माता पिता के सामने बोली सुनाकर तोतली,
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावली।
अपने हृदय के हाल को त्यों ही यथोचित रीति से-
मैं कह रहा हूँ, आपके आगे विनय से प्रीति से ॥३ ॥
मैंने नहीं जग में कभी कुछ दान दीनों को दिया,
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं मैंने नहीं तप भी किया।
शुभ भावनाएँ भी हुईं, अब तक न इस संसार में,
मैं घूमता हूँ, व्यर्थ ही भ्रम से भवोदधि-धार में ॥४ ॥
क्रोधाग्नि से मैं रात-दिन हा! जल रहा हूँ हे प्रभो!
मैं लोभ नामक सांप से काटा गया हूँ हे विभो!
अभिमान से खल ग्राह से अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ,
किस भाँति हों स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ ॥५ ॥
लोकेश! पर-हित भी किया मैंने न दोनों लोक में,
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे हो, झींकता हूँ शोक में।
जग में हमारे सम नरों का जन्म ही बस व्यर्थ है,
मानो जिनेश्वर! वह भवों की पूर्णता के अर्थ है ॥६ ॥
प्रभु! आपने निज मुख सुधा का दान यद्यपि दे दिया,
यह ठीक है, पर चित्त ने उसका न कुछ भी फल लिया।
आनन्द-रस में डूबकर सद्वृत्त वह होता नहीं,
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही ॥७ ॥
रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है प्रभु से उसे मैंने लिया,
बहु काल तक बहु बार जब जग का भ्रमण मैंने किया।
हा खो गया वह भी विवश मैं नींद आलस में रहा,
बतलाइये उसके लिए रोऊँ प्रभो! किसके यहाँ ? ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार ठगने के लिए वैराग्य को धारण किया,
जग को रिझाने के लिए उपदेश धर्मों का दिया।
झगड़ा मचाने के लिए मम जीभ पर विद्या बसी,
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ हे प्रभो! अपनी हँसी॥९॥
परदोष को कह कर सदा मेरा वदन दूषित हुआ,
लख कर पराई नारियों को हा नयन दूषित हुआ।
मन भी मलिन है सोचकर पर की बुराई हे प्रभो,
किस भाँति होगी लोक में मेरी भलाई हे प्रभो॥१०॥
मैंने बढ़ाई निज विवशता हो अवस्था के वशी,
भक्षक रतीश्वर से हुई उत्पन्न जो दुख-राक्षसी।
हा! आपके सम्मुख उसे अति लाज से प्रकटित किया,
सर्वज्ञ! हो सब जानते स्वयमेव संसृति की क्रिया॥११॥
अन्यान्य मन्त्रों से परम परमेष्ठि-मंत्र हटा दिया।
सच्छास्त्र-वाक्यों को कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया।
विधि-उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया,
हे नाथ! यों भ्रमवश अहित मैंने नहीं क्या क्या किया॥१२॥
हा! तज दिया मैंने प्रभो! प्रत्यक्ष पाकर आपको,
अज्ञान वश मैंने किया फिर देखिये किस पाप को।
वामाक्षियों के राग में रत हो सदा मरता रहा,
उनके विलासों के हृदय में ध्यान को धरता रहा॥१३॥
लख कर चपल-दृग-युवतियों के मुख मनोहर रसमई,
जो मन-पटल पर राग भावों की मलिनता बस गई।
वह शास्त्र-निधि के शुद्ध जल से भी न क्यों धोई गई?
बतलाइए यह आप ही मम बुद्धि तो खोई गई॥१४॥
मुझमें न अपने अंग के सौन्दर्य का आभास है,
मुझमें न गुणगण हैं विमल, न कला-कलाप-विलास है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुता न मुझ में स्वप्न को भी चमकती है, देखिये,
तो भी भरा हूँ गर्व से मैं मूढ़ हो किसके लिए!॥१५॥
हा! नित्य घटती आयु है पर पाप-मति घटती नहीं,
आई बुढ़ौती पर विषय से कामना हटती नहीं।
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म मैं करता नहीं।
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ नाथ! बच सकता नहीं॥१६॥
अघ-पुण्य को, भव-आत्म को मैंने कभी माना नहीं,
हा! आप आगे हैं खड़े दिननाथ से यद्यपि यहीं।
तो भी खलों के वाक्यों को मैंने सुना कानों वृथा,
धिक्कार मुझको है, गया मम जन्म ही मानों वृथा॥१७॥
सत्पात्र-पूजन देव-पूजन कुछ नहीं मैंने किया,
मुनिधर्म-श्रावक धर्म का भी नहिं सविधि पालन किया।
नर-जन्म पाकर भी वृथा ही मैं उसे खोता रहा,
मानो अकेला घोर वन में व्यर्थ ही रोता रहा॥१८॥
प्रत्यक्ष सुखकर जिन-धरम में प्रीति मेरी थी नहीं,
जिननाथ! मेरी देखिये है मूढ़ता भारी यही।
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिक के यहाँ रहते हुए,
हमने गँवाया जन्म को धिक्कार दुख सहते हुए॥१९॥
मैंने न रोका रोग-दुख संभोग-सुख देखा किया,
मन में न माना मृत्यु-भय धन-लाभ ही लेखा किया।
हा! मैं अधम युवती-जनों का ध्यान नित करता रहा,
पर नरक-कारागार से मन में न मैं डरता रहा॥२०॥
सद्वृत्ति से मन में न मैंने साधुता ही साधिता,
उपकार करके कीर्ति भी मैंने नहीं कुछ अर्जिता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभ तीर्थ के उद्धार आदिक कार्य कर पाये नहीं,
नर-जन्म पारस-तुल्य निज मैंने गँवाये व्यर्थ ही॥२१॥
शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी करना मुझे आता नहीं।
खल-वाक्य भी गतक्रोध हो सहना मुझे आता नहीं।
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें है न कोई सत्कला,
फिर देव! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला?॥२२॥
सत्कर्म पहले जन्म में मैंने किया कोई नहीं,
आशा नहीं जन्मान्य में उसको करूँगा मैं कहीं।
इस भांति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों?
संसार में फिर जन्म तीनों क्यों न मेरे नष्ट हों?॥२३॥
हे पूज्य! अपने चरित को बहुभाँति गाऊँ क्या वृथा,
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी है पापमय मेरी कथा।
क्योंकि त्रिजग के रूप हो तुम, ईश हो, सर्वज्ञ हो,
पथ के प्रदर्शक हो, तुम्हीं मम चित्त के मर्मज्ञ हो॥२४॥
दीनोद्धारक धीर हे प्रभु आप सा नहीं अन्य है,
कृपा-पात्र भी नाथ! न मुझसा कहीं अवर है।
तो भी माँगूं नहीं धान्य धन कभी भूल कर,
अर्हन्! प्राप्त होवे केवल बोधिरत्न होवे मंगलकर॥२५॥
श्री रत्नाकर गुणगान यह दुरित दुःख सब के हरे।
बस एक यही है प्रार्थना मंगलगय जग को करे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल लेखक पण्डित श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह सोनगढ़ द्वारा रचित

श्री समवसरण स्तुति (पद्यानुवाद)

मंगलाचरण

(दोहा)

धर्म काल वर्ते अहो! धर्म स्थान विदेह ।
धर्म प्रवर्तक बीस जिन, गर्जे नित्य सदेह ॥१॥

समवसरण महिमा *(वीरछन्द)*

जिनवर जहाँ सुशोभित हैं वह समवसरण अति शोभावान।
जिसकी लोकोत्तर शोभा से फीका पड़ता है सुरधाम ॥
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचना रचते रम्य महान्।
स्वयं स्वयं की रचना लखकर स्वयं लहें आश्चर्य महान॥२॥

समवसरण विस्तार *(सोरठा)*

भव्य अचिन्त्य महान, रत्नमयी रचना अहो।
जिनवर धर्म स्थान, बारह योजन व्यास का॥३॥

धूलिसाल कोट *(वीरछन्द)*

समवसरण को घेरे कंकण सम यह धूलीसाल विशाल।
विविध वर्ण रत्नों की रज से रच कर जिसको देव निहाल॥
रत्नों से किरणों की बहुरंगी ज्योति अति फैल रही।
क्या यह इन्द्र धनुष उतरा है सेवा करने जिनवर की ॥४॥

(दोहा)

धूलि साल के सामने, मानस्तंभ है चार।
स्वर्णमयी अति उच्च हैं, मानी-मान निवार॥५॥

चैत्यप्रसाद भूमि *(वीरछन्द)*

छत्र चँवर शोभे, भव्यों का करें निमन्त्रण ध्वजा विशाल ।
घण्टे अरु वाजित्र बजें, सुरपति करते प्रतिमा प्रक्षाल॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चहुँ दिशि वापी चार स्फटिक-तटयुत निर्मल नीर भरा ।
भाव सहित वन्दूँ यह मानस्तम्भ मान सब गला रहा ॥६ ॥

(हरिगीत)

जिनालय की भूमि अति पावन तथा दैवी अहो।
है अनेक जिनालयों की मनोहर रचना अहो॥
देव अरु मानव वहाँ प्रभु भक्ति भीने हृदय से।
नृत्य करते, प्रभु चरण में चित्त को अर्पित करें॥७॥

खातिका भूमि *(दोहा)*

जल से पूरित खातिका, शोभित वलयाकार।
हंसे तरंगों से सदा, जलचर रमें अपार॥८॥

(वीरछन्द)

निर्मल नीर सुतट मणियों का, क्या यह चन्द्रकान्तमणि द्रवता।
प्रभु पूजन की उच्च भावना, ले मानो उतरी सुर-सरिता ॥९॥

लतावन भूमि *(दोहा)*

भव्य लतावन की धरा, चहुँदिशि महके गन्ध।
खिले पुष्प ऐसे लगें, लता हँस रही मन्द॥१०॥

(हरिगीत)

विविध रंगी पुष्प रज उड़ती जहाँ गति मन्द से।
जो ढाँकती वन गगन को नित सान्ध्य रवि के रंग से॥
दिव्य क्रीड़ा स्थल जहाँ पर लता मण्डप भव्य है।
शीतल शिला शशिकान्तमणि की इन्द्र विश्रान्ति लहें॥११॥

(चौपाई)

षट् ऋतु के सब फूल खिले हैं, मन्द सुगन्ध पवन बहती है।
क्या सुगन्ध यह वन पुष्पों की? या सुकीर्ति है श्री जिनवर की ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्णमयी कोट *(दोहा)*

स्वर्णमयी मणि जड़ित है, कोट अति उत्तंग ।
कनक प्रभा में मानिये, शोभित है नक्षत्र ॥१३॥

(वीरछन्द)

कर में शस्त्र लिए हैं सुरगण द्वारपाल बन खड़े हुए।
मंगल द्रव्य सुरम्य नवों निधि तोरण भी है बँधे हुए॥
दोनो ओर द्वार के सुन्दर नाट्य भवन है स्फटिकमयी ।
और दूर पर धूमघटों की धूम गगन को ढाँक रही ॥१४॥

(हरिगीत)

यह नाट्यशाला गूँजती वीणा मृदंग सुताल से ।
गन्धर्व किन्नर गान से सुरकामिनी के नृत्य से ॥
देवांगना जयघोष करती हर्षमय नर्तन करें।
जिन-विजय का अभिनय करें कुसुमाजली अर्पण करें॥१५॥

उपवनभूमि *(वीरछन्द)*

चम्पक आम्र अशोक आदि वन भू की छटा मनोहर है।
रम्य नदी तालाब, भवन अरु चित्रकला-गृह सुन्दर है॥
मन्द स्वरों में कोकिल कुहके वृक्ष फलों से लदे हुए।
प्रभु चरणों में अर्पित करने अर्घ्य लिए वे खड़े हुए॥१६॥

(त्रोटक)

बहु वृक्ष विशाल मनोहर हैं, रवि-किरणों के अवरोधक हैं।
जगमग-जगमग तरु-तेज महा, है दिन या रात न जाय कहा॥१७॥
तहाँ चैत्य तरु-तल दिव्य महा, जिनबिम्ब सुशोभित होंय जहाँ।
सुरगण भक्ति से नाच रहे, जय-घोषों से वन गूँज उठे॥१८॥

(दोहा)

रत्न जड़ित है स्वर्ण की, कटि-करधनी समान।
शोभित है वन-वेदिका, फिर ध्वज भूमि जान॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वज भूमि *(हरिगीत)*

है स्वर्ण के स्तम्भ पर ध्वज पंक्ति की शोभा महा।
कमल माला अरु मयूरादिक सुचिन्होंयुत अहा!
क्या त्रिलोकीनाथ का यह विजय-ध्वज फहरा रही?
प्रभु पूजने के लिये अथवा जगत को बतला रही॥२०॥

रजतमयी कोट *(दोहा)*

चांदी का यह कोट है, उन्नत कान्तिमान।
नाटयग्रहों अरु लक्ष्मी से, अति शोभावान॥२१॥

कल्पवृक्ष भूमि *(त्रोटक)*

यह कल्पतरु भू रम्य अहा, सुर-सरि भवनादिक स्वर्गसमा।
दशभेद अहो तरु कल्प तले, निज-धाम विसरि सब देव रमें॥२२॥
मालांग तरू बहु माल धरे, दीपांग तरु पर दीप जले।
पुष्पों-दीपों की माला से, वन पूज रहा क्या जिनवर को ?॥२३॥
सिद्धार्थ तरु अति दिव्य दिखे, जो मनवांछित फलदायक है।
छत्रत्रय शोभित है तरु पर, घण्टा बाजे अरु फहरे ध्वज॥२४॥
इस तरुतल में सिद्धबिम्ब रहे, सुरलोक जहाँ प्रभुभक्ति करे।
कोई स्तोत्र पढ़े, प्रभु गुण सुमरे, कोई नम्रपने जिनराज नमे॥२५॥
कोई गान करे कोई नृत्य करे, निर्मल जल से अभिषेक करे।
कोई दिव्य दीप अरु धूपों से, अति भक्ति से जिनराज भजे॥२६॥

स्वर्णमयी वेदी *(दोहा)*

फिर वन वेदी स्वर्ण की, गोपुरादि संयुक्त।
अति सुन्दर प्रासादमय, भूमि रत्न स्तूप॥२७॥

भवन भूमि *(चौपई)*

स्वर्ण स्तम्भ मणिमय दीवार, चन्द्र समान भवन हैं चार।
देव रमें अरु चर्चा करें, नृत्य करें प्रभु गुण उचरें॥२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तूप *(हरिगीत)*

है स्तूप अति ऊँचा मनोहर पद्मराग मणिमय अहा।
अरिहन्त प्रभु अरु सिद्ध के बहु बिम्ब से शोभित महा॥
सुर असुर मानव भाव भीने चित्त से पूजा करें।
अभिषेक नमन प्रदक्षिणा कर हर्ष बहु उर में धरें।।२९॥

स्फटिक मणिमय कोट *(दोहा)*

कोट स्फटिकमयी अहो! सुन्दर अति उत्तंग।
पद्मराग के द्वार हैं मंगल द्रव्य दिपंत॥३०॥
रत्नों की दीवार हैं रत्नों के स्तम्भ।
है इक योजन व्यास का उन्नत मण्डप-रत्न॥३१॥

श्री मण्डप भूमि 'बारह सभाएँ' *(हरिगीत)*

शोभित श्री मंडप अहो! गणधर मुनि अरु आर्यिका।
तिर्यंच सुरगण और मानव की सुशोभित यह सभा॥
मृग-सिंह अरु अहि-मोर भी निज और को हैं भूलते।
सब शान्त चित एकाग्र हो जिन वचन-अमृत झेलते ॥३२॥
इस श्री मण्डप में अहो! नित पुष्पवृष्टि सुर करें।
क्या स्फटिक मणिमय गगन में तारे अहो नित नव उगें॥
किरणें रतन-दीवार की जो जल-तरंग समान क्या ?
जिनराज के उपदेश का अमृत महोदधि उछलता॥३३॥

गन्धकुटी 'प्रथम पीठ' *(हरिगीत)*

वैडूर्य रत्नों से बनी यह पीठ पहली शोभती।
वसुद्रव्य मंगल और सोलह सीढ़ियाँ मन मोहती॥
यक्षगण के शीष पर है धर्मचक्र विराजता।
सहस आरों की प्रभा से सूर्य भी लज्जित हुआ॥३४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'द्वितीय पीठ'

उस पीठ पर है पीठ स्वर्णिम अति मनोरम दूसरी।
मन मुग्धकारी पीत ज्योति चहुँ दिशा फैला रही॥
आठ ध्वज सुन्दर मनोहर चिह्नयुत लहरा रहे।
सिद्ध प्रभु के गुण समान सुस्वच्छ सुन्दर शोभते॥३५॥

'तृतीय पीठ'

विविध रत्नों से बनी यह पीठ मनहर तीसरी।
विविध रंगमयी सुरम्य प्रकाश यह फैला रही॥
दैवी सुमन है हँस रहे सब द्रव्य मंगल शोभते।
चारों निकायों के अमर इस पीठ की पूजा करें॥३६॥

गन्धकुटी शोभा *(वीरछन्द)*

गन्धकुटी शोभे अति सुरभित पुष्प धूप की सौरभ से।
मोती की मालाएँ लटकें नभ को रँगें रत्नद्युति से॥
रत्नमयी शिखरों पर मनहर लाखों ध्वज लहराते हैं।
सुन्दरता की अधिदेवी में जग वैभव झलकाते हैं॥३७॥

सिंहासन प्रातिहार्य *(हरिगीत)*

दैवी प्रभामय यह सिंहासन है निराला शोभता।
स्वर्णमय बहुमूल्य मणियों से जड़ित मन मोहता॥
देवोपनीत सहस्रदल युत कमल जिस पर खिल रहा।
सुर-असुर और मनुष्य का मन मुग्ध अतिशय हो रहा॥३८॥

जिनेन्द्र दर्शन *(त्रोटक)*

चतुरांगुल ऊपर जिन शोभें, नर-इन्द्र सुरेन्द्र मुनीश जजें।
निर-आलम्बी जैसा आतम, बिन आलम्बी वैसा जिन तन॥३९॥

चँवर एवं छत्र प्रातिहार्य *(हरिगीत)*

क्षीर-अमृत तुल्य उज्ज्वल चँवर चौसठ जिन ढुरें।
मानो समुद्र तरंग, गिरि-निर्झर प्रभु सेवन करें॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रण छत्र शोभें शीश पर जिन सुयश मूर्तिमन्त ज्यों।
मौक्तिक प्रभा है चन्द्र सम रत्नांशु रवि भासित अहो ॥४० ॥

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य *(हरिगीत)*

योजन विशाल अशोक तरुवर शोक तिमिर निवारता।
मणि स्कन्ध मणिमय पत्र अरु मणिपुष्प से शोभित अहा॥
झूलतीं बहु शाख अरु अलिगण मधुर गुंजन करें।
क्या वृक्ष हाथ हिला-हिला कर भक्ति से जिनवर भजें॥४१ ॥

जिनेन्द्र महिमा *(त्रोटक)*

चहुँदिशि जिनवर के मुख दिखते, अशुचि नहीं दिव्य शरीर विषें।
नहिं रोग क्षुधा न जरा तन में, न निमेष अहो नयनाम्बुज में॥४२ ॥
मणिपुञ्ज सुधारस अरु शशि से, जिन-तन सुन्दरता अधिक लसे।
अति सौम्य प्रसन्न मुखाम्बुज में, भवि-नेत्र अलि अति लीन हुए॥४३ ॥

भामण्डल प्रातिहार्य

जिन-देह दिवाकर तेज विषें, रवि-शशि तारों का तेज छिपे।
रवि-बिम्ब प्रभा से अधिक कान्ति, श्री जिनवर के भामण्डल की॥४४ ॥
सुर असुर तथा मानव निरखें, स्व-भवान्तर सात प्रमोद धरें।
जिनदेह प्रभा अति पावन में, जग के बहुमंगल दर्पण में॥४५ ॥

दिव्यध्वनि देव-दुन्दुभि एवं पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य

घन-गर्जन वत् जिनवाणी झरे, भवि चित्त-चकोर सुनृत्य करे।
सुर दुंदुभि वाद्य बजें नभ में, हो पुष्पवृष्टि बहु योजन में॥४६ ॥

दिव्यध्वनि महिमा

कर्णप्रिय प्रभु की ध्वनि सुनकर, गंभीर अहो! विस्मित गणधर।
ध्वनि वेग बहे भवि चित भींजे, शुचि ज्ञान झरे भवताप बुझे॥४७॥
दिव्यध्वनि अक्षर एक भले, बहुरूप बने सब जीव सुनें।
जैसे निर्मल जल एक भले, तरु भेदों से बहु भेद लहे॥४८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्यध्वनि श्रवण का फल

वाणी सुनकर बहुज्ञानी बनें, अणुव्रतधारी, निर्ग्रन्थ बनें।
निर्ग्रन्थ मुनी जिनध्वनि सुनकर, निज अनुभव धार अखण्ड करें॥४९॥

सर्वज्ञता और वीतरागता का वर्णन *(हरिगीत)*

मोह का अंकुर अहो! नहिं शेष रहता है जहाँ।
अज्ञान का भी अंश जलकर भस्मरूप हुआ वहाँ॥
निज दर्श आनन्द ज्ञान बल प्रगटे अनन्त अहो जहाँ।
जिनराज के पद-पंकजों में, स्थान मेरा हो वहाँ॥५०॥
जिस तेज में परमाणुवत् लघु यह जगत है भासता।
प्रगटा जहाँ परिपूर्ण ज्ञान अनन्त लोकालोक का॥
त्रण काल की पर्याय युत सब द्रव्य को युगपत लखे।
अति नम्र होकर जिन-चरण में शीश यह मेरा झुके॥५१॥
देवोपनीत समवसरण से राग नहिं किञ्चित् अहा।
मलिन रजकण के प्रति नहिं द्वेष किञ्चित् भी रहा॥
समवसरण अरु धूल जिसमें ज्ञेय केवल हैं अहो।
जिनराज जी! उस ज्ञान को मम वन्दना शतबार हो॥५२॥
शत इन्द्रगण निज शीश धरते तुम चरण में हो भले।
इन्द्राणियाँ स्वस्तिक करती हों रतन-रज से भले॥
पर आपकी परिणति नहीं इन ज्ञेय के सम्मुख जरा।
निज रूप में डूबे हुए हो नमन तुमको जिनवरा॥५३॥

जिनेन्द्र स्तवन

जग के अगाध तिमिर विनाशक सूर्य तुम ही हो प्रभो।
अज्ञान से अंधे जगत के नेत्र तुम ही हो विभो॥
भव जलधि में डूबे जनों की नाव भी तुम ही अहो।
माता-पिता अरु गुरु सब कुछ हे जिनेश्वर! आप हो॥५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थ कर्त्ता हे प्रभो! तुम जगत में जयवन्त हो।
ऊँ कार मय वाणी तुम्हारी जगत में जयवन्त हो॥
समवशरण जिनेन्द्र के सब जगत में जयवन्त हों।
अरु चार तीर्थ सदा जगत में भी अहो जयवन्त हों॥५५॥

समवसरण की महानता *(दोहा)*

समवसरण का शास्त्र में, वर्णन किया विशाल।
किन्तु कहा उस जलधि का, बिन्दु मात्र कुछ हाल॥५६॥
बिन देखे समझें नहीं, यह जिनवर का गेह।
भाग्य नहीं है भरत का, बड़भागी क्षेत्र विदेह॥५७॥

जिनागम की महिमा *(हरिगीत)*

समवशरण जिनेन्द्र का हो यहाँ नहिं यह भाग्य है।
साक्षात् जिनध्वनि का श्रवण भी हो न ऐसा भाग्य है॥
तो भी सीमन्धर नाथ एवं वीर मंगल-ध्वनि की।
सुनी जाती गूँज है जिन आगमों में आज भी॥५८॥

आश्चर्य जनक घटना *(दोहा)*

विक्रम शक प्रारम्भ में, घटना इक सुखदाई।
जिससे ध्वनि विदेह की, भरत क्षेत्र में आई॥५९॥

आचार्य कुन्दकुन्द को साक्षात तीर्थंकर की विरह वेदना *(हरिगीत)*

बहु ऋद्धिधारी कुन्दकुन्द मुनि हुए इस काल में।
श्रुतज्ञान में जो कुशल अरु अध्यात्म रत योगीश थे॥
साक्षात् श्री जिन-विरह की हुई वेदना आचार्य को।
हा! हा! सीमन्धरनाथ का नहिं दरश है इस क्षेत्र को॥६०॥

विदेह गमन *(वीर छन्द)*

सत्धर्म वृद्धि हो अरे! अचानक बोल उठे तब श्री जिनराज।
सीमन्धर जिन समवसरण में अर्थ न समझी सकल समाज॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्धि विहीन ध्वनि सुनकर उस परिषद को आश्चर्य महान।
और दिखे तत्काल महामुनि मूर्तिमन्त अध्यात्म समान॥६१॥
हाथ जोड़कर खड़े प्रभु को नमें भक्ति में लीन हुए।
नग्न दिगम्बर छोटा-सा तन विस्मित थे सब लोग हुए॥
विस्मय से चक्री पूछे हे नाथ! कहो ये कौन महान।
हैं समर्थ आचार्य भरत के करें धर्म की वृद्धि महान॥६२॥

(दोहा)

जिनवर की यह बात सुन, हर्षित सकल समाज।
ऐलाचार्य सभी कहें, छोटे से मुनिराज॥६३॥

भरत क्षेत्र में पुनरागमन (हरिगीत)

प्रत्यक्ष जिनवर दर्श कर बहु हर्ष ऐलाचार्य को।
ॐ कार ध्वनि सुनकर अहो अमृत मिला मुनिराज को॥
सप्ताह एक ध्वनि सुनी श्रुत केवली परिचय किया।
शंका निवारण सभी कर फिर भरत पुनरागम हुआ॥६४॥

आचार्य कुन्दकुन्द की महिमा (रोला आडिल्ल)

गुरु परम्परा से जो वीर ध्वनि है पाई।
जा विदेह दिव्यध्वनि झेली खुद भी भाई॥
मुनिवर ने है वही लिखा इन परमागम में।
कुन्दकुन्द का अति उपकार भरत भूतल में॥६५॥
हो सुपुत्र तुम भरत क्षेत्र के अन्तिम जिन के॥
महाभक्त हो क्षेत्र विदेह प्रथम जिनवर के॥
हो सुमित्र भव में भूले हम भव्य जनों के।
कुन्कुन्द को बार बार वन्दन हम करते॥६६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरदेव, जिनवाणी, आचार्य कुन्दकुन्द एवं पूज्य गुरुदेव का उपकारोल्लेख *(दोहा)*

नमूँ तीर्थनायक प्रभो! वन्दूँ ध्वनि ऊँकार!
कुन्दकुन्द मुनि को नमूँ, जिन झेला ऊँकार ॥६७॥
जिनवर ध्वनि, मुनि कुन्द का, है उपकार महान।
कुन्दध्वनि दातार जो, उपकारी गुरु कहान ॥६८॥

कल्पद्रुम-स्तवन

कल्पद्रुम यह समवशरण है भव्यजीव का शरणागार।
जिनमुखघन से सदा बरसती चिदानन्दमय अमृतधार॥
जहाँ धर्म वर्षा होती वह समवशरण अनुपम छविमान।
कल्पवृक्ष सम भव्यजनों को देता गुण अननत की खान॥
सुरपति की आज्ञा से धनपति रचना करते हैं सुखकार।
निज की कृति ही भाषित होती अति आश्चर्यमयी मनहार ॥१॥
निज ज्ञायक स्वभाव में जमकर प्रभु ने जब ध्याया शुक्लध्यान।
मोहभाव क्षयकर प्रगटाया यथाख्यात चारित्र महान॥
तब अन्तर्मुहूर्त में प्रगटा केवलज्ञान महा सुखकार।
दर्पण में प्रतिबिम्ब तुल्य जो लोकालोक प्रकाशनहार ॥२॥
गुण अनन्तमय कला प्रकाशित चेतन-चन्द्र अपूर्व महान।
राग आग की दाह रहित शीतल झरना झरता अभिराम॥
निज वैभव में तन्मय होकर भोगें प्रभु आनन्द अपार।
ज्ञेय झलकते सभी ज्ञान में किन्तु न ज्ञेयों का आधार ॥३॥
दर्शन ज्ञान वीर्य सुख है सदा सुशोभित चेतनराज।
चौंतिस अतिशय आठ प्रातिहार्यो से शोभित है जिनराज।
अन्तर्बाह्य प्रभुत्व निरखकर भव्य लहें आनन्द अपार।
प्रभु चरण कमल मैं वन्दन कर पाई सुख शान्ति अपार ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनचतुर्विंशतिका

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं
वाग्देवीरनिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनाङ्घ्रिद्वयम् ॥१ ॥

(वसन्ततिलका छन्द)

शान्तं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं।
सर्वोपकारी तव देव ततः श्रुतज्ञाः ॥
संसारमारवमहास्थलरुन्द्रसान्द्र-
च्छायामहीरुहभवन्तमुपैश्रयन्ते ॥२ ॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भान्ध कूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटम्।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानन्दाय लोकत्रयी-
नेत्रेन्दीवर-काननेन्दुममृतस्यन्दि-प्रभाचन्द्रिकम् ॥३ ॥

निःशेषत्रिदशेन्द्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली-
सान्द्रीभूतमृगेन्द्रविष्टरतटीमाणिक्य- दीपावलिः ।
क्वेयं श्री क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेशः लोकोत्तरः ॥४ ॥

राज्यं शासनकारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया,
हेलानिर्दलितस्त्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकुरस्यान्तः कृतं यत्त्वया,
सैषाश्चर्यपरम्परा जिनवर क्वान्यत्र सम्भाव्यते ॥५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्यानुवाद

जो अभीष्टप्रद तथा कल्प-दल के,समान सत्कान्ति-निकेत।
जिनवर के पद-युग का दर्शन,प्रात: करता भक्ति समेत॥
वह होता श्री-सौध,मही का कुल-गृह,यश का लीलागार।
सरस्वती का सद्म विजयश्री का आलय उत्सव-भण्डार॥१॥

देव! आपका तन प्रशान्त है, वचन कर्ण-प्रिय और आचार।
अनायास ही करता रहता, सभी प्राणियों का उपकार॥
अत: आप ही जग-मरुथल के सघन वृक्ष हैं छायादार।
यही हेतु जो विज्ञ आपका आश्रय लेते बारम्बार॥२॥

नाथ!आप हैं त्रिजग नयन के, कुमुद-विपिन हित चन्द्र अनूप।
सुधा प्रवाहित करती है तव, शुभ्र चन्द्रिका कान्ति-स्वरूप॥
अत: आपका दर्शन कर मैं,आज गर्भ कूप से हुआ प्रसूत।
आज दृष्टि हो गई प्रगट औ! आज हुआ है जीवन पूत॥३॥

इन्द्र-किरीटों के रत्नों की, दीपावलि से सघन महान्।
सिंहासन के मणिमय दीपों का, यह विभव कहाँ श्रीमान्?
और आपकी यह निस्पृहता,कहाँ अत: हे त्रिभुवन-ईश!
आप सदृश का चरित तर्क का, विषय नहीं है हे जगदीश॥४॥

प्रभो! आपने सुरपति-सेवित, राज्य दिया तृण जैसा छोड़।
अनायास ही त्रिभुवन विजयी, मोह-मल्ल को दिया मरोड़॥
लीन किया निज ज्ञान-मुकुर के भीतर लोकालोक वितान।
यह विस्मय अन्यत्र कहाँ पर, हो सकता है हे धीमान्॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये
चीर्णान्युग्रतपांसि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः ।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं निज येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणम् ॥६ ॥

प्रज्ञापारमितः स एव भगवानपारं स एव श्रुत
स्कन्धाब्धे गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवम् ।
नीयन्ते जिन येन कर्णहृदयलङ्कारतां त्वद्गुणाः
संसाराहिविषापहार-मणयस्त्रैलोक्यचूडामणेः ॥७ ॥

(मालिनी छन्द)

जयति दिविजवृन्दान्दोलितैरिन्दुरोचि-
निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः ।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी-
युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधानैः ॥८ ॥

(स्रग्धरा छन्द)

देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषा-
पुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः ।
साश्चर्यैर्भ्राजिमानः सुरमनुजसमाम्भोजिनी भानुमाली-
पायान्नः पादपीठीकृतसकल जगत्पालमौलिर्जिनेन्द्रः ॥९ ॥

नृत्यत्स्वर्दन्तिदन्ताम्बुरुहवननटन्नाकनारीनिकायः
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्यमाद्यन्निलिम्पः ।
हस्ताम्भोजातलीलाविनिहितसुमनोदामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजाविधिषु विजयते देव देवागमस्ते ॥१० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनवर! जिस श्रद्धालु जीव ने, किया आपका पावन दर्श।
उसने ज्ञानी व्रती पात्र के, लिए दान दे लिया सहर्ष॥
कठिन तपस्या संचय कर ली, की पूजाएँ भी अवदात।
एवं निर्मल गुणों सहित ही पाये शील व्रत भी सात॥६॥

त्रिभुवन-चूड़ामणे! आप जग-अहि-विष-हारक मणि निर्दोष।
जो तव गुण से कर्ण हृदय को, भूषित कर करता सन्तोष॥
वही बुद्धि पारंगत प्रभु वह, शास्त्र सिन्धु का अन्तिम पार।
वह ही है गुण-रत्न विभूषित, वही प्रशंसापात्र उदार॥७॥

सुर समूह के द्वारा चालित, उज्ज्वल-शशि सम ही छविमान।
औ अनुरक्त-मुक्ति-श्री युवती के कटाक्ष से शोभावान॥
उन्नत चँवरों द्वारा ढोले जानेवाले हे जिनराज।
हैं जयवन्त आप ही जग में, मान रहा यह विज्ञ समाज॥८॥

जो कि छत्र, चामर,अशोक, भामण्डल दिव्यध्वनि अभिराम।
पुष्पवृष्टि, सिंहासन, दुन्दुभि, प्रतिहार्य से शोभा-धाम॥
सुर-नर-सभा-कमलिनी के रवि,एवं जग के सभी नरेन्द्र।
जिन्हें नवाते शीश, करें हम सबकी रक्षा वही जिनेन्द्र॥९॥

देव! आपकी शुभ कल्याणक विधि में करते नृत्य ललाम।
सुर-गज के दन्तों पर नर्तित, सुर-वधुओं से शोभाधाम॥
त्रिभुवन-यात्रा-उत्सव-ध्वनि से, मुदित सुरों से और ज्वलन्त॥
सुर सुन्दरियों द्वारा सुन्दर यह देवागम है जयवन्त॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने नेत्रामृतस्यन्दिनं
त्वद्वक्त्रेन्दुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितम् ।
तेनालोकयता मयाऽनतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृम्भमाणोत्सवम् ॥११ ॥

(वसन्ततिलका छन्द)

कन्तोः सकान्तमपि मल्लमवैति कश्चि-
न्मुग्धो मुकुन्दमरविन्दजमिन्दुमौलिम् ।
धीमोकृतत्रिदशयोषिदपाङ्गपात-
स्तस्य त्वमेव विजयी जिनराज! मल्लः ॥१२ ॥

(मालिनी छन्द)

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषात्-
कुसुमितमतिसान्द्रं त्वत्समीपप्रयाणात्-
मम फलितममन्दं त्वन्मुखेन्दोरिदानीं-
नयनपथमवाप्ताद् देव! पुण्यद्रुमेण ॥१३ ॥

त्रिभुवननवनपुष्पात्पुष्पकोदण्डदर्प-
प्रसरदवनवाम्भो मुक्तिसूक्तिप्रसूतिः ।
स जयति जिनराज व्रातजीमूतसङ्घः-
शतमखशिखिनृत्यारम्भनिर्बन्धबन्धुः ॥१४ ॥

(स्रग्धरा छन्द)

भूपालस्वर्गपाल प्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला-
लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदीन्दोर्जिनस्य ।
उत्तं सीभूतसेवाञ्जलिपुटनलिनीकुड्मलास्त्रिः परीत्य-
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोऽस्मीव मुक्तिम् ॥१५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव! दृगों में अमृत-वर्षक, अति प्रसाद से शोभावान।
तेज-अलंकृत तव मुख-शशि का दर्शन कर मैंने भगवान॥
सर्वोत्तम द्रष्टव्य वस्तु का दर्शन कर दृग किये पवित्र।
अत: विश्व में मैं ही हूँ अब नेत्रवान हे त्रिभुवन-मित्र॥११॥

जिनवर! कोई मुग्ध कामिनी के, कटाक्ष के द्वारा विद्ध।
हरि, हर, ब्रह्मा को ही कहते, काम-विजेता मल्ल प्रसिद्ध॥
किन्तु आपने विफल किये, सुर-वधुओं के दृग-बाण-प्रहार।
अत: आपको ही है मन्मथ-जयी, कहाने का अधिकार॥१२॥

तव दर्शन की इच्छा से ही, मेरे पुण्य-विटप में आप्त।
पल्लव निकले, निकट-गमन से, हुई सघन सुमनावलि व्याप्त॥
और आपके मुख-शशि- र्शन से, इस समय लगे फल ईश।
अत: आपका पावन दर्शन, पुण्य हेतु है हे योगीश॥१३॥

त्रिभुवन-वन में व्याप्त मदन के, मद के दावानल का ताप।
निज उपदेशामृत की वर्षा से शीतल कर देते आप॥
तथा सुराधिप रूप शिखी के, नर्तन में भी निस्सन्देह।
सबसे श्रेष्ठ आप ही, आग्रहकारी बन्धु स्वरूपी मेह॥१४॥

चक्री इन्द्र प्रमुख नर सुर के, नयन-भ्रमर के लीलाधाम।
चैत्यवृक्ष औ, अखिल जगत के, कुमुद वर्ग को शशि अभिराम॥
जिनमन्दिर की त्रय-प्रदक्षिणा दे, कर-युगल जोड़ सानन्द।
तव श्री-पद से विगत-ताप हो,, पाया मैंने शिव आनन्द॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(वसन्ततिलका छन्द)

देव त्वदङ्घ्रिनखमण्डलदर्पणेऽस्मि-
न्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः ।
श्रीकीर्तिकान्तिधृतिसङ्गमकारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभमङ्गलानि ॥१६ ॥

जयति सुरनरेन्द्र श्रीसुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधराऽयं जैनचैत्याभिरामः ।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसरशिखर शुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः ॥१७ ॥

विनमदमरकान्ताकुन्तलाक्रान्तकान्ति-
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशान्तरालः ।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो-
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेन्द्रः ॥१८ ॥

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमङ्गलाय
द्रष्टव्यमस्ति यदि मङ्गलमेव वस्तु ।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं
त्रैलोक्य मङ्गलनिकेतनमीक्षणीयम् ॥१९ ॥

(शार्दूलविक्रीड़ित छन्द)

त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबन्धक्रम-
क्रीडानन्दनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीमल्लिकाषट्पदः ।
त्वं पुन्नागकथारविन्दसरसीहंसस्त्वमुत्तंसकैः
कैर्भूपाल न धार्यसे गुणमणिस्त्रङ् मालिभिर्मौलिभिः ॥२० ॥

(मालिनी छन्द)

शिवसुखमजरश्रीसङ्गमं चाभिलष्य
स्वमभिनियमयन्ति क्लेशपाशेन केचित् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभो! पूज्य औ, स्वतः रुचिर, तव नख-दर्पण में बारम्बार।
स्वमुख देखकर भव्य जीव श्री, कीर्ति कान्ति धृति के आगार॥
किन शुभ मंगलमयी प्रसंगों को न प्राप्त होता स्वयमेव।
कहने का सारांश कि वह सब शुभ मंगल पाता है देव॥१६॥

सुर-नर की श्री-रूप सुधा के अमृत-झरनों से अभिराम।
अतिशय फलयुत धर्मवृक्ष के अग्रभाग पर लगी ललाम।।
किसलय दल के शिखर सदृश ही, शोभित ध्वज से श्री गृह रूप।
यह जिनेन्द्र का मन्दिर जग में सबसे उत्तम और अनूप॥१७॥

जिनके नख-शशि में प्रतिबिम्बत, होते विनत सुरी के केश।
जिनके चरण-कमल की पूजा करते हैं अमरेश नरेश॥
तथा जिन्होंने कर्म रूप निज अरि की सेना ली है जीत।
वे जिनेन्द्र ही तीनों लोकों में सर्वोत्तम और पुनीत॥१८॥

स्वामिन्! सोकर उठे पुरुष को, यदि शुभ मङ्गल के प्राप्त्यर्थ।
मंगल वस्तु देखनी हो तो, अन्य वस्तुएँ सब हैं व्यर्थ॥
त्रिभुवन के हर मंगल के गृहरूप, आपका वदन-मयंक।
मात्र देख ले तो हर मंगल, प्राप्त उसे होगा निःशंक॥१९॥

नाथ! आप धर्मोदय-वन-शुक, आप काव्य-क्रम-क्रीड़ा-रूप।
नन्दन वन के पिक, सुजनों की, चर्चा-सर के हंस अनूप॥
अतः आपको कौन गुणी जन, गुण-मणि-माला से समवेत।
अपने मंजुल मुकुट झुकाकर नमन न करता भक्ति समेत॥२०॥

कुछ जन चाह मुक्ति सुख एवं, देवों की लक्ष्मी का सङ्ग।
भाँति-भाँति के दुःख-समूह से नियमित करते अपने अङ्ग॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयन्त-
स्तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः ॥२१ ॥

(शार्दूलविक्रीड़ित छन्द)

देवेन्द्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवाङ्गना मङ्गला-
न्यापेठुः शरदिन्दुनिर्मलयशो गन्धर्वदेवा जगुः।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे,
तत् किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते ॥२२ ॥

देव त्वज्जन्माभिषेकसमये रोमाञ्चसत्कञ्चुकै-
र्देवेन्द्रैर्यदनर्ति नर्त्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटम्।
किञ्चान्यत्सुरसुन्दरीकुचतट- प्रान्तानवद्धोत्तम-
प्रेङ्खद्वल्लकिनादझङ् कृतमहो तत्केन संवर्ण्यते ॥२३ ॥

देव! त्वत्प्रतिबिम्बमम्बुजदल-स्मेरेक्षणं पश्यतां
यत्रास्माकमहो महोत्सवरसो दृष्टेरियान् वर्तते।
साक्षात्तत्र भवन्तमीक्षितवतां कल्याणकाले तदा
देवनामनिमेषलोचनतया वृत्तः सः किं वर्ण्यते ॥२४ ॥

दृष्टं धाम रसायनस्य महतां दृष्टं निधीनां पदं
दृष्टं सिद्धरसस्य सद्म सदनं दृष्टं च चिन्तामणेः।
किं दृष्टेरथवानुषङ्गिकफलैरेभिर्मयाद्य ध्रुवं
दृष्टं मुक्तिविवाहमङ्गलगृहं दृष्टे जिनश्रीगृहे ॥२५ ॥

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र-विकसद्भूपेन्द्र-नेत्रोत्पले
स्नातं त्वन्नुतिचन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शान्तिं मया गम्यते
देव! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात् पुनर्दर्शनम् ॥२६ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पर सदैव हम यहाँ आपके उपदेशों की महिमा सोच।
अनायास ही मोक्ष-स्वर्ग को, पा लेते हैं निस्संकोच ॥२१ ॥

इन्द्रों ने अभिषेक किया तव, किये देवियों ने शुभ गान।
गन्धर्वों ने गाया लय से, शरच्चन्द्र सम यश अम्लान ॥
शेष सुरों ने स्वीय नियोगों, के अनुसार किये उपचार।
तब अब हम क्या करें ? सोच मन, चंचल होता बारम्बार ॥२२ ॥

भगवन्! तव जन्माभिषेक में, नर्तक इन्द्रों ने अवदात।
वह रोमांच-कंचुकी धारण कर, जो नृत्य किया विख्यात ॥
और देवियों की वीणा से जो झंकार हुई जगदीश।
उन सबका उल्लेख न कोई, भी कर सकता है हे ईश ॥२३ ॥

अम्बुज-दल सम नयनमयी, तव प्रतिमा का दर्शन कर देव।
जबकि हमारे नयनों को यह, इतना सुख मिलता स्वयमेव ॥
तब कल्याणक-समय एक टक नयनों से तव रूप अपार।
देख सुरों को जो सुख मिलता, वह अवर्ण्य है सभी प्रकार ॥२४ ॥

जिन श्री-गृह को देख रसायन का गृह देखा है जिनराज।
देखा निधियों का निवास-गृह, सिद्ध-रसालय देखा आज ॥
चिन्तामणी-निकेतन देखा, अथवा इनसे है क्या लाभ ?
देखा मैंने आज मुक्ति का परिणय-मंगल-गृह अमिताभ ॥२५ ॥

हे जिनचन्द्र ! किये तव दर्शन, औ भूपति-दृग-कुमुद-ललाम।
विज्ञ चकोरों को सुखप्रद तव, संस्तुति-जलमें अति अभिराम ॥
स्नान किया है और आज ही, शान्त किए हैं तापज क्लेश।
अब जाता तव चिन्तन करता, तव दर्शन हो पुनः जिनेश ॥२६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमूल्य तत्त्व विचार

बहु पुण्य-पुञ्ज-प्रसङ्ग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला ॥१ ॥
सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भावमरण-प्रवाह में चकचूर है ॥२ ॥
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धि? कुछ नहिं मानिये ॥३ ॥
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुमको अरे! इसका विवेक विचार है ॥४ ॥
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्तःतत्त्व जिससे बन्धनों से मुक्त हो ॥५ ॥
परवस्तु में मूर्छित न हो इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुःख भरा ॥६ ॥
मैं कौन हूँ आया कहाँ से और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ॥७ ॥
इसका विचार विवेक पूर्वक शांत होकर कीजिए।
तो सर्व आत्मिक-ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये ॥८ ॥
किसका वचन उस तत्त्व की उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानूभुति प्रसूत है ॥९ ॥
तारो अहो तारो निजात्मा शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि हो यह वच हृदय लख लीजिये ॥१० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रागादिनिर्णयाष्टक

(दोहा)

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनन्द।
तासु चरन वन्दन करैं, मन धर परमानन्द ॥१ ॥

(मात्रक कवित्त)

राग-द्वेष मोह की परणति, है अनादि नहिं मूल स्वभाव।
चेतन शुभ्र फटिक मणि जैसें, रागादिक ज्यों रंग लगाव ॥
वाही रंग सकल जग मोहित, सो मिथ्यामति नाम कहाव।
समदृष्टी सो लखै दुहूँ दल, यथायोग्य वरतै कर न्याव ॥२ ॥

(दोहा)

जो रागादिक जीव के, ह्वै कहुँ मूल स्वभाव।
तो होते शिव लोक में, देख चतुर कर न्याव ॥३ ॥
सबहि कर्म तैं भिन्न हैं, जीव जगत के माहिं।
निश्चय नयसों देखिये, फरक रंच कहुँ नाहिं ॥४ ॥
रागादिकसों भिन्न जब, जीव भयौ जिह काल।
तब तिंह पायो मुकति पद, तोरि कर्म के जाल ॥५ ॥
ये हि कर्म के मूल हैं, राग द्वेष परिणाम।
इनही से सब होत हैं, कर्म बन्ध के नाम ॥६ ॥

(चान्द्रायण छन्द २५ मात्रा)

रागी बांधै करम भरम की भरनसों।
वैरागी निर्बन्ध स्वरूपाचरनसों ॥
यहै बन्ध अरु मोक्ष कही समुझाय के ।
देखो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(कवित्त)

राग रु द्वेष मोह की परिणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय।
तिनको निमित पाय परमाणे, बन्ध होय वसु भेदहिं सोय॥
तिनतैं होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ विषै रत भुंजत लोय।
तिनमें राग-द्वेष जो उपजत, तिहँ संसारचक्र फिर होय॥८॥

(दोहा)

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरे में समुझाय।
भैया सम्यक नैन तैं, लीज्यो सबहि लखाय॥९॥

छहढाला

पण्डित द्यानतराय कृत

पहली ढाल

ओंकार मंझार, पंच परम पद वसत हैं।
तीन भुवन में सार, वन्दूँ मन वच काय कर॥१॥
अक्षर ज्ञान न मोहि, छन्द-भेद समझूँ नहीं।
मति थोड़ी किम होय, भाषा अक्षर बावनी॥२॥
आतम कठिन उपाय, पायो नर भव क्यों तजैं।
राई उदधि समाय, फिर ढूँढे नहिं पाइये॥३॥
इह विध नर भव कोय, पाय विषय सुख में रमै।
सो शठ अमृत खोय, हालाहल विष को पिये॥४॥
ईश्वर भाखो येह, नर भव मत खोओ वृथा।
फिर न मिलै यह देह, पछतावो बहु होयगो॥५॥
उत्तम नर अवतार, पायो दुख कर जगत में।
यह जिय सोच विचार, कुछ टोसा संग लीजिये॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊरध गति को बीज, धर्म न जो मन आचरैं।
मानुष योनि लहीज, कूप पड़े कर दीप ले ॥७॥
ऋषिवर के सुन बैन, सार मनुज सब योनि में।
ज्यों मुख ऊपर नैन, भानु दिपै आकाश में ॥८॥

दूसरी ढाल

रे जिय यह नरभव पाया, कुल जाति विमल तू आया।
जो जैनधर्म नहिं धारा, सब लाभ विषयसंग हारा ॥१॥
लखि बात हृदय गह लीजे, जिनकथित धर्म नित कीजे।
भव दुख सागर को वरिये, सुख से नवका ज्यों तरिये ॥२॥
ले सुधि न विषय रस भरिया, भ्रम मोह ने मोहित करिया।
विधि ने जब दई घुमरिया, तब नरक भूमि तू परिया ॥३॥
अब नर कर धर्म अगाऊ, जब लों धन यौवन चाऊ।
जब लों नहिं रोग सतावैं, तोहि काल न आवन पावै ॥४॥
ऐश्वर्य रु आश्रित नैना, जब लों तेरी दृष्टि फिरै ना।
जब लों तेरी दृष्टि सवाई, कर धर्म अगाऊ भाई ॥५॥
ओस बिन्दु त्यों योवन जैहै, कर धर्म जरा पुन यै है।
ज्यों बूढ़ो बैल थकै है, कछु कारज कर न सकै है ॥६॥
औ छिन संयोग वियोगा, छिन जीवन छिन मृत्यु रोगा।
छिन में धन यौवन जावै, किसविधि जग में सुख पावै ॥७॥
अंबर धन जीवन येहा, गज-करण चपल धन देहा।
तन दर्पण छाया जानो, यह बात सभी उर आनौ ॥८॥

तीसरी ढाल

अः यम ले नित आयु, क्यों न धर्म सुनीजै।
नयन तिमिर नित हीन, आसन यौवन छीजै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमला चले नहिं पैंड, मुख ढाकैं परिवारा।
देह थकैं बहु पोष, क्यों न लखै संसारा॥१॥
छिन नहिं छोड़े काल, जो पाताल सिधारै।
वसे उदधि के बीच, जो बहु दूर पधारै॥
गण-सुर राखै तोहि, राखै उदधि-मथैया।
तोहु तजै नहिं काल, दीप पतंग ज्यों पड़िया॥२॥
घर गौ सोना दान, मणि औषधि सब यों ही।
यंत्र मंत्र कर तंत्र, काल मिटै नहिं क्यों ही॥
नरक तनो दुख भूर, जो तू जीव सम्हारे।
तो न रुचै आहार, अब सब परिग्रह डारैं॥३॥
चेतन गर्भ मंझार, वसिके अति दुख पायो।
बालपने को ख्याल सब जग प्रगटहि गायो।
छिन में तन को सोच, छिन में विरह सतावै।
छिन में इष्ट वियोग, तरुण कौन सुख पावैं॥४॥

चौथी ढाल

जरापने जो दुख सहे, सुन भाई रे।
सो क्यों भूले तोहि, चेत सुन भाई रे।
जो तू विषयों से लगा, सुन भाई रे।
आतम सुधि नहिं तोहि, चेत सुन भाई रे॥१॥
झूठ वचन अघ ऊपजै, सुन भाई रे।
गर्भ बसो नवमास, चेत सुन भाई रे।
सप्त धातु लहि पाप से, सुन भाई रे।
अबहू पाप रताय चेत सुन भाई रे॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं जरा गद आय है, सुन भाई रे।
कहाँ गये यम यक्ष वे, सुन भाई रे।
जे निश्चिन्तित हो रह्यो, सुन भाई रे।
सो सब देख प्रत्यक्ष चेत सुन भाई रे ॥३ ॥
टुक सुख को भवदधि पड़े, सुन भाई रे।
पाप लहर दुखदाय, चेत सुन भाई रे।
पकड़ो धर्म जहाज को, सुन भाई रे।
सुख से पार करेय, सुन भाई रे ॥४ ॥
ठीक रहे धन सास्वतो, सुन भाई रे।
होय न रोग न काल, चेत सुन भाई रे
उत्तम धर्म न छोड़िये, सुन भाई रे।
धर्म कथित जिन धार, चेत सुन भाई रे ॥५ ॥
डरपत जो परलोक से, सुन भाई रे।
चाहत शिव सुखसार, चेत सुन भाई रे।
क्रोध लोभ विषयन तजो, सुन भाई रे।
कोटि कटै अघजाल, चेत सुन भाई रे ॥६ ॥
ढील न कर, आरम्भ तजो, सुन भाई रे।
आरम्भ में जिय घात, चेत सुन भाई रे।
जीवघात से अघ बढ़ैं, सुन भाई रे।
अघ से नरक लहात, चेत सुन भाई रे ॥७ ॥
नरक आदि त्रैलोक में सुन भाई रे।
ये परभव दुख राशि, चेत सुन भाई रे।
सो सब पूरब पाप से, सुन भाई रे।
सबहि सहै बहु त्रास, चेत सुन भाई रे ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवीं ढाल

रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।टेक ।।

तिहुँ जग में सुर आदि दे जी, सो सुख दुर्लभ सार,
सुन्दरता मन-मोहनी जी, सो है धर्म विचार।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।१ ।।

थिरता यश सुख धर्म से जी पावत रत्न भंडार,
धर्म बिना प्राणी लहै जी, दुःख अनेक प्रकार।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।२ ।।

दान धर्म ते सुर लहै जी, नरक लहै कर पाप,
इह विधि नर जो क्यों पड़े जी, नरक विषैं तू आप।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।३ ।।

धर्म करत शोभा लहै जी, हय गय रथ वर साज,
प्रासुक दान प्रभाव ते जी, घर आवैं मुनिराज।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।४ ।।

नवल सुभग मन मोहनाजी, पूजनीक जग माहिं,
रूप मधुर बच धर्म से जी, दुख कोई व्यापै नाहिं।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।५ ।।

परमारथ यह बात है जी, मुनि को समता सार,
विनय मूल विद्यातनी जी, धर्म दया सरदार।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।६ ।।

फिर सुन करुणा धर्ममय जी, गुरु कहिये निर्ग्रन्थ,
देव अठारह दोष बिन जी, यह श्रद्धा शिव-पंथ।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।७ ।।

बिन धन घर शोभा नहीं जी, दान बिना पुनि गेह,
जैसे विषयी तापसी जी, धर्म दिया बिन नेह।
रे भाई अब तू धर्म सम्हार ।।८ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठवीं ढाल

भोंदू धनहित अघ करे, अघ से धन नहिं होय।
धरम करत धन पाइये, मन वच जानो सोय ॥१ ॥
मत जिय सोचे चिंतवै, होनहार सो होय।
जो अक्षर विधना लिखे, ताहि न मेटे कोय ॥२ ॥
यद्यपि द्रव्य की चाह में, पैठै सागर माहिं।
शैल चढ़े वश लोभ के, अधिको पावै नाहिं ॥३ ॥
रात-दिवस चिंता चिता, माहिं जले मत जीव।
जो दीना सो पायगा, अधिक न मिलै सदीव ॥४ ॥
लागि धर्म जिन पूजिये, सत्य कहैं सब कोय।
चित प्रभु चरण लगाइये, मनवांछित फल होय ॥५ ॥
वह गुरु हों मम संयमी, देव जैन हो सार।
साधर्मी संगति मिलो, जब लों हो भव पार ॥६ ॥
शिव मारग जिन भाषियो, किंचित जानो सोय।
अंत समाधी मरण करि, चहुंगति दुख क्षय होय ॥७ ॥
षट्विधि सम्यक् जो कहै, जिनवानी रुचि जास।
सो धन सों धनवान है, जग में जीवन तास ॥८ ॥
सरधा हेतु हृदय धरै, पढ़ै सुनै दे कान।
पाप कर्म सब नाश के, पावै पद निर्वाण ॥९ ॥
हित सों अर्थ बताइयो, सुथिर बिहारी दास।
सत्रहसौ अठ्ठानवे, तेरस कार्तिक मास ॥१० ॥
क्षय-उपशम बलसों कहै, द्यानत अक्षर येह।
देख सुबोध पचासका, बुधिजन शद्ध करेहु ॥११ ॥
त्रेपन क्रिया जो आदरै, मुनिगण विंशत आठ।
हृदय धरैं अति चाव सो, जारैं वसु विधि काठ ॥१२ ॥
ज्ञानवान जैनी सबै, बसैं आगरे माहिं।
साधर्मी संगति मिले, कोई मूरख नाहिं ॥१३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छहढाला

(कविवर बुधजन कृत)

मङ्गलाचरण

सर्व द्रव्य में सार, आतम को हितकार हैं।
नमो ताहि चितधार, नित्य निरंजन जानके॥

पहली ढाल

आयु घटे तेरी दिन-रात, हो निश्चिंत रहो क्यों भ्रात।
यौवन तन धन किंकर नारि, हैं सब जल बुदबुद उनहारि॥१॥
पूरण आयु बढ़े छिन नाहिं, दिये कोटि धन तीरथ मांहि।
इन्द्र चक्रपति हू क्या करैं, आयु अन्त पर वे हू मरैं॥२॥
यों संसार असार महान, सार आप में आपा जान।
सुख से दुख, दुख से सुख होय, समता चारों गति नहिं कोय॥३॥
अनंतकाल गति-गति दुख लह्यो, बाकी काल अनंतो कह्यो।
सदा अकेला चेतन एक, तो माहीं गुण वसत अनेक॥४॥
तू न किसी का तेरा न कोय, तेरा सुख दुख तोकों होय।
याते तोकों तू उर धार, पर द्रव्यनतें ममत निवार॥५॥
हाड़ मांस तन लिपटी चाम, रुधिर मूत्र-मल पूरित धाम।
सो भी थिर न रहे क्षय होय, याको तजे मिले शिव लोय॥६॥
हित अनहित तन कुलजन माहिं, खोटी बानि हरो क्यों नाहिं।
याते पुद्गल-करमन जोग, प्रणवे दायक सुख-दुख रोग॥७॥
पांचों इन्द्रिन के तज फैल, चित्त निरोध लाग शिव-गैल।
तुझमें तेरी तू करि सैल, रहो कहा हो कोल्हू बैल॥८॥
तज कषाय मन की चल चाल, ध्यावो अपनो रूप रसाल।
झड़े कर्म-बंधन दुखदान, बहुरि प्रकाशै केवलज्ञान॥९॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तेरो जन्म हुओ नहिं जहां, ऐसा खेतर नाहीं कहाँ।
याही जन्म-भूमिका रचो, चलो निकसि तो विधि से बचो ॥१० ॥
सब व्यवहार क्रिया को ज्ञान, भयो अनंती बार प्रधान।
निपट कठिन 'अपनी' पहिचान, ताको पावत होत कल्याण ॥११ ॥
धर्म स्वभाव आप सरधान, धर्म न शील न न्हौन न दान।
'बुधजन' गुरु की सीख विचार, गहो धाम आतम सुखकार ॥१२ ॥

दूसरी ढाल

सुन रे जीव कहत हूँ तोकों, तेरे हित के काजैं।
हो निश्चल मन जो तू धारे, तब कछु-इक तोहि लाजे॥
जिस दुख से थावर तन पायो, वरन सकों सो नाहीं।
अठदश बार मरो अरु जीयो, एक स्वास के माहीं ॥१ ॥
काल अनतानंत रह्यो यों, पुनि विकलत्रय हूवो।
बहुरि असैनी निपट अज्ञानी, छिनछिन जीओ मूवो॥
ऐसे जन्म गयो करमन-वश, तेरो जोर न चाल्यों।
पुन्य उदय सैनी पशु हूवो, बहुत ज्ञान नहिं भाल्यो ॥२ ॥
जबर मिलो तब तोहि सतायो, निबल मिलो ते खायो।
मात तिया-सम भोगी पापी, तातें नरक सिधायो॥
कोटिन बिच्छू काटत जैसे, ऐसी भूमि तहाँ है।
रुधिर-राध-परवाह बहे जहां, दुर्गन्धि निपट तहाँ है ॥३ ॥
घाव करै असिपत्र अंग में, शीत उष्ण तन गाले।
कोई काटे करवत कर गह, कोई पावक जालैं॥
यथायोग सागर-थिति भुगते, दुख को अंत न आवे।
कर्म-विपाक इसो ही होवे, मानुष गति तब पावै ॥४ ॥
मात उदर में रहो गेंद ह्वै, निकसत ही बिललावे।
डंभा दांत गला विष फोटक, डाकिन से बच जावे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो यौवन में भामिनि के संग, निशि-दिन भोग रचावे।
अंधा ह्वैं धंधे दिन खोवै, बूढ़ा नाड़ हिलावे ॥५ ॥
जम पकड़े तब जोर न चाले, सैनहि सैन बतावै।
मंद कषाय होय तो भाई, भवनत्रिक पद पावै ॥
पर की संपति लखि अति झूरे, कै रति काल गमावै।
आयु अंत माला मुरझावै, तब लखि लखि पछतावै ॥६ ॥
तहँ तैं चयकर थावर होता, रुलता काल अनन्ता।
या विध पंच परावृत पूरत, दुख को नाहीं अन्ता ॥
काललब्धि जिन गुरु-कृपा से, आप आप को जाने।
तबही 'बुधजन' भवदधि तिरके, पहुँच जाय शिव-थाने ॥७ ॥

तीसरी ढाल

इस विधि भववन के माहिं जीव, वश मोह गहल सोता सदीव।
उपदेश तथा सहजै प्रबोध, तबही जागै ज्यों उठत जोध ॥१ ॥
जब चितवत अपने माहिं आप, हूँ चिदानन्द नहिं पुन्य-पाप।
मेरो नाहीं है राग भाव, यह तो विधिवश उपजै विभाव ॥२ ॥
हूँ नित्य निरंजन सिध समान, ज्ञानावरणी आच्छाद ज्ञान।
निश्चय सुध इक व्यवहार भेव, गुण गुणी अंग-अंगी अछेव ॥३ ॥
मानुष सुर नारक पशुपर्याय, शिशु युवा वृद्ध बहुरूप काय।
धनवान दरिद्री दास राय, ये तो विडम्ब मुझको न भाय ॥४ ॥
रस फरस गन्ध वरनादि नाम , मेरे नाहीं मैं ज्ञानधाम।
मैं एकरूप नहिं होत और, मुझमें प्रतिबिम्बत सकल ठौर ॥५ ॥
तन पुलकित उर हरषित सदीव, ज्यों भई रंकगृह निधि अतीव।
जब प्रबल अप्रत्याख्यान थाय, तब चित परिणति ऐसी उपाय ॥६ ॥
सो सुनो भव्य चित धार कान, वरणत हूँ ताकी विधि विधान।
सब करै काज घर माहिं वास, ज्यों भिन्न कमल जल में निवास ॥७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यों सती अंग माहीं सिंगार, अति करत प्यार ज्यों नगर नारि।
ज्यों धाय चखावत आन बाल, त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥८ ॥
जब उदय मोह चारित्र भाव, नहिं होत रंच हू त्याग भाव।
तहाँ करै मंद खोटी कषाय, घर में उदास हो अथिर थाय ॥९ ॥
सबकी रक्षा युत न्याय नीति, जिनशासन गुरु की दृढ़ प्रतीति।
बहु रुले अर्द्ध पुद्गल प्रमान, अंतर मुहूर्त ले परम थान ॥१० ॥
वे धन्य जीव धन भाग सोय, जाके ऐसी परतीत होय।
ताकी महिमा ह्वै स्वर्ग लोय, बुधजन भाषे मोतैं न होय ॥११ ॥

चौथी ढाल

ऊग्यो आतम सूर, दूर भयो मिथ्यात-तम।
अब प्रगटे गुणभूर, तिनमें कछु इक कहत हूँ ॥१ ॥
शंका मन में नाहिं, तत्त्वारथ सरधान में।
निरवांछा चित माहिं, परमारथ में रत रहै ॥२ ॥
नेक न करत गिलान, बाह्य मलिन मुनि तन लखे।
नाहीं होत अजान, तत्त्व कुतत्त्व विचार में ॥३ ॥
उर में दया विशेष, गुण प्रकटैं औगुण ढके।
शिथिल धर्म में देख, जैसे-तैसे दृढ़ करै ॥४ ॥
साधर्मी पहिचान, करैं प्रीति गौ वत्स सम।
महिमा होत महान्, धर्म काज ऐसे करै ॥५ ॥
मद नहिं जो नृप तात, मद नहिं भूपति ज्ञान को।
मद नहिं विभव लहात, मद नहिं सुन्दर रूप को ॥६ ॥
मद नहिं जो विद्वान, मद नहिं तन में जोर को।
मद नहिं जो परधान, मद नहिं संपति कोष को ॥७ ॥
हूवो आतम ज्ञान, तज रागादि विभाव पर।
ताको ह्वै क्यों मान, जात्यादिक वसु अथिर को ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंदत हैं अरिहंत,जिन–मुनि जिन–सिद्धान्त को।
नमें न देख महंत, कुगुरु कुदेव कुधर्म को ॥९ ॥
कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि सेवकी।
परशंसा षट भेव, करैं न सम्यकवान है ॥१० ॥
प्रगटो ऐसो भाव, कियो अभाव मिथ्यात्व को।
बन्दत ताके पाँव, 'बुधजन' मन–वच–कायतैं ॥११ ॥

पांचवीं ढाल

तिर्यञ्च मनुज दोउ गति में, व्रत धारक श्रद्धा चित में।
सो अगलित नीर न पीवै, निशि भोजन तजत सदीवै ॥१ ॥
मुख वस्तु अभक्ष न लावै, जिन भक्ति त्रिकाल रचावै।
मन वच तन कपट निवारै, कृत कारित मोद संवारै ॥२ ॥
जैसी उपशमत कषाया, तैसा तिन त्याग कराया।
कोई सात व्यसन को त्यागै, कोई अणुव्रत में मन पागै ॥३ ॥
त्रस जीव कभी नहिं मारै, विरथा थावर न संहारै।
परहित बिन झूठ न बोले, मुख सांच बिना नहिं खोले ॥४ ॥
जल मृतिका बिन धन सबहू, बिन दिये न लेवे कबहू।
व्याही बनिता बिन नारी, लघु बहिन बड़ी महतारी ॥५ ॥
तृष्णा का जोर संकोचै, ज्यादा परिग्रह को मोचै।
दिश की मर्यादा लावै, बाहर नहि पाँव हिलावै ॥६ ॥
ताहू में गिरि पुर सरिता, नित राखत अघ तें डरता।
सब अनरथ दंड न करता, छिन–छिन निज धर्म सुमरता ॥७ ॥
द्रव्य क्षेत्र काल सुध भावै, समता सामायिक ध्यावै।
पोषह एकाकी हो है, निष्किंचन मुनि ज्यों सोहै ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह परिमाण विचारै, नित नेम भोग को धारै।
मुनि आवन बेला जावै, तब जोग अशन मुख लावै॥९॥
यों उत्तम किरिया करता, नित रहत पाप से डरता।
जब निकट मृत्यु निज जाने, तब ही सब ममता भाने॥१०॥
ऐसे पुरुषोत्तम केरा, 'बुधजन' चरणों का चेरा।
वे निश्चय सुरपद पावैं, थोरे दिन में शिव जावैं॥११॥

छठवीं ढाल

अथिर ध्याय पर्याय, भोग ते होय उदासी।
नित्य निरंजन जोति, आत्मा घट में भासी॥१॥
सुत दारादि बुलाय, सबनितैं मोह निवारा।
त्यागि शहर धन धाम, वास वन-बीच विचारा॥२॥
भूषण वसन उतार, नगन ह्वै आतम चीना।
गुरु ढिंग दीक्षा धार, सीस कचलोच जु कीना॥३॥
त्रस थावर का घात, त्याग मन-वच-तन लीना।
झूठ वचन परिहार, गहैं नहिं जल बिन दीना॥४॥
चेतन जड़ तिय भोग, तजो भव-भव दुखकारा।
अहि-कंचुकि ज्यों जान, चित्त तें परिग्रह डारा॥५॥
गुप्ति पालने काज, कपट मन-वच-तन नाहीं।
पांचों समिति संवार, परिषह सहि है आहीं॥६॥
छोड़ सकल जंजाल, आप कर आप आप में।
अपने हित को आप, करो ह्वै शुद्ध जाप में॥७॥
ऐसी निश्चल काय, ध्यान में मुनि जन केरी।
मानो पत्थर रची, किधों चित्राम उकेरी॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार घातिया नाश, ज्ञान में लोक निहारा।
दे जिनमत उपदेश, भव्य को दुख तें टारा ॥९ ॥
बहुरि अघाती तोरि, समय में शिव-पद पाया।
अलख अखंडित जोति, शुद्ध चेतन ठहराया ॥१० ॥
काल अनंतानंत, जैसे के तैसे रहिहैं।
अविनाशी अविकार, अचल अनुपम सुख लहिहैं ॥११ ॥
ऐसी भावन भाय, ऐसे जे कारज करिहैं।
ते ऐसे ही होय, दुष्ट करमन को हरिहैं ॥१२ ॥
जिनके उर विश्वास, वचन जिन-शासन नाहीं।
ते भोगातुर होय, सहैं दुख नरकन माहीं ॥१३ ॥
सुख दुख पूर्व विपाक, अरे मत कल्पै जीया।
कठिन कठिन ते मित्र, जन्म मानुष का लीया ॥१४ ॥
सो बिरथा मत खोय, जोय आपा पर भाई।
गई न लावैं फेरि, उदधि में डूबी राई ॥१५ ॥
भला नरक का वास, सहित समकित जो पाता।
बुरे बने जे देव, नृपति मिथ्यामत माता ॥१६ ॥
नहीं खरच धन होय, नहीं काहू से लरना।
नहीं दीनता होय, नहीं घर का परिहरना ॥१७ ॥
समकित सहज स्वभाव, आप का अनुभव करना।
या बिन जप तप वृथा, कष्ट के माहीं परना ॥१८ ॥
कोटि बात की बात, अरे 'बुधजन' उर धरना।
मन-वच-तन सुधि होय, गहो जिन-मत का शरना ॥१९ ॥
ठारा सौ पच्चास, अधिक नव संवत जानों।
तीज शुक्ल वैशाख, ढाल षट् शुभ उपजानों ॥२० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छहढाला

पण्डित दौलतरामकृत

मङ्गलाचरण

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥

पहली ढाल

(चौपाई)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार॥१॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि॥२॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार॥३॥
एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यौ-मर्‍यौ भर्‍यौ दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयौ, पवन प्रत्येक वनस्पति थयौ॥४॥
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‍यौ सही बहु पीर॥५॥
कबहुँ पंचेन्द्रिय पशु भयौ, मन बिन निपट अज्ञानी थयौ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर॥६॥
कबहुँ आप भयौ बलहीन, सबलनि करि खायौ अति दीन।
छेदन-भेदन भूख-पियास, भार-वहन हिम-आतप त्रास॥७॥
वध-बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‍यौ, घोर श्वभ्रसागर में पर्‍यौ॥८॥
तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहि तिसो।
तहाँ राध-श्रोणित वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह दाहिनी॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय॥१०॥
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय॥११॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहे, करम-जोगतैं नरगति लहे॥१२॥
जननी उदर वस्यौ नव मास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवै ओर॥१३॥
बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत रह्यौ।
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो॥१४॥
कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय-चाह-दावानल दह्यौ, मरत विलाप करत दुःख सह्यौ॥१५॥
जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै॥१६॥

दूसरी ढाल

(पद्धरि छन्द)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चर्ण वश, भ्रमत भरत दुःख जन्म-मर्ण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥१॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमांहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप॥२॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताको न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान॥३॥
मैं सुखी दुःखी मैं रङ्क राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥४॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान ॥६ ॥
रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान ॥७ ॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह ॥८ ॥
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥९ ॥
धारैं कुलिङ्ग लहि महतभाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल नाव।
जे राग-द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादियुत चिह्न चीन ॥ १० ॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥११ ॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अजान ॥१२ ॥
एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥१३ ॥
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध-विध देह-दाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन ॥१४ ॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग ॥१५ ॥

तीसरी ढाल

(नरेन्द्र/जोगीरासा छन्द)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यौ चहिये ॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई॥२॥
जीव-अजीव तत्त्व अरू आस्रव बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो॥३॥
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध सङ्ग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥४॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि तीनों शिवमगचारी॥
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥५॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै॥६॥
चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसू जाके हैं॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निस-दिन सो, व्यवहार काल परमानो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यों अजीव अब आस्त्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥८॥
ये ही आतम को दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये॥
शम-दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप बलतैं विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥९॥
सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अङ्गजुत धारो॥१०॥
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अङ्ग अरु दोष पचीसौं तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये॥११॥
जिन-वच में शङ्का न धार, वृष भव-सुख-वाँछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै॥
निज-गुण अरु पर औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सुदिढ़ावै॥१२॥
धर्मी सौं गौ-बच्छ प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै।
इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप कौ, मद न ज्ञान कौ, धन-बल कौ मद भानै॥१३॥
तपकौ मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यहि दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन-मुनि जिन-श्रुति बिन कुगुरादिक तिन्हैं न नमन करै है॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेही पै, गृह में रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥१५
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ़ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी॥
तीनलोक तिहुँकाल माँहि नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी॥१६॥
मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥१७॥

चौथी ढाल

(दोहा)

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान॥१॥

(रोला)

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ॥
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपकतैं होई॥२॥
तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माँही।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानै जिय स्वच्छा॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण॥४॥
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ॥५॥
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै॥
यह मानुष पर्याय, सुकुल सुनिबौ जिनवानी।
इह विधि गये न मिलैं, सुमणि ज्यौं उदधि समानी॥६॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखानो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो॥७॥
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जैहैं।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहे हैं॥
विषय चाह दव दाह, जगत जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै॥८॥
पुण्य-पाप फलमाहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ॥९॥
सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ॥१० ॥
जल मृत्तिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सो रहे विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै ॥११ ॥
ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निवारा ॥
काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश, होय अघ बनज कृषी तें ॥१२ ॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै ॥
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथदण्ड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै ॥१३ ॥
धरि उर समताभाव, सदा सामायिक करिये।
परब चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रौषध धरिये ॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै ॥१४ ॥
बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै ॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँतैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै ॥१५ ॥

पाँचवी ढाल

(चाल छन्द)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगनतैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥१ ॥
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव सुख ठानै ॥२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥३ ॥
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावे कोई ॥४ ॥
चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥५ ॥
शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥६ ॥
जल-पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुतरामा ॥७ ॥
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नव द्वारा बहैं घिनकारी, अस देह करैं किम यारी ॥८ ॥
जो योगन की चपलाई, तातैं है आस्रव भाई।
आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे ॥९ ॥
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥१० ॥
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥११ ॥
किनहू न कर्यो न धरै को, षट्द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक मांहि बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२ ॥
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥१३ ॥
जो भावमोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥१४ ॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥१५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठवीं ढाल

(हरिगीतिका)

षट्काय जीव न हननतैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठ-दश सहस विधि शील धर, चिद्ब्रह्म में नित रमि रहैं॥१॥
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशधातैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्य्यातैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्रतैं अमृत झरैं॥२॥
छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कै गहैं लखि कै धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं॥३॥
सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते॥
रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने॥४॥
समता सम्हारैं, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव की।
नित करैं, श्रुति-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव की॥
जिनक न न्हौन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकाशन करन॥५॥
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच न करत डरत परिषह, सों लगे निज-ध्यान में॥
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख कदा॥
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब॥७॥
जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज भाव को न्यारा किया॥
निजमाहिं निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यौ॥८॥
जहँ ध्यान-ध्याता-ध्येय को, न विकल्प वच-भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता, चेतना किरिया तहाँ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निर्मल दसा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनधा एकै लसा॥९॥
परमाण-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विषै॥
मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित्पिण्ड चण्ड अखण्ड सुगुणकरण्ड, च्युति पुनि कलनितैं॥१०॥
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यौ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यौ॥
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यौ।
सब लख्यौ केवलज्ञान करि, भविलोक कों शिवमग कह्यौ॥११॥
पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू बसैं।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं॥
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये॥१२॥
निजमांहि लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहिहैं अनन्तानन्त काल यथा तथा शिव परिणये॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया ॥१३॥
मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश-जल जग-मल हरैं॥
इमि जानि आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरौ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥१४॥
यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये॥
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो पद यहै क्यों दुःख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि दाव मत चूको यहै ॥१५॥

(दोहा)

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख।
कर्यौ तत्त्व-उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥१६॥
लघु-धि तथा प्रमादतैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढ़ो सदा जो पावो भव-कूल ॥१७॥

आत्मबोध

(दोहा)

परम जोति बन्दों सकल, दर्पण तुल्य त्रिकाल।
युगपत प्रतिबिम्बत जहाँ, सकल पदारथ-माल॥

(चौपाई)

जो निजरूप न जाने सही, परमातम सो जाने नहीं।
तातें प्रथम स्वरूपहि जान, जातें जानें पुरुष प्रधान ॥१॥
जो निज तत्त्वहि जाने नाहिं, तसु थिरता नहिं आतम माहिं।
सो तन चेतन भिन्न पिछान, कर न सके मोहित अज्ञान ॥२॥
निज पर भेद लखे नहिं जोय, आत्मलाभ ताको नहिं होय।
ता बिन निज प्रबोध अंकूर, प्रापति स्वप्न माहिं अति दूर ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तातें शिव अभिलाषी जेह, आतम निश्चय प्रथम करेह।
जो पर पर्यय रूप विकल्प, वर्जित चितगुण सहित अनल्प ॥४॥
सोहे त्रिविध आतमाराम, सर्व भूतथित निज गुणधाम।
बहिरातम अन्तर आतमा, परमातम जानो अनुपमा ॥५॥
जाकी देहादिक पर माँहि, आतमबुद्धि भरम निज छाँह।
सो जानो बहिरातम कूर, मोह नींद सोवे भरपूर ॥६॥
परभावन तें होय उदास, आप आप में रुचि है जास।
सो अन्तर आतम बुध कहे, जे भ्रम तम हर निजगुण लहे ॥७॥
निर्मल निकल शुद्ध निष्पन्न, सर्वकल्प वर्जित चैतन्य।
शुद्धातम परमातम सोय, ज्ञानमूर्ति भाषैं मुनिलोय ॥८॥

(प्रश्न)

लख के देहादिकतें भिन्न, शुद्ध अतीन्द्रिय चेतनचिह्न।
आतम तत्त्व अमूरत तास, कैसे करें ध्यान अभ्यास? ॥९॥

(उत्तर)

तजके बहिरातमता मित्त, अन्तरातमा होय सुचित।
ध्यावहु परमातम अति शुद्ध, अव्यय शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध ॥१०॥
तन चेतन को जाने एक, बहिरातम शठ रहित विवेक।
ज्ञानी जीव अनुभवे भिन्न, देहादिकतें निज चित चिन्न ॥११॥
आतम तत्त्व विमुख अत्यन्त, करण विषय चल परिणतिवंत।
बहिरातम अज्ञानी जीव, तन को आतम लखै सदीव ॥१२॥
सुर नर पशु नारक पर्याय, नामकर्म के उदय लहाय।
निज को सुन नर पशु नारकी, जाने मूढ़ अविद्या थकी ॥१३॥
स्वसंवेद्य निजरूप चिदंक, जो भाषों जिनवर निकलंक।
सो नहिं जानें अक्षातीत, सदा अमूरत देव पुनीत ॥१४॥
च्युत चेतन निज तन में जेम, माने सठ आपो कर प्रेम।
त्यों ही देख परायी देह, पर आतम मानें भ्रम गेह ॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम निजतन में निज जिय जान, परतन में पर जीव पिछान।
या ही बुद्धि ठगो संसार, जड़ में चेतन तत्त्व निहार॥१६॥
ताही में निज भिन्न अत्यन्त, पर सुत दारादिक बहु भन्त।
मानत मूढ़ तिनहि आपने, मोह-ज्वर व्याकुल मति घने॥१७॥
चेतन और अचेतन द्रव्य , तिन मानी के अपने सर्व।
विनसन उपजनादि पर रूप, निज ही के जानें भ्रम कूप॥१८॥
यह अज्ञान विषम ग्रह क्रूर, लगो अनादि जीव के भूर।
जातैं देहादिक को मूढ़, आप रूप जानें अतिरूढ़॥१९॥
जो तन में आतम बुधि अन्ध , सो ही रचैं देह सम्बन्ध।
चिद्‌गुण में आतम बुधि जोय, करत सो भिन्न देहतें सोय॥२०॥
तन में अहं बुद्धि ही जानें, बन्धु धनादि विकल्प सु घनें।
तिन को लख अपने सउ जीव, आप ठगाने सकल सदीव॥२१॥
आतम भाव देह में जोय, स्थिति भववृक्ष वर्धक सोय।
तातैं ध्यावहु अन्तर इष्ट, तज इन्द्रिय रज वाहिज दिष्ट॥२२॥
तातैं इन्द्रिय वश निज त्याग, मैं विषयन में कीनो राग।
सो मैं इन ही के परसङ्ग, जानों नहिं निज रूप अभङ्ग ॥२३॥
तज बाहिज दृग विषय अनिष्ट, अन्तरात्मा होय सुद्रिष्ट।
यो ही योग करे परकास, परम जोग निर्मल गुण राश॥२४॥
जो कछु रूप देखवे योग, सो मोतें पर बिन उपयोग।
ज्ञान रूप दीसत नहिं नैन, तो कासों में भाखों बैन॥२५॥
जो मैं पर की शिक्षा लेउँ, वा मैं पर को शिक्षा देउँ।
सो है यह भ्रम बुद्धि असार, मैं तो स्वयं बुद्धि अविकार॥२६॥
जो निज चिद्‌गुण ही को ग्रहे, निज तैं भिन्न न परगुण बहें।
सो मैं विज्ञानी अविकल्प, स्वसंवेद्य कैवल्य अनल्प॥२७॥
जो साँकल को सर्प पिछान, करे क्रिया भ्रम कोय अज्ञान।
तैसे मेरी पूरब क्रिया, देहादिक में निज भ्रम धिया॥२८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्यों सांकल में अहि बुधि नशै, भ्रमबिन क्रिया सकल तब लसैं।
त्यों देहादिक माहीं अबै, अहं बुद्धि विनशी मम सबैं ॥२९॥
लिंग पुरुष नारी पुन क्लीव, एक दोय बहु वचनन जीव।
जातैं मैं अवाच गुन धाम, ज्ञाता निजकर निज में राम ॥३०॥
मैं सोयो जाके बिन ज्ञान, जग्यो ततक्षण जाहि पिछान।
मो स्वरूप मम अक्षातीत, स्वसंवेद्य चैतन्य पुनीत ॥३१॥
परम ज्योति निज तत्त्व रसाल, जाहि विलोकत ही ततकाल।
विनशैं रागादिक अति घोर, तातैं अरि प्रिय कोऊ न मोर ॥३२॥
मो स्वरूप देखो नहिं जोय, सो जन मम अरि प्रिय नहिं होय।
जिहि स्वरूप देखो मम सही, सो भी शत्रु मित्र मो नहीं ॥३३॥
पूर्व अज्ञान क्रिया जे सबैं, नानाविध सो भासत अबैं।
इन्द्रजालवत मिथ्यारूप, जानो हम जिय चिह्न चिद्रूप ॥३४॥
शुद्ध प्रसिद्ध आत्मा जोय, ज्योति स्वरूप सनातन सोय।
सो ही मैं तातैं निज धाम, अवलोकों अच्युत निज राम ॥३५॥
बहिरातमता तज के वीर, अन्तर दृगतें ध्यावें धीर।
रहित कल्पना जाल विशुद्ध, परमातम ज्ञानी अविरुद्ध ॥३६॥
बन्ध मोक्ष ये दोई तत्त्व, है भ्रम अभ्रण कारण तत्त्व।
बन्ध जान पर सङ्गति दोष, भेद-ज्ञान तें उपजे मोक्ष ॥३७॥
चरन अलौकिक ज्ञानी तनों, अद्भुत कायै जात सुभनों।
अज्ञानी जिहि बाँधे कर्म, तहँ ज्ञानी साधे शिव शर्म ॥३८॥
जो भव-वन में भ्रमत अत्यन्त, मैं पूरब दुःख लहो अनन्त।
सो निज पर को भेद-विज्ञान, पाये बिन यह निश्चय जान ॥३९॥
जो मैं ज्ञान प्रदीपक सार, लोकालोक प्रकाशन हार।
तो क्यों जगवासी जन दीन, डूबे भव कदमि में हीन ॥४०॥
निज में निजकर आप स्वरूप, अनुभव करिये सदा अनूप।
तातें निज को जानन हेत, परमें विफल प्रयास समेत ॥४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो ही मैं, मैं सो ही शुद्ध, इम अभ्यासत सदा सुबुद्ध।
कर विकल्प वासना तास, पावे आप आप में वास ॥४२॥
करत अज्ञानी जहँ प्रीत, सो सो आपद-धाम समीत।
जा पद ते पुनि यह डर खाय, निजानन्द मन्दिर सो आय ॥४३॥
इन्द्रिय चपल चित्त को रोक, होय प्रसन्न अनुभवी लोक।
तत्क्षण स्वसंवेद्य चिद्रूप, भासैं सो परमेष्ठि स्वरूप ॥४४॥
जो सिद्धातम मैं हूँ सोय, जो मैं सो परमेश्वर होय।
मों को पर न उपासन जोग, पर कर मैं न उपासन जोग ॥४५॥
करण विषय हरि मुखतें खेंच, निज को निजकर बिन भ्रम पेंच।
मैं निज में थिर भयो अटल्ल, चिन्दानन्दमय विषैं असल्ल ॥४६॥
या प्रकार तनतें जो भिन्न, लखैं न भ्रम बिन चेतन चिह्न।
सो अति तीव्र कोटि तप करैं, तो भी तसु विधि बंध न झरैं ॥४७॥
जो आप पर भेद-विज्ञान, सुधा-पान आनन्दित वान।
देहजनित क्लेशनते सोय, तप में खेद खिन्न नहिं होय ॥४८॥
रागादिक कलंक को धोय, जाको चित अति निर्मल होय।
सो ही लखैं आपकों आप, अन्य हेतु है नाहिं कदापि ॥४९॥
तत्त्वरूप निर्विकल्प चित्त, सहित विकल्प अतत्त्व सुमित्त।
तातैं तत्त्वसिद्धि के अर्थ, निर्विकल्प चित करहु समर्थ ॥५०॥
जो निज चित्त अज्ञान समेत, सो नहिं निज अनुभव हेत।
सो ही जान वासना लीन, लखै परमपद आप प्रवीन ॥५१॥
जो मन होय मोह में मग्न, चंचल रागादिकतें भग्न।
मुनि सो मन निज में थाप, तत्क्षण हनें राग संताप ॥५२॥
मूरख प्रीति धाम तन जोय, तातें भिन्न सुबुद्धि ते होय।
चिदानन्द सागर में मग्न, करे राग संतति सब भग्न ॥५३॥
निज भ्रम ते उपजो दुःख जोय, सो सुज्ञान ही ते क्षय होय।
जो निज ज्ञान रहित जन दीन, ते तपहू तें करे न छीन ॥५४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बल रूपायु धनादिक तनी, प्राप्ती चहें अज्ञानी पनी।
ज्ञानी तिनके विरकत दशा, चाहत प्रगट आप में बसा ॥५५ ॥
पर में अहं बुद्धि कर रूढ़, निज को बाँधे निजच्युत मूढ़।
आप माहिं आप बुधि धार, ज्ञानी करहि बन्ध विध क्षार ॥५६ ॥
सहित त्रिलिंग देह मूर्तीक, ताहि अजान माने आत्मीक।
ज्ञानी पुनि माने निज रूप, लिंग सङ्ग वर्जित चिद्रूप ॥५७ ॥
अभ्यासे जानो पुन ठीक, निर्णय कियो तत्त्व आत्मीक।
सो अनादि भ्रमकारण पाय, मुनिहू के जु खलित हो जाय ॥५८ ॥
जो दिखाय सो चेतन नाहिं, चेतन नहिं आवे द्रग माहिं।
तातें विफल अन्य रागादि, ध्याऊँ मैं स्वरूप आल्हादि ॥५९ ॥
त्यजन ग्रहण बाहिज सठ करैं, ज्ञानी अन्तर तें अनुसरैं।
त्यजन ग्रहण बहिरन्तर दोय, शुद्धातम न करैं कछु सोय ॥६० ॥
वचन काय तें न्यारा जान, मन से करैं आत्म का ध्यान।
वचन देह से कारज और, करैं नहीं पुनि मन से दौर ॥६१ ॥
अज्ञानी जन को संसार, भासै सुख प्रतीत भण्डार।
तिनहि कहाँ सुख कहाँ विश्वास, भासे जिन पायौ निज बास ॥६२ ॥
निज विवेक बिन अन्य विचार, ज्ञानी करैं न छिन मन मार।
जो विवेकि कछु कारज करै, सो वच तन तें बिन आदरै ॥६३ ॥
अक्ष विषय मय जो मूर्तीक, सो स्वरूपते पर यह ठीक।
निजानन्द निर्भय चैतन्य, जोतिमई मम रूप न अन्य ॥६४ ॥
अन्तर दुःख बाहिज सुख तिन्हें, योगाभ्यास उद्यमी जने।
इनते उल्टी तिनकी चाल, जिन पायो निज योग रसाल ॥६५ ॥
सो जाने सोई उच्चरे, सोई सुने ध्यान तसु धरै।
जातैं होय भरम तम नाश, पावे आप आप में वास ॥६६ ॥
विषयन में कछु नाहीं सोय, जाते स्वहित जीव के होय।
तो पुनि प्रीति करैं तिन माहिं, अज्ञानी उर समता नाहिं ॥६७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाख्यो श्री जिन भाखो जेम, मूरख तत्त्व न जाने केम।
तातैं पर समझावन काज, उद्यम वृथा हमारे साज ॥६८॥
जो उपदेश नहीं मैं सोय, मो स्वरूप पर ग्राह्य न होय।
ताते पर संबोधन तनों, आग्रह वृथा हमारो भनो ॥६९॥
अज्ञानी अन्तर द्रग बिना, पर में पुष्ट होत निशदिना।
रहित बाह्य भ्रम ज्ञानी जीव, तुष्ट आप में आप सदीव ॥७०॥
पावत मन-वच-तन में धार, आत्मबुद्धि तावत संसार।
इनतैं भेदज्ञान जब करै, तब ही संसारार्णव तरै ॥७१॥
जीरन रक्त पुष्ट सुच जोय, वस्त्र होत जिमि पुरुष न होय।
त्यों जीर्णादि होत वपु रूप, नहिं पुन आतम चिद् गुन भूप ॥७२॥
चल भी अचल तुल्य भासंत, जाके ज्ञान माहिं अत्यन्त।
ज्ञान योग चलत बिन सोय, शिवपद पावैं निश्चल होय ॥७३॥
औदारिक तैजस कार्माण, इन त्रय लखैं रूप निज ज्ञान।
जोलों भिन्न न जानो सोय, तोलों बन्ध अभाव न होय ॥७४॥
पूरन गलन स्वभावी अणू, तिन बहु स्कंध रचित सब तनू।
ताहि अनादि भरम ते मूढ़, जाने तत्त्व न आगम गूढ़ ॥७५॥
नियत लहे मुनि सो शिव धाम, जाकी थिति ध्रुव आतमराम।
ताको मुक्ति न कबहूँ होय, जाको आतम थिति नहिं जोय ॥७६॥
मृदु कठोर थिर दीरघ थूल, जीरण शीरण लघु गुरु थूल
इम तन रूप लखैं सठ आप, लखत न आतम ज्ञानकलाप ॥७७॥
लौकिकजन सङ्ग ते बच कहे, चपल चित्र तहँ मनभ्रम वहे।
ताते ज्ञानीजन सर्वङ्ग, त्यागो लौकिकजन परसङ्ग ॥७८॥
नग्र कन्दर पुर मन्दिर बीच, निज-निज राज होय जन दीच।
ज्ञानी सर्व अवस्था विषैं, निज निवास निज ही में दीखैं ॥७९॥
देह माँहि जो आतम आन, तन सन्तति को कारण जान।
जो चिद्गुण में निजबुध सोय, तन संतति नाशन मल धोय ॥८०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निज कर निज को बंधन करै, निज ही निज को शिव सुख भरै।
तातैं आप आप को होय, रिपु गुरु अन्य नहीं पुन कोय ॥८१ ॥
जान आप ते न्यारी काय, तन ते भिन्न लखै चिदराय।
तब निसंक हो त्यागे अङ्ग, जैसे वस्त्र घिनावन रङ्ग ॥८२ ॥
अन्तरङ्ग निज रूप निहार, पुन शरीर को बाह्य विचार।
तिनके भेद-ज्ञान में मग्न, चिगैं सो निज निश्चय निज लग्न ॥८३ ॥
जिनने निकट लखो निज तत्त्व, प्रथम लखें ते जग के मित्त।
तातें जब शांतामृत चखै, लोष्ठ समान भाखै तब सबै ॥८४ ॥
तनते भिन्नहि आतमराम, जो यै सुनत कहत वसु जाम।
तो पैं तन ममत्व नहि तजैं, यावत भेद-ज्ञान नहि भजैं ॥८५ ॥
तन सो भिन्न जान निज रूप, ऐसे अनुभव करहू अनूप।
जैसे फेरहु स्वप्नमाहिं, तन में निजमति उपजे नाहिं ॥८६ ॥
क्रिया शुभाशुभ दोई अन्ध, कारण पुण्य-पाप विधि बन्ध।
तिन बिन निज परिणति शिव हेत, ताते त्यागो क्रिया सुचेत ॥८७ ॥
प्रथम असंयम त्याग हु बुद्ध, संयम चरण होय तब शुद्ध।
फिर स्वरूप कों पाय अनल्प, त्यागे संयम चरण विकल्प ॥८८ ॥
जात लिंग मुनि श्रावकद्वन्द, देहाश्रित वरते भ्रम इन्द।
तनु संतति भव ताते मुनी, द्रव्यलिंग में ममता धुनि ॥८९ ॥
पङ्गु अन्ध कन्ध आरूढ़, सनयन ताहि लखै जिमि मूढ़।
त्यों सठ आतम के संयोग, अङ्ग माहि जाने उपयोग ॥९० ॥
पुंगल नेत्र अन्ध के माहिं, लखे भेद ज्ञानी जिमि नाहिं।
त्यों ज्ञानी तन में निज ज्ञान, जाने नाहिं भिन्न पहिचान ॥९१ ॥
बहिरातम जन मोक्ष न लहै, जो पै जगैं पाठ श्रुत कहै।
ज्ञानी सुप्त तथा उन्मत्त, शिव पावे जाने जो तत्त्व ॥९२ ॥
मत्तोन्मत्त अवस्था बीच, भूले निज स्वरूप जिमि नीच।
त्यों ज्ञानी कहुँ भूलैं नाहिं, आपा सकल अवस्था माहिं ॥९३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप आप को सिद्ध स्वरूप, आराधै हुव सिद्ध अनूप।
बाती ज्यों दीपक को पाय, आपहि दीपरूप हो जाय ॥९४॥
आप आप ही को आराधि, होय परम आतम निरुपाधि।
घिसत बाँस आप को जेम, अग्निस्वरूप होय यह नेम ॥९५॥
ऐसे वचन अगोचर रूप, जो अनुभवैं परम गुण भूप।
पावैं अचल सिद्धपद सोय, जहँ ते फेर खलित नहिं होय ॥९६॥
जो यह आतम आपा माहिं, चाहे ज्ञान मात्र पर नाहिं।
तो बिन जतन परम पद धनी, ज्ञानी होय नियत हम मनी ॥९७॥
स्वप्ने में निज मरनो वृथा, माने मूढ़ भरमतें यथा।
त्यों जाग्रत निज माने नाश, निश्चय आप परम गुण राश ॥९८॥
अक्षातीत अगोचर बैन, मूरत बिन कल्पना न एन।
चिदानन्दमय जान सुजान, निज में कर निज सो गुणवान ॥९९॥
आगमज्ञानी शिव नहिं लहै, जो तन में आतम बुधि वहै।
आतम में आतम बुधि जास, तो श्रुत शून्य लहै शिव वास ॥१००॥
पराधीन सुख स्वाद विरक्त, जो तू होय स्वरूपासक्त।
तो तू ही अखण्ड सुखरूप, आप अनुभवैं चेतन भूप ॥१०१॥
जो अभ्यासैं सुख तें ज्ञान, दुःखकर सो नश जाय निदान।
दुःख कारण में तत्पर होय, तातें मुनि स्वरूप निज लोय ॥१०२॥

(गीता छन्द)

अखिल भुवन पदार्थ अब प्रकाशनैक प्रदीप है।
आनन्द सीमारूढ़ आप उपाधि के न समीप है॥
परम साधु-सुबुद्धि लखवे जोग्य का पर्यन्त है।
इम शुद्ध निजकर निज विलोकहु जो सदा जयवंत है॥१०३॥
यह ध्येय साधारण कहो, धर्म शुक्ल सुध्यान कों।
तिन शुद्ध स्वामि विशेष जानों देख सूत्र बखान कों॥
अधिकार शुद्धोपयोगरूप विचार यह निज हित भनों।
कछु 'भागचन्द' विचार के अनुसार ज्ञानार्णव तनों॥१०४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्मपंचासिका

(दोहा)

आठ कर्म के बन्ध तैं, बँधैं जीव भववास।
कर्म हरे सब गुण भरे, नमो सिद्धि सुखरास ॥१ ॥
जगतमाहिं चहुँगति विषैं जन्म-मरणवश जीव।
मुक्ति माहिं तिहुँकाल मैं, चेतन अमर सदीव ॥२ ॥
मोक्ष माहिं सेती कभी, जग मैं आवैं नाहिं।
जग के जीव सदीव ही, कर्म काट शिव जाहिं ॥३ ॥
पूर्व कर्म उद्योग तैं, जीव करैं परिणाम।
जैंसैं मदिरा पान तैं, करै गहल नर काम ॥४ ॥
तातैं बाँधै कर्म को, आठ भेद दुःखदाय।
जैसैं चिकने गात मैं, धूलिपुञ्ज जम जाय ॥५ ॥
फिर तिन कर्मन के उदय, करैं जीव बहु भाय।
फिर के बाँधै कर्म को, यह संसार सुभाय ॥६ ॥
शुभ भावन तैं पुण्य है, अशुभ भाव तैं पाप।
दुहूँ आछादित जीव सो, जान सकै नहिं आप ॥७ ॥
चेतन कर्म अनादि के, पावक काठ बखान।
छीर-नीर तिल-तेल, ज्यों खान कनक पाखान ॥८ ॥
लाल बँध्यो गठड़ी विषैं, भानु छिप्यो घन माहिं।
सिंह पींजरे मैं दियो, जोर चलै कछु नाहिं ॥९ ॥
नीर बुझावैं आग को, जलै टोकनी माहिं।
देह माहिं चेतन दुःखी, निज सुख पावै नाहि ॥१० ॥
यदपि देहसों छुटत है, अन्तर तन है सङ्ग।
ताहि ध्यान अग्नी दहै, तब शिव होय अभङ्ग ॥११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग रोष तैं आप ही, पडै जगत के माहिं।
ज्ञान भाव तैं शिव लहै, दूजा संगी नाहिं॥१२॥
जैसें काहू पुरुष के द्रव्य, गड्यो घर माहिं।
उदर भरैं कर भीख ही, व्योरा जानैं नाहिं॥१३॥
ता नरसों किनहीं कहीं, तू क्यों मांगै भीख?
तेरे घर मैं निधि गड़ी, दीनी उत्तम सीख॥१४॥
ताके वचन प्रतीत सों, वहै कियो मन माहिं।
खोद निकाले धन बिना, हाथ परे कछु नाहिं॥१५॥
त्यों अनादि को जीव कै, परजैं बुद्धि बखान।
मैं सुर नर पशु नारकी, मैं मूरख मतिमान॥१६॥
तासों सतगुरु कहत हैं, तुम चेतन अभिराम।
निश्चय मुक्तिसरूप हो, ये तेरे नहिं काम॥१७॥
काललब्धि परतीत सों, लखत आप मैं आप।
पूरण ज्ञान भये बिना, मिटैं न पुन अरु पाप॥१८॥
पाप कहत हैं पाप को, जीव सकल संसार।
पाप कहत हैं पुण्य को, ते विरले मतिधार॥१९॥
बन्दीखाने मैं परे, जातैं छूटैं नाहिं।
बिन उपाय उद्यम किये, त्यों ज्ञानी जग माहिं॥२०॥
साबुन ज्ञान विराग जल, कोरा कपड़ा जीव।
रजक दक्ष धोवै नहीं, विमल न होय सदीव॥२१॥
ज्ञान-पवन तप-अगन बिन, दहै मूस जिय हेम।
कोड वर्षलों राखिये, शुद्ध होय मन केम॥२२॥
दरब कर्म नौकर्म तैं, भाव कर्म तैं भिन्न।
विकलप नहीं सुबुद्धि कै, शुद्ध चेतना चिह्न॥२३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारौं नाही सिद्ध कै, तू चारों के माहिं।
चार विनासै मोक्ष है, और बात कछु नाहिं॥२४॥
ज्ञाता जीवन मुक्त है, एक देश यह बात।
ध्यान अग्नि-विन कर्म-वन, जलै न शिव किम जात॥२५॥
दर्पण काई अथिर जल, मुख दीसै नहिं कोय।
मन निर्मल थिर बिन भये, आप दरश क्यों होय॥२६॥
आदिनाथ केवल लह्यो, सहस वर्ष तप ठान।
सोई पायो भरतजी, एक मुहूरत ज्ञान॥२७॥
राग रोष संकल्प है, नय के भेद विकल्प।
रोष भाव मिट जाय जब, तब सुख होय अनल्प॥२८॥
राग विराग दु भेदसों, दोय रूप परिणाम।
रागी जग के भूमिया, वैरागी शिवधाम॥२९॥
एक भाव है हिरण के, भूख लगे तृण खाय।
एक भाव मंजार के, जीव खाय न अघाय॥३०॥
विविध भाव के जीव बहु, दीसत हैं जग माहिं।
एक कछू चाहै नहीं, एक तजैं कछु नाहिं॥३१॥
जगत अनादि अनन्त है, मुक्ति अनादि अनन्त।
जीव अनादि अनन्त है, कर्म दुविध सुन सन्त॥३२॥
सबके कर्म अनादि के, कर्म भव्य को अन्त।
कर्म अनन्त अभव्य के, तीनकाल भटकन्त॥३३॥
फरश बरन रस गन्ध स्वर, पांचों जानैं कोय।
बोलैं डोलैं कौन है, जो पूछै है सोय॥३४॥
जो जानैं सो जीव है, जो मानै सो जीव।
जो देखै सो जीव है, जीवै जीव सदीव॥३५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जातपना दो विध लसै, विषय -निर्विषय- भेद।
निरविषयी संवर लसैं, विषयी आस्त्रव वेद ॥३६ ॥
प्रथम जीव श्रद्धान सों, कर वैराग्य उपाय।
ज्ञान किये सों मोक्ष है, यही बात सुखदाय ॥३७ ॥
पुद्गल सों चेतन बँध्यो, यही कथन है हेय।
जीव बँध्यो निज भाव सों, यही कथन आदेय ॥३८ ॥
बन्ध लखैं निज और से, उद्यम करै न कोय।
आप बँध्यो निजसों समझ, त्याग करै शिव होय ॥३९ ॥
यथा भूप को देख कै, ठौर रीति को जान।
तब धन अभिलाषी पुरुष, सेवा करैं प्रधान ॥४० ॥
तथा जीव सरधानकर, जानैं गुण-परजाय।
सबै जु शिव-धन आशधर, समता सों मिल जाय ॥४१ ॥
तीन भेद व्यवहार सों, सर्व जीव सब ठाम।
श्री अरहत परमात्मा, निश्चय चेतनराम ॥४२ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्म रति, अहंबुद्धि सब ठौर।
हित अनहित सरधैं नहीं, मूढ़न में शिरमौर ॥४३ ॥
आप आप पर पर लखै, हेय उपादे ज्ञान।
अब तो देशव्रती महा-व्रती सबैं मतिज्ञान ॥४४ ॥
जा पद मैं यह पद लसै, दर्पन ज्यों अविकार।
सकल निकल परमात्मा, नित्य निरञ्जन सार ॥४५ ॥
बहिरातम के भाव तजि, अन्तर आतम होय।
परमातम ध्यावै सदा, परमातम सो होय ॥४६ ॥
बूँद उदधि मिलि होत दधि, बीती फरश प्रकाश।
त्यों परमातम होत है, परमातम अभ्यास ॥४७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब आगम को सार ज्यों, सब साधन को धेव।
जाको पूजैं इन्द्र सो, सो हम पायो देव ॥४८॥
सोहं सोहं नित जपै, पूजा आगमसार।
सतसंगति मैं बैठना, यहै करै व्यवहार ॥४९॥
अध्यातम पंचाशिका, माहिं कह्यो जो सार।
'द्यानत' ताहि लगे रहो, सब संसार असार ॥५०॥

गुरुशिष्य चतुर्दशी

(दोहा)

कहूँ दिव्यध्वनि शिष्य मुनि, आयो गुरु के पास।
पूज्य सुनहु इक बीनती, अचरज की अरदास ॥१॥
आज अचंभौ मैं सुन्यो, एक नगर के बीच।
राजा रिपु में छिप रह्यो, राज करें सब नीच ॥२॥
नीच सु राज्य करै जहाँ, तहाँ भूप बलहीन।
अपनो जोर चलै नहीं, उनही के आधीन ॥३॥
वे याकी मानें नहीं, यह वासों रसलीन।
सत्तर कोड़ाकोड़िलों, बन्दीखाने दीन ॥४॥
बन्दीवान समान नृप, कर राख्यो उहि ठौर।
वाको जोर चलैं नहीं, उनही के सिरमौर ॥५॥
वे जो आज्ञा देत हैं, सोइ करैं यह काम।
आप न जानें भूप मैं, ऐसो है चित भ्राम ॥६॥
उनकी वेरीसों रचे, तजि निज नारि निधान।
कहो स्वामि सो कौन वह, जिनको ऐसे ज्ञान ॥७॥
कौन देश, राजा कवन, को रिपु, को कुल नारि।
को दासी कहु कृपा करि, याको भेद विचारि ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु बोले समकित बिना, कोऊ पावै नाहिं।
सबै रिद्धि इक ठौर है, काया नगरी माहिं॥९॥
काया नगरी जीव नृप, अष्ट कर्म अति जोर।
भाव अज्ञान दासी रचे, पगे विषय की ओर॥१०॥
विषय बुद्धि जहाँ है नहीं, तहाँ सुमति की चाह।
जो सुमती सो कुल त्रिया, इहि याको निरवाह॥११॥
आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय।
आपा आपु न जानही, कहो आपु क्यों होय॥१२॥
आप न जानें आप को, कौन बतावन हार।
तबहि शिष्य समकित लह्यो, जान्यो सबहि विचार॥१३॥
इहि गुरु शिष्य चतुर्दशी, सुनहु सबै मन लाय।
कहै दास भगवंत को, समता के घर आय॥१४॥

प्रश्नोत्तर दोहा

प्रश्न- कौन वस्तु वपु मांहि है, कहँ आवैं कहँ जाय।
ज्ञानप्रकाश कहा लखैं, कौन ठौर ठहराय॥१॥
उत्तर- चिदानन्द वपु मांहि है, भ्रममहिं आवैं जाय।
ज्ञान प्रगट आपा लखैं, आप माहिं ठहराय॥२॥
प्रश्न- जाको खोजत जगतजन, कर कर नाना भेष।
ताहि बतावहु, है कहा, जाको नाम अलेष॥३॥
उत्तर- जग शोधन कछु और को, वह तो और न होय।
वह अलेख निरमेष मुनि, खोजन हारा सोय॥४॥
प्रश्न- उपजै विनसै थिर रहै, वह अविनाशी नाम।
भेद जुगति जग में लसैं, बसैं पिण्ड ब्रह्मण्ड॥५॥
उत्तर- उपजै बिनसे रूप जड़, वह चिद्रूप अखण्ड।
जोग जुगति जग में लसैं, बसैं पिण्ड ब्रह्मण्ड॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न- शब्द अगोचर वस्तु है, कछू कहौं अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहै सुजान ॥७ ॥
उत्तर- शब्द अगोचर कहत है, शब्द माहिं पुनि सोय।
स्याद्वाद शैली अगम, बिरला बूझै कोय ॥८ ॥
प्रश्न- वह अरूप है रूप में, दुरिकै कियो दुराव।
जैंसें पावक काठ में, प्रगटे होत लखाव ॥९ ॥
उत्तर- हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसे नाहिं।
है अनादि ज्यों खानि में, कञ्चन पाहन माहिं ॥१० ॥

ज्ञान-पच्चीसी

सुर-नर-तिरियग-योनि में, नरक-निगोद भ्रमन्त।
महामोह की नींद सों, सोये काल अनन्त ॥१ ॥
जैसें ज्वर के जोर सों, भोजन की रुचि जाय।
तैसें कुकरम के उदय, धर्म-वचन न सुहाय ॥२ ॥
लगैं भूख ज्वर के गए, रुचि सों लेय अहार।
अशुभ गये शुभ के जगे, जानैं धर्म विचार ॥३ ॥
जैंसें पवन झकोर तैं, जल में उठै तरंग।
त्यों मनसा चंचल भई, परिग्रह के परसंग ॥४ ॥
जहाँ पवन नहिं संचरै, तहाँ न जल-कल्लोल।
त्यों सब परिग्रह त्याग तैं, मनसा होय अडोल ॥५ ॥
ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय।
त्यों तुम ममतासों मड़े, मगन विषय-सुख पाय ॥६ ॥
नीम रसन परसैं नहीं, निर्विष तन जब होय।
मोह घटे ममता मिटैं, विषय न वांछै कोय ॥७ ॥
ज्यों सछिद्र नौका चढ़े बूड़हि अन्ध अदेख।
त्यों तुम भव-जल में परे, बिन विवेक धर भेख ॥८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहाँ अखण्डित गुन लगे, खेवट शुद्ध विचार।
आतम-रुचि-नौका चढ़े ,पावहु भव-जल पार ॥९ ॥
ज्यों अंकुश मानैं नहीं, महामत्त गजराज।
ज्यों मन तिसना में फिरैं, गिनै न काज अकाज ॥१० ॥
ज्यों नर दाव उपाय कैं, गहि आनैं गज साधि।
त्यों या मन बस करन कों, निर्मल ध्यान समाधि ॥११ ॥
तिमिर-रोगसों नैंन ज्यों,लखै और को और।
त्यों तुम संशय में परे, मिथ्यामति की दौर ॥१२ ॥
ज्यों औषध अञ्जन किये, तिमिर-रोग मिट जाय।
त्यों सतगुरु उपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥१३ ॥
जैंसे सब यादव जरे, द्वारावति की आगि।
त्यों माया में तुम परे, कहाँ जाहुगे भागि ॥१४ ॥
दीपायन सों ते बचे, जे तपसी निरग्रन्थ।
तजि माया समता गहो, यहै मुकति को पन्थ ॥१५ ॥
ज्यों कुधातु के फेट सों, घट-बढ़ कंचन कान्ति।
पाप-पुन्य कर त्यों भये, मूढ़ातम बहु भाँति ॥१६ ॥
कंचन निज गुन नहिं तजै, हीन बान के होत।
घट-घट अन्तर आतमा, सहज-सुभाव उदोत ॥१७ ॥
पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय।
त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्य-पाप-मल खोय ॥१८ ॥
पर्व राहु के ग्रहण सों, सूर-सोम छवि-छीन।
संगति पाय कुसाधु की, सज्जन होय मलीन ॥१९ ॥
निम्बादिक चन्दन करै, मलयाचल की बास।
दुर्जनतैं सज्जन भयें, रहत साधु के पास ॥२० ॥
जैसें ताल सदा भरैं, जल आवै चहुँ ओर।
तैसें आस्रव-द्वारसों, कर्म-बन्ध को जोर ॥२१ ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ज्यों जल आवत मूंदिये, सूखैं सरवर-पानि।
तैसें संवर के किये, कर्म-निर्जरा जानि ॥२२॥
ज्यों बूटी संयोग तैं, पारा मूर्छित होय।
त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतम-शक्ति समोय ॥२३॥
मेलि खटाई माँजिये, पारा परगटरूप।
शुक्लध्यान अभ्यास तैं, दर्शन-ज्ञान अनूप ॥२४॥
कहि उपदेश बनारसी, चेतन अब कछु चेत।
आप बुझावत आपको, उदय करन के हेत ॥२५॥

कर्त्ता-अकर्त्ता पचीसी

(दोहा)

कर्मन को कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय।
ता ईश्वर के चरन को, बन्दौं शीश नवाय ॥१॥
जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन।
जो करता सो भोगता, यहै न्याय को भौन ॥२॥
दुहूँ दोष तैं रहित है, ईश्वर ताको नाम।
मन वच शीस नवाइ कैं, करूँ ताहि परणाम ॥३॥
कर्मन को करता वहै, जापै ज्ञान न होय।
ईश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्ता ह्वै सोय ॥४॥
ज्ञानवंत ज्ञानहिं करै, अज्ञानी अज्ञान।
जो ज्ञाता कर्ता कहै, लगै दोष असमान ॥५॥
ज्ञानीपै जड़ता कहा, कर्ता ताको होय।
पण्डित हिये विचार कै, उत्तर दीजे सोय ॥६॥
अज्ञानी जड़तामयी, करै अज्ञान निशङ्क।
कर्ता भुगता जीव यह, यों भाखैं **भगवन्त ॥७॥**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वर की जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान।
जो इह नै कर्ता कहो, तो ह्वैं बात प्रमान॥८॥
अज्ञानी कर्ता कहै, तौ सब बने बनाव।
ज्ञानी ह्वैं जड़ता करै, यह तौ बने न न्याव॥९॥
ज्ञानी करता ज्ञान को, करैं न कहुँ अज्ञान।
अज्ञानी जड़ता करैं, यह तौ बात प्रमान॥१०॥
जो कर्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय।
सुख दुःख काको दीजिये, न्याय करहुँ बुध लोय॥११॥
नरकन में जिय डारिये, पकर पकरकें बाँह।
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह॥१२॥
ईश्वर की आज्ञा बिना, करत न कोऊ काम।
हिंसादिक उपदेश को, कर्ता कहिये राम॥१३॥
कर्ता अपने कर्म को, अज्ञानी निर्धार।
दोष देत जगदीश को, यह मिथ्या आचार॥१४॥
ईश्वर तौ निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं।
ईश्वर को कर्ता कहै, ते मूरख जग मांहि॥१५॥
ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीन लोक आभास।
सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास॥१६॥
जाके गुन तामें बसैं, नहीं और में होय।
सूधी दृष्टि निहार तैं, दोष न लागैं कोय॥१७॥
वीतराग बानी विमल, दोष रहित तिहुँ काल।
ताहि लखै नहिं मूढ़ जन, झूँठे गरु के बाल॥१८॥
गुरु अन्धे शिष्य अन्धकी, लखै न बाट कुबाट।
बिना चक्षु भटकत फिरै, खुलैं न हिये कपाट॥१९॥
जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्ता होय।
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय॥२०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्व कर्म पुद्गलमयी,कर्ता पुद्गल तास।
ज्ञानदृष्टि के होत ही, सूझे सब परकाश॥२१॥
जोलों जीव न जान ही, छहों काय के वीर।
तौलों रक्षा कौन की, कर है साहस धीर॥२२॥
जानत है सब जीव को, मानत आप समान।
रक्षा यातैं, करत है, सब में दरशन ज्ञान॥२३॥
अपने-अपने सहज के, कर्ता हैं सब दर्व।
यहै धर्म को मूल है,समझ लेहु जिय सर्व॥२४॥
'भैया' बात अपार है, कहै कहाँलों कोय।
थोरे ही में समझियो, ज्ञानवंत जो होय॥२५॥

सिद्ध चतुर्दशी

(दोहा)

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध।
परम ब्रह्म महिमा कहूँ, परम धरम गुण साध॥

(कवित्त)

आतम अनोपम है दीषैं राग द्वेष बिना,
देखो भव्य जीव! तुम आप में निहारकैं।
कर्म को न अंश कोऊ भर्म को न वंश कोऊ,
जाकी शुद्धताई में न और आप टार कैं॥१॥
जैसो शिव खेत बसै तेसो ब्रह्म इहाँ लसैं।
इहाँ उहाँ फेर नाहि देखिये विचार कैं।
जेई गुण सिद्ध मांहि तेई गुण ब्रह्म मांहि,
सिद्ध ब्रह्म फेर नाहिं निश्चय निरधार कैं॥२॥
सिद्ध के समान है विराजमान चिदानन्द,
ताही को निहार निजरूप मान लीजिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म को कलङ्क अङ्ग पंक ज्यों पखार हरयो,
धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये॥
थिरता के सुख को अभ्यास कीजे रैन दिना,
अनुभो के रस को सुधार भले पीजिये।
ज्ञान को प्रकाश भास मित्र की समान दीसै,
चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये॥३॥
भावकर्म नाम राग-द्वेष को बखान्यो जिन,
जाको करतार जीव भर्म सङ्ग मानिये।
द्रव्य कर्म नाम अष्ट कर्म को शरीर कह्यो,
ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भलै जानिये॥
नो करम संज्ञातैं शरीर तीन पावत हैं,
औदारिक वेक्रीय आहारक प्रमानिये।
अन्तरालसमै जो आहार बिना रहै जीव,
नो करम तहाँ नाहिं याही तैं बखानिये॥४॥

(सवैया तेईसा)

लोपहि कर्म हरै दुःख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो।
ज्ञान प्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो॥
चेतनरूप लखो निज मूरत, सूरत सिद्ध समान विचारो।
ज्ञान अनन्त वहै भगवन्त, वसै अरि पंकतिसों नित न्यारो॥५॥

(छप्पय छन्द)

त्रिविध कर्म तें भिन्न, भिन्न पररूप परसतैं।
विविध जगत के चिह्न, लखै निज ज्ञान दरसतैं॥
बसै आप थलमाहि, सिद्ध सम सिद्ध विराजहि।
प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सब छाजहि॥
इह विधि अनेक गुण ब्रह्ममहिं, चेतनता निर्मल लसै।
तस पद त्रिकाल वन्दत भविक, शुद्ध स्वभावहि नित बसैं॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट कर्म तैं रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर।
चिदानन्द भगवान, वसत तिहुँ लोक शीश पर॥
विलसत सुजसु अनन्त, सन्त ताको नित ध्यावहि।
वेदहि ताहि समान, आयु घट माहिं लखावहि॥
इम ध्यान करहि निर्मल निरखि, गुण अनन्त प्रगटहिं सरव।
तस पद त्रिकाल वन्दत भविक, शुद्ध सिद्ध आतम दरव॥७॥

ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भइ कर्म कषायें।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें।।
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचैं निज मानत।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अन्तर ठानत॥
सो अविनाशी अविचल दरब, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम।
निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, चिदानन्द चेतन धरम॥८॥

(कवित्त)

अरे मतवारे जीव, जिनमत वारे होहु;
जिनमत आन गहो, जिन मत छोरकैं।
धरम न ध्यान गहो, धरमन ध्यान गहो;
धरम स्वभाव लहो, शकति सुफोरकैं॥
परसों न नेह करो, परम सनेह करो;
प्रगट गुण गेह करो, मोह दल मोरकैं।
अष्टादश दोष हरो, अष्ट कर्म नाश करो;
अष्ट गुण भास करो, कहूँ कर जोर कैं॥९॥

वर्ण में न ज्ञान नहिं ज्ञान रस पंचन में,
फर्स में न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूँ गन्ध में।
रूप में न ज्ञान नहीं ज्ञान कहुँ ग्रन्थन में,
शब्द में न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बन्ध में॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तैं अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसैं,
तहाँ बसै ज्ञान शुद्ध चेतन के खन्ध में।
ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेव,
ज्ञानवंत पावै ताहि मूढ़ धावैं ध्वंध में॥१०॥

वीतराग बैन सो तो ऐसे विराजत है,
जाके परकाश निज भास पर लहिये।
सूझै षट दर्व सर्व गुण परजाय भेद,
देव,गुरु,ग्रन्थ पन्थ सत्य उर गहिये॥
करम को नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो,
ध्यान की हुतास अरि पंकति को दहिये।
खोल दृग देखि रूप अहो अविनाशी भूप,
सिद्ध की समान सब तोपैं रिद्ध कहिये॥११॥

राग की जु रीत सु तो बड़ी विपरीत कही,
दोष की जु बात सु तो महा दुःखदाह है।
इनही की संगतिसों कर्म बन्ध करै जीव,
इनही की संगतिसों नरक निपात है॥
इनही की संगतिसों बसिये निगोद बीच,
जाके दुःखदाह को न थाह कह्यौ जात है।
ये ही जगजाल के फिरावन को बड़े भूप,
इनही के त्यागे भवभ्रम न विलात है॥१२॥

(मात्रिक कवित्त)

असी चार आसन मुनिवर के, तामें मुक्ति होन के दोय।
पद्मासन खड्गासन कहिये, इन बिन मुक्ति होय नहि कोय॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान-दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्म को थान भ्रष्ट कर, शिव-संपति बिलसत है सोय ॥१३॥

(दोहा)

जैसो शिव खेतहि बसैं, तैसो या तनमाहिं।
निश्चयदृष्टि निहार तैं, फेर रंच कहूँ नाहिं ॥१४॥

अपूर्व अवसर

अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा ।टेक॥
यह अपूर्व अवसर मेरा कब आएगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ मैं।
सब प्रकार के मोहबन्ध को तोड़कर,
कब विचरूंगा महत् पुरुष के पन्थ में॥
भव्य दिगम्बर मुनि मुद्रा को पाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥१॥
पर भावों से उदासीनता ही रहे,
मात्र देह तो हो संयम हित साधना।
अन्य किसी कारण से अन्य न ग्राह्य हो,
हो न देह के प्रति ममत्व की भावना॥
यह वैराग्य हृदय में जब बस जाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥२॥
दर्शन मोह व्यतीत हो गया ज्ञान यह,
देह भिन्न है मैं तो चेतन शुद्ध हूँ।
चारित्र मोह विशेष क्षीण अनुभव करूं,
मैं तो शुद्ध स्वरूप ज्ञानघन बुद्ध हूँ॥
यह दृढ़ निश्चय अन्तस्तल में छाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मस्थिरता मन-वच काया योग की,
मुख्य रूप से रहे देह पर्यन्त हो।
कितने भी उपसर्ग घोर परिषह बने,
तो भी मेरी स्थिरता का ना अन्त हो॥
निज स्वभाव में हृदय कमल मुसकाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥४॥
संयम के हित होवे योग प्रवर्तना,
जिन आज्ञानुसार करूँ पुरुषार्थ मैं।
क्षण-क्षण घटते रहें विकल्प निमित्त के,
करूँ अन्त में निज स्वरूप चरितार्थ मैं॥
आत्मज्ञान ही मुझे मोक्ष पहुँचाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥५॥
पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं,
पंच प्रमाद न करूँ बनूँ न मलीन मैं।
द्रव्य क्षेत्र औ काल भाव प्रतिबन्ध बिन,
वीतलोभ बन विचरूं उदयाधीन मैं॥
सम्यक् दर्शन ज्ञानचरित्र निभाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥६॥
क्रोध भाव हो तो मैं नाशूँ क्रोध को,
मान भाव यदि हो तो रहूँ विनीत हो।
माया जागे तो माया को क्षय करूँ,
लोभ जगे सन्तोष भाव की जीत हो॥
चार कषायों में ना मन अटकाएगा।
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥७॥
नग्न दिगम्बर मुण्डभाव अस्नानता,
अदन्त धोवन आदि महान प्रसिद्ध हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केश रोम नख आदि अङ्ग शृङ्गारना,
द्रव्य-भाव संयममय मुनि ज्यों सिद्ध हैं॥
यह मनुष्य भव सफल अरे हो जाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥९॥
शत्रु मित्र के प्रति वर्तूं समदर्शिता,
मान अमान न छोड़ स्वयं स्वभाव का।
जन्म-मृत्यु पर हर्ष शोक कुछ हो नहीं,
बन्ध मोक्ष के प्रति वर्त्तूं समभाव को॥
उग्र निर्जरा द्वारा कर्म झराएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥१०॥
एकाकी विचरूं निर्जन शमशान में,
वन पर्वत में मिलें सिंह संयोग से।
आसन रहे अडोल न मन में क्षोभ हो,
परम मित्र मम जानूँ पाये योग से॥
तत्त्व भावना हृदय रात-दिल भाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥११॥
घोर तपश्चर्या से मन को खेदना,
नहीं सरस भोजन से मिले प्रसन्नता।
रजकण से लेकर वैमानिक ऋद्धि तक,
सब पुद्गल पर्याय रूप की भिन्नता॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध आत्मगुण गाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥१२॥
इस प्रकार चारित्र मोह को जीत लूँ,
आऊँ जहाँ अपूर्व करण का भाव हो।
श्रेणी क्षपक चढूँ निज में आरूढ़ हो,
नित्य निरंजन अतिशय शुद्ध स्वभाव हो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान सूर्य का विमल उजाला छाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा ॥१३॥
मोह स्वयंभूरमण उदधि को पार कर,
क्षीण मोह गुणस्थान निकट हो जाएगा।
वीतराग पूर्ण स्वरूप निज आत्म में,
केवल ज्ञान निधान प्रगट हो जाएगा।
रागादिक अष्टादश दोष मिटाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा ॥१४॥
चार घातिया कर्म नष्ट अब हो गए,
भव का बीज मिट इस भव से खो गए।
सर्व भाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता,
कृत कृत्य प्रभु वीर्य ज्ञान निज हो गए ॥
यह सर्वज्ञ स्वरूप मुझे मिल जाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा ॥१५॥
वेदनीय आदिक चउ कर्म रहे अभी,
जली हुई रस्सीवत छाया मात्र है।
देहायुष आधीन रहेंगे जब तलक,
आयु पूर्ण टूटता देह का पात्र है ॥
ज्ञान शिरोमणि परम शांत रस पाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा ॥१६॥
मन-वच-काया से कर्मों की वर्गणा,
छूटे जहाँ सकल पुद्‌गल सम्बन्ध सब।
यही अयोगी गुणस्थान हो जाएगा,
महा भाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध अब ॥
जन्म-मृत्यु से रहित अवस्था पाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा ॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा नहीं परमाणु मात्र का स्पर्श भी,
पूर्ण कलङ्क विहीन अडोल स्वरूप हो।
शुद्ध निरंजन चेतन मूर्ति अनन्य मय,
अगुरु लघु सु अमूर्त सहज पद रूप हो॥
अविचल अविकल स्वयं सिद्ध गुण गाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥१८॥
पूर्व प्रयोगादिक कारण के योग से,
ऊर्ध्व गमन हो सिद्धालय सुनिवास हो।
सादि अनन्त अनन्त समाधि सुखी सदा,
अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त प्रकाश हो॥
अविनाशी अधिकार परम पद पाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥१९॥
जो जाना सर्वज्ञ देव ने ज्ञान में,
उसे न तीर्थङ्कर की वाणी कह सकी।
अनुभव गोचर मात्र ज्ञान है यह अरे,
उस स्वरूप को किसकी वाणी कह सकी॥
सब कुछ स्वागत अनुभव से दरशाएगा,
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥२०॥
यही परम पद प्राप्त कर सकूँ ध्यान में,
मनन चिन्तवन आत्म मनोरथ रूप को।
तो यह निश्चय 'राजचन्द्र' मन में धरो,
प्रभु आज्ञा से पाऊँ स्वयं स्वरूप को॥
यही मार्ग जीवन को सफल बनाएगा,
समयसार का सार मुझे मिल जाएगा।
अपूर्व अवसर ऐसा कब प्रभु आएगा॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारहमासा वज्रदन्त

वन्दूँ मैं जिनन्द परमानन्द के कन्द,
जगवन्द्य विमलेन्दु जड़ ताप हरन कूँ.।
इन्द्र धरणिन्द्र गौतमादिक गणेन्द्र जाहि,
सेवै राव रंक भव सागर तरन कूँ ॥
निर्बन्ध निर्द्वन्द्व दीनबन्धु दया सिन्धु,
करैं उपदेश परमारथ करन कूँ ।
गावैं 'नैनसुखदास' वज्रदन्त बारहमास,
मेटो भगवन्त मेरे जन्म-मरन कूँ ॥१ ॥

(दोहा)

वज्रदन्त चक्रेश की, कथा सुनो मन लाय।
कर्म काट शिवपुर गये, बारह भावन भाय ॥२ ॥

(सवैया)

बैठे वज्रदन्त आय अपनी सभा लगाय,
ताके पास बैठे राय बत्तीस हजार हैं।
इन्द्र कैसे भोगसार राणी छाणवे हजार,
पुत्र एक सहस्र महान गुणगार हैं॥
जाके पुण्य प्रचण्ड से नए हैं बलवंत शत्रु,
हाथ जोड़ मान छोड़ सबै दरबार हैं।
ऐसो काल पाय माली लायो एक डाली तामें,
देखो अलि अम्बुज मरण भयकार है ॥३ ॥
अहो यह भोग महा पाप को संयोग देखो,
डाली में कमल तामें भौंरा प्राण हरे है।
नाशिका के हेतु भयो भोग में अचेत सारी,
रैन के कलाप में विलाप इन करे हैं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम तो पाँचों ही के भोगी भये जोगी नाहीं,
विषय कषायनि के जाल माहिं परे हैं।
जो न अब हित करूँ जाने कौन गति परूँ,
सुतन बुलाके यों वचन अनुसरे हैं ॥४॥
अहो सुत जग रीति देख के हमारी नीत,
भई है उदासी वनोवास अनुसरैंगे।
राज भार शीस धरो परजा का हित करो,
हम कर्म शत्रुन की फौजन सूँ लरेंगे॥
सुनत वचन तब कहत कुमार सब,
हम तो उगाल कूँ न अङ्गीकार करेंगे।
आप बुरो जान छोड़ो हमें जग जाल बोड़ो,
तुमरे ही संग महाव्रत हम धरेंगे॥५॥

(चौपाई)

सुत आषाढ़ आयो पावस काल, सिर पर गर्जत यम विकराल।
लेहु राज सुख करहुँ वीनती, हम वन जाय बड़ेन की रीति॥६॥

(गीता छन्द)

जाय तप के हेतु वन को भोग तज संयम धरैं।
तज ग्रन्थ सब, निर्ग्रन्थ हो संसार सागर से तरैं॥
यहि हमारे मन बसी तुम रहो धीरज धार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के॥७॥

(चौपाई)

पिता राज तुम कीनो बौन, ताहि ग्रहण हम समरथ कौन।
यह भौंरा भोगन की व्यथा, प्रगट करत कर-कङ्कन यथा॥८॥

(गीत छन्द)

यथा कर का कांगना सन्मुख प्रगट नजरा परे।
त्यों ही पिता भौंरा निरखि भवभोग से मन थरहरे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुमने तो वन के वास ही को सुक्ख अङ्गीकृत किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृप पद क्यों दिया ॥९ ॥

(चौपाई)

श्रावण पुत्र कठिन वनवास, जल थल शीत पवन के त्रास।
जो नहिं पले साधु आचार, तो मुनि भेष लजावे सार ॥१० ॥

(गीत छन्द)

लाजे श्री मुनि भेष तातैं देह को साधन करो।
सम्यक्तयुत व्रत पंच में तुम देशव्रत मन में धरो॥
हिंसा असत चोरी परिग्रह ब्रह्मचर्य सुधार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥११ ॥

(चौपाई)

पिता अङ्ग यह हमरो नाहीं, भूख-प्यास पुद्गल परछाई।
पाय परीषह कबहूँ नहिं भजै, धर संन्यास मरण तन तजैं ॥१२ ॥

(गीत छन्द)

संन्यास धर तनकूँ तजैं नहि डंस मसक से डरैं।
रहें नग्न तन वन खण्ड में जहाँ मेघ मूसल जल परै॥
तुम धन्य हो बड़भाग तज के राज तप उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥१३ ॥

(चौपाई)

भादों में सुत उपजे रोग, आवे याद महल के भोग।
जो प्रमाद बस आसन टले, तो न दयाव्रत तुमसे पले ॥१४ ॥

(गीत छन्द)

जब दयाव्रत नहिं पले तब उपहास जग में विस्तरे।
अर्हंत और निर्ग्रन्थ की कहो कौन फिर सरधा करे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तातैं करो मुनिदान-पूजा राज काज सम्भाल के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥१५॥

(चौपाई)

हम तज भोग चलेंगे साथ, मिटें रोग भव-भव के तात।
समता मन्दिर में पग धरैं, अनुभव अमृत सेवन करैं ॥१६॥

(गीत छन्द)

करें अनुभव पान आतम ध्यान वीणा कर धरें।
आलाप मेघ मल्हार सोहैं, सप्तभंगी स्वर भरें॥
धृग धृग पखावज भोग कूँ, सन्तोष मन में कर लिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी, हमें नृप पद क्यों दिया ॥१७॥

(चौपाई)

आसुज भोग तजे नहिं जाहिं, भोगी जीवन को डसि खाहिं।
मोह लहर जिय की सुध हरे, ग्यारह गुणथानक चढ़ गिरे ॥१८॥

(गीत छन्द)

गिरे थानक ग्यारवें से आय मिथ्या भू परे।
बिन भाव की थिरता जगत में चतुर्गति के दुख भरे॥
रहे द्रव्यलिङ्गी जगत में बिन ज्ञान पौरुष हार के।
कुल आपने की रीति चालो, राजनीति विचार के ॥१९॥

(चौपाई)

विषय विडार पिता तन कसें, गिर कन्दर निर्जन वन बसें।
महामंत्र को लखि परभाव, भोग भुजङ्ग न घालें घाव ॥२०॥

(गीत छन्द)

घालें न भोग भुजङ्ग तब क्यों मोह की लहरा चढ़े।
परमाद तज परमात्मा प्रकाश जिन आगम पढ़ें॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर काललब्धि उद्योत होय सुहोय यों मनथिर किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥२१ ॥

(चौपाई)

कार्तिक में सुत करें विहार, काँटे-काँकर चुभें अपार।
मारें दुष्ट खैंच के तीर, फाटे उर थरहरे शरीर ॥२२॥

(गीत छन्द)

थरहरे सगरी देह अपने हाथ काढ़त नहिं बनें।
नहिं और काहू से कहें तब देह की थिरता हनें॥
कोई खेंच बाँधे थम्भ से कोई खाय आंत निकार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥२३ ॥

(चौपाई)

पद-पद पुण्य धरा में चलें, काँटे पाप सकल दलमलें।
क्षमा ढाल तल धरें शरीर, विफल करें दुष्टन के तीर ॥२४॥

(गीत छन्द)

कर दुष्ट जन के तीर निष्फल दयाकुंजर पर चढ़े।
तुम संग समता खड्ग लेकर अष्टकर्मन से लड़ें॥
धनि धन्य यह दिनवार प्रभु तुम योग का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥२५ ॥

(चौपाई)

अगहन मुनि तटनी तट रहें, ग्रीष्म शैल शिखर दुख सहें।
पुनि जब आवत पावस काल, रहे साधुजन वन विकराल ॥२६॥

(गीत छन्द)

रहें वन विकराल में जहाँ सिंह श्याल सतावहीं।
कानों में बीछू बिल करें और व्याल तन लिपटावहीं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दे कष्ट प्रेत पिशाच आन अङ्गार पाथर डार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥२७॥

(चौपाई)

हे प्रभु बहुत बार दुःख सहे, बिना केवली जाय न कहे।
शीत उष्ण नर्कन के तात, करत याद कम्पे भव गात ॥२८॥

(गीत छन्द)

गात कम्पे नर्क से लहे शीत उष्ण अथाह ही।
जहाँ लाख योजन लोह पिण्ड सुहोय जल गल जाय ही॥
असिपत्र वन के दुख सहे परवस स्ववस तप ना किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥२९॥

(चौपाई)

पौष अर्थ अरु लेहु गयंद, चौरासी लख-लख सुखकन्द।
कोड़ि अठारह घोड़ा लेहु, लाख कोड़ि हल चलत गिनेहु ॥३०॥

(गीत छन्द)

लेहु हल लख कोड़ि षटखण्ड भूमि अरु नवनिधि बड़ी।
लो देश की ये विभूति हमरी राशि रत्नन की पड़ी॥
धर देहुँ सिर पर छत्र तुमरे नगर धोख उचारिके।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥३१॥

(चौपाई)

अहो कृपानिधि तुम परसाद, भोगे भोग सबै मरयाद।
अब न भोग की हमकूँ चाह, भोगन में भूले शिवराह ॥३२॥

(गीत छन्द)

राह भूले मुक्ति की बहु बार सुरगति संचरै।
जहाँ कल्पवृक्ष सुगंध सुन्दर अप्सरा मन को हरे॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदधि पी नहिं भया तिरपत ओस पी कै दिन जिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥३३॥

(चौपाई)

माघ सधैं न सुरन तैं सोय, भोग भूमियन तैं नहिं होय।
हर-हरि अरु प्रति हरि से वीर, संयम हेत धरें नहिं धीर ॥३४॥

(गीत छन्द)

संयम कूँ धीरज नहिं धरें नहिं टरे रण में युद्ध सूँ।
जो शत्रुगण गजराज कूँ दलमले पकर विरुद्ध सूँ॥
पुनि कोटि सिल मुद्गर समानी देय फेंक अपार के।
कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥३५॥

(चौपाई)

बंध योग उद्यम नहिं करैं, एतो तात कर्मफल भरें।
बाँधे पूरवभव गति जिसी, भुगतें जीव जगत में तिसी ॥३६॥

(गीत छन्द)

जीव भुगतें कर्म फल कहो कौन विधि संयम धरैं।
जिन बंध जैसा बाँधियो तैसा ही सुख-दुख सो भरैं॥
यो जान सबको बँध में निर्बंध का उद्यम किया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥३७॥

(चौपाई)

फागुन चाले शीतल वायु, थर-थर कम्पे सबकी काय।
तब ही बंध विदारण हार, त्यागें मूढ़ महाव्रत सार ॥३८॥

(गीत छन्द)

सार परिग्रह व्रत विसारें अग्नि चहुँदिशि जारहीं।
करें मूढ़ सीत वितीत दुर्गति गहें हाथ पसारहीं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो होय प्रेत पिशाच भूत रु ऊत शुभगति टार के।

कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥३९॥

(चौपाई)

हे मतिवन्त कहा तुम कही, प्रलय पवन की वेदन सही।
धारी मच्छ कच्छ की काय, सहे दुःख जलचर परजाय ॥४०॥

(गीत छन्द)

पाय पशु परजाय परबस रहे सींग बधाय के।
जहाँ रोम-रोम कम्पे मरे तन तरकाय के॥
फिर गेर चाम उबेर स्वान सिचना मिला श्रोणित पिया।

तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ॥४१॥

(चौपाई)

चैत लता मदनोदय होय, ऋतु बसन्त में फूले सोय।
तिनकी इष्ट गन्ध के जोर, जागे काम महाबल फोर ॥४२॥

(गीत छन्द)

फोर बल को काम जागै लेय मनपुर छीन ही।
फिर ज्ञान परम निधान हरि के करे तेरा तीन ही॥
इतके न उतके तब रहै गये कुगति दोऊ कर झारि के।

कुल आपने की रीति चालो राजनीति विचार के ॥४३॥

(चौपाई)

ऋतु बसन्त वन में नहिं रहें, भूमि पाषाण परीषह सहें।
जहाँ नहिं हरित काय अंकूर, उड़त निरन्तर अह-निशि धूर ॥४४॥

(गीत छन्द)

उड़े वन की धूरि निशि-दिन लगें कांकर आय के।
सुन शब्द प्रेत प्रचण्ड के काम जाय पलाय के॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत कहो अब कुछ और प्रभु भवभोग से मन काँपिया।
तुमरी समझ सोई समझ हमरी हमें नृपपद क्यों दिया ।।४५ ।।

(चौपाई)

मन वैशाख सुनत अरदास, चक्री मन उपज्यो विश्वास।
अब बोलन को नहीं ठौर, मैं कहूँ और पुत्र कहें और ।।४६ ।।

(गीत छन्द)

और अब कछु मैं कहूँ नहिं रीति जग की कीजिए।
एक बार हमसे राज लेके चाहे जिसको दीजिए ।।
पोता था एक षट्मास का अभिषेक कर राजा कियो।
पित संग संग जगजाल सेती निकस वन मारग लियो ।।४७ ।।

(चौपाई)

उठे वज्रदन्त चक्रेश, तीस सहस भूप तजि अलवेश।
एक हजार पुत्र बड़ भाग, साठ सहस्र सती जग त्याग ।।४८ ।।

(गीत छन्द)

त्याग जग कूँ ये चले सब भोग तज ममता हरी।
समभाव कर तिहुँलोक के जीवों से यों विनती करी ।।
अहो जेते जीव जग में क्षमा हम पर कीजिये।
हम जैन दीक्षा लेत हैं तुम बैर सब तज दीजिये ।।४९ ।।
बैर सबसे हम तजा अर्हन्त का शरणा लिया।
श्री सिद्ध साधु की शरण सर्वज्ञ के मत चित दिया ।।
यों भाष पिहितास्रव गुरुन ढिंग जैन दीक्षा आदरी।
कर लौंच तज के सोच सबने ध्यान में दृढ़ता धरी ।।५० ।।

(चौपाई)

जेठ मास लू ताती चले, सूखे सर कपिगण मद गलैं।
ग्रीष्मकाल शिखर के सीस, धरो आतापन योग मुनीश ।।५१ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(गीत छन्द)

धर योग आतापन सुगुरु तब शुक्लध्यान लगाइयो।
तिहुँलोक भानु समान केवलज्ञान तिन प्रगटाइयो॥
वज्रदन्त मुनीश जग तज धर्म के सन्मुख भये।
निज काज अरु पर काज करके समय में शिवपुर गये॥५२॥

(चौपाई)

सम्यक्त्वादि सुगुण आधार, भये निरंजन निर-आकार।
आवागमन तिलांजलि दई, सब जीवन की शुभगति भई॥५३॥

(गीत छन्द)

भई शुभगति सबन की निज शरण जिनपति की लई।
पुरुषार्थसिद्धि उपाय से परमारथ की सिद्धी भई॥
जो पढ़े बारामास भावन भाय चित हुलसाय के।
तिनके हों मंगल नित नये अरु विघ्न जाय पलायके॥५४॥

(दोहा)

नित-नित तब मंगल बढ़ें, पढ़ें जो यह गुणमाल।
सुरगन के सुख भोग कर, पावें मोक्ष रसाल॥५५॥

(सवैया)

दो हजार माहितें तिहत्तर घटाय अब
विक्रम को संवत विचार कै धरत हूँ।
अगहन असि त्रयोदशी मृगांकवार
अर्द्धनिशा माहिं याहि पूर्ण करत हूँ॥
इति श्री वज्रदन्त चक्रवर्ति को वृत्तान्त
रचि के पवित्र नैन आनन्द भरत हूँ॥
ज्ञानवन्त करो शुद्ध जान मेरी बालबुद्धि
दोष पै न रोष करो पायन परत हूँ॥५६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारह मासा (राजुल का)

(राग मरहरी झड़ी)

मैं लूँगी श्री अरहन्त, सिद्ध भगवन्त;
साधु, सिद्धान्त चार का शरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ॥टेक॥

आसाढ़ मास

(झड़ी)

सखि आया असाढ़ घनघोर भोर चहुँ ओर;
मचा रहे शोर, इन्हें समझावो।
मेरे प्रीतम की तुम,पवन परीक्षा लावो॥
हैं कहाँ मेरे भरतार,कहाँ गिरनार;
महाव्रत धार, बसे किस वन में।
क्यों बांध मोड़ दिया तोड़ क्या सोची मन में॥

(झर्वटें)

तू जा रे पपैया जा रे, प्रीतम को दे समझा रे।
रही नौ भव सङ्ग तुम्हारे, क्यों छोड़ दई मझधारे॥

(झड़ी)

क्यों बिना दोष, भये रोष, नहीं सन्तोष;
यही अफसोस, बात नहीं बूझी।
दिये जादों छप्पन कोड छोड़ क्या सूझी॥
मोहि राखो चरण मंझार, मेरे भरतार;
करो उद्धार, क्यों दे गये झुरना॥
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ॥मैं लूंगी. ॥

श्रावण मास

(झड़ी)

सखि श्रावण संवर करे, समन्दर भरे;
दिगम्बर धरे, जतन क्या करिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरे जी में ऐसी आवे महाव्रत धरिये॥
सब तजूं हार सिंगार, तजूं संसार;
क्यों भव-मंझार मैं जी भरमाऊँ।
फिर पराधीन तिरिया का जन्म नहीं पाऊँ॥

(झर्वटें)

सब सुन लो राज दुलारी, दुःख पड़ गया हम पर भारी।
तुम तज दो प्रीति हमारी, कर दो संयम को त्यारी॥

(झड़ी)

अब आ गया पावस काल, करो मत टाल;
भरे सब ताल महा जल बरसे।
बिन परसे श्री भगवान मेरा जी तरसे॥
मैं तज दई तीज सलोन, पलट गई पौन;
मेरा है कौन मुझे जग तरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥मैं लूंगी.॥

भादों मास

(झड़ी)

सखि भादों भरे तलाब मेरे,चित्त चाव;
करूंगी उछाव से सोलह कारण।
करूं दस लक्षण से व्रत के पाप निवारण॥
करूं रोट तीज उपवास, पंचमी अकास;
अष्टमी खास निशल्य मनाऊँ।
तप कर सुगन्ध दशमी कूं कर्म जराऊँ॥

(झर्वटें)

उन केवलज्ञान उपाया, जग का अन्धेर मिटाया।
जिसमें सब विश्व समाया, तन-धन सब अथिर बताया॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झड़ी)

है अस्थिर जगत सम्बन्ध, अरि मति मन्द;
जगत का धन्ध है धुन्ध पसारा।
मेरे प्रीतम ने सत जानके जगत बिसारा॥
मैं उनके चरण की चेरी, तू आज्ञा दे री;
सुनले मां मेरी, है एक दिन मरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥मैं लूंगी. ॥

अगहन मास

(झड़ी)

सखि अगहन ऐसी घड़ी उदय में पड़ी;
मैं रह गई खड़ी दरस नहीं पाये।
मैंने सुकृत के दिन विरथा यों ही गँवाये॥
नहिं मिले हमारे पिया, न जप तप किया;
न संयम लिया अटक रही गज में।
पड़ी काल–अनादि से पा की बेड़ी पग में॥

(झर्वटें)

मत भरियो मांग हमारी, मेरे शील को लागे गारी।
मत डारो अंजन प्यारी, मैं योगिन तुम संसारी॥
हुये कन्त हमारे जती, मैं उनकी सती;
पलट गई रती तो धर्म न खण्डू।
मैं अपने पिता के वंश को कैसे भण्डू॥
मैं महाशील सिंगार, अरी नथ तार;
गये भर्तार के सङ्ग आभरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥मैं लूंगी. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौस मास

(झड़ी)

सखि लगा महीना पौस, ये माया मोह,
जगत से द्रोह अरु प्रीत करावै।
हरे ज्ञानावरणी ज्ञान अदर्शन छावै॥
पर द्रव्य से ममता हरे, तो पूरी परै,
जु संवर करै तो अन्तर टूटै।
अरु उँच नीच कुल नाम की संज्ञा छूटै॥

(झर्वटें)

क्यों ओछी उमर धरावै, क्यों सम्पति को बिलखावैं।
क्यों पराधीन दुःख पावै, जो संयम में चित लावै॥

(झड़ी)

सखि क्यों कहलावे दीन, क्यों हो छवि छीन;
क्यों विद्याहीन मलीन कहावै।
क्यों नारी नपुंसक जन्म में कर्म नचावै॥
वे तजै शील श्रृङ्गार, रुलै संसार;
जिन्हें दरकार नरक में पड़ना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना ।।मैं लूंगी. ॥

माघ मास

(झड़ी)

सखि आ गया मास बसन्त, हमारे कन्त;
भये अरहंत वो केवल ज्ञानी।
उन महिमा शील कुशील की ऐसी बखानी॥
दिये सेठ सुदर्शन शूल, भई मखतूल;
वहाँ बरसे फूल हुई जयवाणी।
वे मुक्ति गये अरु भई कलङ्कित राणी॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झर्वटें)

कीचक ने मन ललचाया, द्रोपदी पर भाव धराया।
उसे भीम ने मार गिराया, उन किया तैसा फल पाया॥

(झड़ी)

फिर गह्या दुर्योधन चीर, हुई दिलगीर;
जुड़ गई भीर लाज अति आवै।
गये पाण्डु जुये में हार न पार बसावै॥
भये परगट शासन वीर, हरी सब पीर;
बधाई धीर पकर लिये चरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥ मैं लूंगी.॥

फाल्गुन मास

(झड़ी)

सखि आया फाग बड़ भाग, तो होरी त्याग;
अठांई लाग के मैना सुन्दर।
हरा श्रीपाल का कुष्ट कठोर उदम्बर॥
दिया धवल सेठ ने डार, उदधि की धार;
तो हो गये पार वे उस ही पल में।
अरु जा परणी गुणमाल न डूबे जल में॥

(झर्वटें)

मिली रैन मंजूषा प्यारी, जिन ध्वजा शील की धारी।
परी सेठ पै मार करारी, गया नर्क में पापाचारी॥

(झड़ी)

तुम लेखा द्रौपदी सती, दोष नहिं रती;
कहें दुर्मती पद्म के बन्धन।
हुआ धातकी खण्ड जरूर शील इस खण्डन॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन फूटे घड़े मंझार, दिया जल डार;
तो वे आधार थमा जल झरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना।।मैं लूंगी. ॥

चैत्र मास

(झड़ी)

सखि चैत्र में चिन्ता करे, न कारज सरे;
शील से टरे कर्म की रेखा।
मैंने शील से भील को होत जगतगुरु देखा॥
सखि शील से सुलसा तिरी, सुतारा फिरी;
खलासी करी श्री रघुनन्दन।
अरु मिली शील परताप पवन से अञ्जन॥

(झर्वटें)

रावण ने कुमत उपाई, फिर गया विभीषण भाई।
छिन में जा लङ्क ढहाई, कुछ भी नहिं पार बसाई॥

(झड़ी)

सीता सती अग्नि में पड़ी, तो उस ही घड़ी;
वह शीतल पड़ी, चढ़ी जल धारा।
खिल गये कमल भये गगन में जयजयकारा॥
पद पूजे इन्द्र धरेन्द्र भई शीतेन्द्र;
श्री जैनेन्द्र ने ऐसे बरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥ मैं लूंगी. ॥

बैसाख मास

(झड़ी)

सखि आई वैसाखी मेख, लई मैं देख;
ये ऊरध रेख पड़ी मेरे कर में।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरा हुआ जन्म यों उग्रसैन के घर में॥
नहिं लिखा करम में भोग, पड़ा है जोग;
करो मत सोग जाऊँ गिरनारी।
है मात-पिता अरु भ्रात से क्षमा हमारी॥

(झर्वटें)

मैं पुण्य प्रताप तुम्हारे, घर भोगे-भोग अपारे।
जो विधि के अंक हमारे, नहिं टरे किसी के टारे॥

(झड़ी)

मेरी सखी सहेली वीर, न हो दिलगीर;
धरो चित धीर मैं क्षमा कराऊँ।
मैं कुल को तुम्हारे कबहूँ न दाग लगाऊँ॥
वह ले आज्ञा उठ खड़ी, थी मङ्गल घड़ी;
वन में जा पड़ी सुगुरु के चरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥ मैं लूंगी.॥

जेठ मास

(झड़ी)

अजी पड़े जेठ की धूप, खड़े सब भूप;
वह कन्या रूप सती बड़ भागन।
कर सिद्धों को प्रणाम किया जग त्यागन॥
अजि त्यागे सब सिंगार, चूडियाँ तार;
कमण्डल धार कै लई पिछौवी।
अरु पहर कै साड़ी श्वेत उपाड़ी चौटी॥

(झर्वटें)

उन महा उग्र तप कीना, फिर अच्युतेन्द्र पद लीना।
है धन्य उन्हीं का जीना, नहीं विषयन में चित दीना॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(झड़ी)

अजी त्रिया वेद मिट गया, पाप कट गया;
पुण्य चढ़ गया बढ़ा पुरुषारथ।
करे धर्म अरथ फल भोग रुचे परमारथ।
वो स्वर्ग सम्पदा भुक्ति, जायगी मुक्ति;
जैन की उक्ति में निश्चय धरना।
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥ मैं लूंगी. ॥
जो पढ़े इसे नर नारि, बढ़े परिवार;
सकल संसार में महिमा पावें।
सुन सतियन शील कथान विघ्न मिट जावैं॥
नहिं रहे दुहागिन दुखी, होय सब सुखी;
मिटे बेरुखी, करें पति आदर।
वे होय जगत में महा सतियों की चादर॥

(झर्टवें)

मैं मानुष कुल में आया, अरु जाति जती कहलाया।
है कर्म उदय की माया, बिन संयम जन्म गवाया॥

(झड़ी)

है दिल्ली नगर सुवास, वतन है खास;
फाल्गुन मास अठाई आठैं।
हों उनके नित कल्याण जो लिख-लिख बाटें॥
अजी विक्रम अब्द उनीस, पै धर पैंतीस;
श्री जगदीश का ले लो शरणा।
कहैं दास नैन सुख दोष पै दृष्टि न धरना॥
निर्नेम नेम बिन हमें जगत क्या करना॥ मैं लूंगी. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारह मासा(सीता सती का)

बिन कारन स्वामी क्यों तजी, बिनवै जनक दुलारि ।।टेक ।।

१.आषाढ़ मास

आसाढ़ घुमडि आए बादरा, घन गरजे चहुँ ओर।
निर्जन बन मैं स्वामी तुम तजो, बैंठन कूँ नहिं ठौर ।।१ ।।
क्या हम सत गुरू निंदियौ, क्या दियौ सतियन दोष।
क्या हम सत संयम तज्यौ, किस कारन भए रोष ।।२ ।।
क्या पर पुरुष निहार के, पर भव कियौ है निदान।
क्या इस भव इच्छा करी, क्या मैं कियौ अभिमान ।।३ ।।
कटुक वचन स्वामी नहिं कहे, हिंसा करम न कीन।
परधन पर चित नहिं दियौ, क्यों मन भयो है मलीन ।।४ ।।

२.श्रावण मास

श्रावण तुम सङ्ग वन विषै, विपति सही भगवान।
पाय पयादी बन-बन मैं फिरी, तनिक राखी मोरी कान ।।१ ।।
स्वसुर दिसौठा जिस दिन तुम दियौ, कियौ भरत सरदार।
ता दिन विकल्प नहिं कियो, तजि संपति भई लार ।।२ ।।
जनक पिता की मैं हूँ लाड़ली मात विदेहा की बाल
भ्रात प्रभामण्डल बली, विपत भरूँ बेहाल ।।३ ।।
मात मन्दोदरी गर्भ से, जन्मी रावण गेह।
परभव करम सँयोग से, रावण कियौ है संदेह ।।४ ।।

३.भादौ मास

भादौं पण्डित पूछियो, पण्डित करी है विचार।
कन्या के कारण राजा तुम मरो, दीनीं तुरत बिसार ।।१ ।।
गाड़ धरि मन्जूष मैं, जनक नगर बन बीच।
हल जोतत किरसान के, लई करम ने खींच ।।२ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरण दिवो नहिं ता दिना, करम लिखे दुख एह।
करी नजर राजा जनक के, पाली पुत्र सन्देह ॥३॥
जनक स्वयम्वर जब कियो, लिए सब भूप बुलाय।
दरशन करि थारे बश भई पड़ी चरणविच आय ॥४॥

४. कुवार मास

क्वार मास फिर गए भूप सब, मो कारण कियौ जुद्ध।
बहुत बली मारे रणविषै, ठायौ धनुष प्रबुद्ध ॥१॥
खरदूषण के युद्ध में, आयौ रावण दौड़।
छलकर धोखा प्रभु कूँ दियौ, नाद बजायौ घनघोर ॥२॥
जल्दी पधारौ प्रभु मैं घिर गयौ, तुम जानी भगवान।
कष्ट पडयौ जी मेरे भ्रात पै, उपज्यौ मोह महान् ॥३॥
मोहि लकोई पात बटोर कै, करम लिखी कछु और।
आप पधारे अपने वीर पै, आ गयो रावण चोर ॥४॥
चील झपट्टा करि कै ले गयौ, मो कूँ अचक उठाय।
देखी नाथ जटायु ने, क्या तुम जानत नाहिं ॥५॥
झपट-झपट वाके सिर हुयौ, मुकुट खसोटयौ मूँछ उपारि।
मारि तमाचा डारौ भूमि मैं, पंछी खाईजी पछार ॥६॥
लछमन तुमहिं निहारि कै, बात कही करि गौर।
बिनहिं बुलाए आए भ्रात क्यों, है कछु कारन और ॥७॥
काहू छलिया नैं ये कछु छल कियौ, कै कछु कर्म चरित्र।
नाहिं पिछान्यौ जावै जुद्ध में, कौन है बैरी कौन है मित्र ॥८॥

५.कार्तिक मास

कार्तिक तुरत पठाइया, उलाट तुम्हैं थारे भ्रात।
बिना ही बुलायें आए आप क्यूं, शत्रु करेंगे उतपात ॥१॥
आएजी तुरत रक्षा करन कूँ, हम सें धरि प्रभु प्यार।
बिखरे ही पाए पत्ते बेल सब, खाई आप पछार ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भ्रात हटाई आकै मूर्छा, सकल शत्रु गण जीत।
परौ जटायु देख्यौ सिसकतौ, श्रावक धर्म पुनीत ॥३ ॥
जन्म सुधार्यो वाको आपनैं, मोबिन पायौ नहिं चैन।
डारी डारी ढूंढ़ी दोऊँ मिल बन विषै, रोय सुजाए तुम नैन ॥४ ॥
धीर बन्धाई लछमन भुजबली, बहुत करी थारी सेव।
विपट कटैगी प्रभु समता धरो, तदपि न माने थे तुम देव ॥५ ॥
ल्याऊँ काढ़ि पताल सें, ल्याऊँ पर्वत फोर।
खबर मिलै तो सब कुछ मैं करूँ, चीर बगाऊँ थारा चोर ॥६ ॥
फेर मिले जी प्रभु सुग्रीव सैं, साहसगति दियौ मारि।
पाय सुतारा ल्यायौ हनुमान कूँ, ढूढ़न भेज्यौ मोहि सकार ॥७ ॥

६. अगहन मास

अगहन खबर मंगाय कैं, मोढिग भेज्यौ तुम हनुमान।
कूदि समन्दर गयो गढ़ लंक में, भेजी अँगूठी तुम भगवान ॥१ ॥
तुम बिन बैठ रो रही बाग मैं, राम ही राम पुकार।
अन्न कियौ ना पानी मैं पियौ, परवश हुई थी लाचार ॥२ ॥
मुख धुलवायौ श्री हनुमान ने, तुमरी आज्ञा के परमान।
प्राण बचाए मेरे विपत मैं, करवायौ जलपान ॥३ ॥
तुरत ही भेज्यौ तुमरे चरण में चूड़ामणि दियौ तारि।
गाय फँसी है गाढ़ी गार में, खैंचि निकारौं जी भरतार ॥४ ॥

७.पौष मास

पौष चढ़ जी गढ़ लंक पैं, भारत कियौ भगवान।
गारत किये लाखों सूरमा, मारि कियौ घमसान ॥१ ॥
काट्यौ सिर लंकेश को, लक्ष्मी धर वर वीर।
कूद पड़े जी जोधा लङ्क मैं, लवण समुन्दर चीर ॥२ ॥
ल्याए तुरत छुड़ाय कै, अशरण शरण अधार।
इतनी करि ऐसी क्यों करी, घर से दई क्यों निकार ॥३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पग भारी जी गिर-गिर मैं पड़ूँ शरण सहाय न कोय।
अपनी कही ना मेरी तुम सुनी, बहुत अंदेशा है मोहि ॥४॥

८.माघ मास

माघ प्रभुजी पाला पड़ रहा, पौढन कूँ नहीं सेज।
ओढ़न कूँ नहीं काँवली, दई क्यों विपति में भेज ॥१॥
सिंह दहाडैं कूकैं भेड़ियो, मारें गज चिंघाड़।
थर-थर काँपैं थारी कामनी, स्यालन रही है दहाड़ ॥२।
नाचैं भूत पिशाच गए, रूण्डमुण्ड विकराल।
सनन-सनन सारा बन करै, काँटे चुभैं कराल ॥३॥
कित बैठूँ लेटूँ कित प्रभु पास खवास न कोय।
अन्न करूँ न पानी मैं पिऊँ, बालक कूँ दुःख होय ॥४॥
तुम सब जानों प्रभु मेरे हालकूँ, अष्टम वलि अवतार।
तुम सूरज मैं पट बीजनी, क्या समझाऊँ भरतार ॥५॥
समरथ हो प्रभू क्यों कसी, प्रगट कियों क्यों न दोष।
धोखा दे क्यो धक्का दियौ, आवै नहीं सन्तोष ॥६॥

९.फाल्गुन मास

फागन आई जी अठाइयाँ, अपने करम कूँ दे दोष।
ध्यान धर्यौ भगवान को, बैठि रही मन मोस ॥१॥
अरज करे प्रभु की हजूर मैं, ममता भाव निवार।
तुम ही पिता हो प्रभु तुम मात हो, तुम हो भ्रात हमार ॥२॥
निर्धन के प्रभु तुम धनी, निर्जन के हो परिवार।
इकवर राम मिलाइयो, दीजियो दोष उतार ॥३॥
तुम हो राजा प्रभु जी धरम के, हम कूँ लगायो परजा दोष।
शील में मेरे सब सन्से करें, राम रुसाये हो गये रोष ॥४॥
त्याग दिये है प्रभु हम रामजी, त्याग दियो है सब संसार।
गर्भवती हू कर्म संयोग से, इससे हुई हूँ लाचार ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस दिन प्रभु पल्ला पाक हो, मिले मोहि भरतार।
भरम मिटा के धारूँ धरम को, त्यागूँ सब संसार॥६॥
राम मनावैं तौ भी ना मनूँ, कर जाऊँ बन को विहार।
कर पै श्री रघुवीर के, चोटी धरूँगी उपाड॥७॥
भावें यों सती जी बैठी भावना, ध्यावें पद नवकार।
पाप घट्यो प्रगट्यो पुण्य फल, सुन लई तुरत पुकार॥८॥
पुण्डरीक पुर नगर को बज्रजंघ भूजाल।
आ गये पुण्य संजोग तें, गज पकड़न वाही काल॥९॥
ढूँढत गज पति बन विषै, भनक पड़ी वाके कान।
कोई सतवन्त रोवे बन विषैं, किन ये सताई जी अज्ञान॥१०॥
दोष लगायो कैंसे पूछिये, गज तजि उतरयो धीर।
विनय सहित दुःख पूछिये चल्यो, आवे जैंसे भैना के घर वीर॥११॥
तुम हो बहिन मेरी धर्म की, विपत कहों समझाय।
मात-पिता परिवार से, दूँगो बहन मिलाय॥१२॥
जनक पिता की हूँ मैं लाडली, भ्रात भामण्डल धीर।
स्वसुर हमारे दसरथ नृपबली, भर्ता सिरी रघुवीर॥१३॥
रावण हरि करि ले गयो दोष धरे संसार।
शील में मेरे सब संसे करें, दीनी राम निकार॥१४॥
सुनत कथा जी छाती थर हरी, टपकें असुबन धार।
हा हा रे कर्म तें ए क्यों कसी, कियों तुरत उपगार॥१५॥
देव धरम दिये बीच में, बहन बनाई तत्कार।
पुन्डरीकपुर ले गयो, करि के गज असवार॥१६॥
पुत्र भए दो लव कुश बली, शिवगामी अवतार।
बज्रजंघ रक्षा करी, पाली क्रिये हुशियार॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०.चेत्र मास

चैंत मास नारद मुनि मिलै, चरन पड़े दोऊ वीर।
राम लखन किसी सम्पदा, हूज्यो थारे घर वर वीर ॥१॥
पूछिये अपनी मात से, राम लखन माता कौन।
टस-टस लागे आँसू टपकने, मर्‍यो मन धर्‍यो मौन ॥२॥
नारद मुनि समझाइयैं, पिछले सकल वृतान्त।
सुनत उठे जोधा खड्ग ले, बैंठ विमाण तुरन्त ॥३॥
घेरि अजुध्या रण भेरी दई, काँपे सुरग पाताल।
सोच भयो श्री रघुवीर के, आये कौन अकाल ॥४॥
निकसे दोऊ भ्राता जुद्धकूँ, खूब मचाए घमसान।
राम लखन घबरा दिए, पटक्यों रथ काँटे बाण ॥५॥
हल मूसल ठाए राम ने, लछमन चक्र सम्भार।
सातबार फँक्यों तान के, वृथा गए सातों बार ॥६॥
हम हरिबल अक एकि घों, उपजो सोच अपार।
आग बबूला होके फिर लियो, चक्र प्रलय करतार ॥७॥
तब नारद आए भूमि में,राम लखन ढ़िंग जाय।
बात कही सब समझाय के,किस पैं कोपे रघुराय ॥८॥
पुत्र तुमारे दोऊ भुजबली, लव अंकुश बलवन्त।
मात-विपत सुनि कोपियो, भाष्यो सकल वृतन्त ॥९॥
भरि आई छाती श्री रघुवीर की,रनकूँ दियो है निवार।
आय परे सुत चरन में, लीने दोऊ पुचकारि ॥१०॥

११.बैशाख मास

मास बैंशाख बसन्त ऋतु, सुनि सीताजी की सार।
भाग पड़े हनुमद से बली, ल्याए करि मनुहार ॥१॥
बज्रजंघ आयो धूम से, ल्यायो सब परिवार।
राम कहें मैं आने दूँ नहीं, सीता दई मैं निकार ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो आवैं तो आवो इस तरह, कूदे अग्नि मझार।
देय परीक्षा अपने शील को, होवे मेरी पटनार॥३॥
सीता एहि पन धारियो, होवे कुण्ड तैयार।
अगन जलावो देरी मत करो, सो जोजन विस्तार॥४॥
साड़ी कसि त्यारी करी, अंग ढको बड़ भाग।
कुण्ड खुदायों मन भावतो, चेतन कर दई आग॥५॥
जाय चढ़ी ऊँचे दमदमे, देखे देव अपार।
सत मूरत सूरत सोहनी, मन में हरष अपार॥६॥
देखें सुरगों के देवता, देखैं भवन पतीस।
चन्द सूरज देखें ज्योंतीषी, देखें भूत पतीस॥७॥
देखें सब विद्याधरा, देखें गण गन्धर्व।
क मर कसैं फौजें आ पड़ी देखें राजा सर्व॥८॥
डीग अगन उठी गगन लों, तड़ तडाट भयो घोर।
कहत प्रजा श्रीराम से, क्यों प्रभु भये हो कठोर॥९॥
बज्र बचैं ना ऐसी अगन मैं,फाटे धरणि पताल।
पर्वत फटि मठ गिर पड़े, हे प्रभु कीजिए टाल॥१०॥
राम खड्ग सूत्यो हाथ में, मत कोई कहो जी बनाय।
आज्ञा माने मेरी जानकी,देवे भरम मिटाय॥११॥
हुक्म दिये रघुवीर ने, शील परीक्षा देय।
नातर क्यों आई तू यहाँ, परजा करे है सन्देह॥१२॥
पंच परम गुरु बन्दि के, करि पति कूँ परिणाम।
छिमा ही कराई सब जीव सौ, देखे लछमन राम॥१३॥
पुत्र जुगल छोड़े रोवते, सोहे शची समान।
हरष भरी सतवंती महा, बोली बचन महान॥१४॥
जो पर पुरूष निहारि के, मैं कछु किये है कुभाव।
भस्म अग्नि मोहि कीजिये, नातर जल होय जाय॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२.जेठ मास

जेठ तपैं सुरज आकरै, नीचैं अग्नि प्रचण्ड।
आस-पास जल-थल क्यार सब सूकि गए बहु बनखण्ड॥१॥
कूद पड़ी जलती डीग में, शान्ति भई ततकाल।
उभरे कमल अकाश लों, लीनी अधर सहार॥२॥
जल लहरावे बोले हंसनी, कर रही मीन कल्लोल।
छत्र फिरै जी उसके सीस पे, इन्द्र चवर रहै ढोल॥३॥
शीतल मन्द सुगन्ध जुत, मीठी-मीठी चले जी बयार।
बरषैं मनु अमृत झड़ी, देव करें जैं-जैकार॥४॥
धन्य सती धन सतवन्ती, धन-धन धीरज एह।
धिक्-धिक् हम उनकों करे, जिनके मन सन्देह॥५॥
सीता भावे मनमें भावना, यह संसार अनित्य।
धर्म बिना तीनों लोक में, शरण सहाई ना मित्र॥६॥
उलट-पुलट चाले हटरसा ये संसारी चक्र।
एक अकेला भटके आतमा, क्या पशु-पंक्षी अरू क्या शक्र॥७॥
अन कोई जग में आपना, अन हम काहू के मीत।
अशुचि अपावन तन विषैं, करम करे विपरीत॥८॥
संवर जल बिन ना बुझे, तृष्णा अगन प्रचण्ड।
कर्म खपाये बिन ना खपे, भटके सब ब्रह्मण्ड॥९॥
दुर्लभ बोध जगत में, दुर्लभ श्री जिनधर्म।
दुर्लभ स्वपर विचार है, कर्म न डारो भर्म॥१०॥
पर वश भोगी भारी वेदना, स्ववश सही नहिं रंच।
सास्वत सुख जासैं पावती, लई करम ने बन्च॥११॥
अब मैं सब वेदना सही, कीनी धरम सहाय।
परतिज्ञा पूरी मैं करूँ, मोह महा दुःख दाय॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राम कहें प्यारी चल धरूँ, ल्या भुज में भुज डारि।
पाड़ि शिखा कर पैं धरि दई, त्यागौ हम संसार ॥१३॥
तुम त्यागी निरदोष कूँ, हम त्यागे लख दोस।
करके छिमा मैं संजम लियौ, करियौ मत अफसोस ॥१४॥
गई सती जी बन खण्ड कू भई अरजिका धीर।
उग्र-उग्र तप वो करे, सब दुःख सहे शरीर ॥१५॥
पूरी करि परजाय कूँ, अच्युत सुरग मंझार।
इन्द्र भए जी पुन्य संजोग से, भोगे सुक्ख अपार॥
बिन कारण स्वामी क्यों तजी, बिनवै जनक दुलारी ॥१६॥

उपसंहार

पढ़ियो भाई भावसों, गावो बाल गोपाल॥
भावोजी धरम की ही भावना, सिर पर गरजत काल ॥१॥
शील महातम मैं कह्या, या सम धरम न कोय।
शील रतन मोटा रतन, जाते जग यश होय ॥२॥
पर भव में सुख सम्पदा, इन्द्रादिक पद पाय।
काटि करम शिव सुन्दरि वरे, जन्म-मरण छुटि जाय ॥३॥
वंश बढ़े सब संकट कटे, सोग वियोग न कोय।
रोग मिटे जो सेवो संतजन, पाप सकल गेरे धोय ॥४॥
नैनानन्द प्रबन्ध यह, दया सिन्धु सुतहेत।
गायो ध्याय जिनेन्द्र कूँ, पद्मपुराण उपेत ॥५॥
संवत विक्रम भूपको, नवशत एक हजार।
तापर षट् चालीस धर (१९४६) लीज्यो सुघड़ संभाल ॥६॥
माघ शुक्ल पून्यो के दिनां, पूरे किए बारह मास।
दया-सिन्धु जिन धर्म कूँ, कीज्यौ पुत्र प्रकाश ॥७॥
मत पड़ियो बेटा कुपन्थ में, तजियो मत जिन धर्म।
कर लीज्यो बेटा नरभव को सफल, रख लीज्यो मेरी शर्म ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मचिन्तन की घड़ी है।

समझ धर उर कहत गुरुवर, आत्मचिन्तन की घड़ी है।
भव उदधि तन अथिर नौका, बीच मँझधारा पड़ी है ।।टेक ।।
आत्म से है पृथक् तन-धन, सोच रे मन कर रहा क्या ?
लखि अवस्था कर्म-जड़ की, बोल उनसे उर रहा क्या ?
ज्ञान-दर्शन चेतना सम, और जग में कौन है रे ?
दे सके दुख जो तुझे वह, शक्ति ऐसी कौन है रे ?
कर्म सुख-दुख दे रहे हैं, मान्यता ऐसी करी है।
चेत चेतन प्राप्त अवसर, आत्मचिन्तन की घड़ी है ।।१ ।।
जिस समय हो आत्मदृष्टि, कर्म थर थर काँपते हैं।
भाव की एकाग्रता लखि, छोड़ खुद ही भागते हैं ।।
ले समझ से काम या फिर चतुर्गति ही में विचर ले।
मोक्ष अरु संसार क्या है, फैसला खुद ही समझ ले ।।
दूर कर दुविधा हृदय से, फिर कहाँ धोखा-धड़ी है।
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म चिन्तन की घड़ी है ।।२ ।।
कुन्दकुन्दाचार्य गुरुवर, यह सदा ही कह रहे हैं।
समझना खुद ही पड़ेगा, भाव तेरे बह रहे हैं ।।
शुभ क्रिया को धर्म माना, भव इसी से धर रहा है।
है न पर से भाव तेरा, भाव खुद ही कर रहा है ।।
है निमित्त पर दृष्टि तेरी, बान ही ऐसी पड़ी है।
चेत-चेतन प्राप्त अवसर, आत्म-चिन्तन की घड़ी है ।।३ ।।
भाव की एकाग्रता रुचि, लीनता पुरुषार्थ कर ले।
मुक्ति-बन्धन रूप क्या है, बस इसी का अर्थ कर ले ।।
भिन्न हूँ पर से सदा मैं, इस मान्यता में लीन हो जा।
द्रव्य-गुण-पर्याय ध्रुवता, आत्म सुख चिर नींद सो जा ।।
आत्म गुणधरलाल अनुपम, शुद्ध रत्नत्रय जड़ी है।
समझ उर धर कहत गुरुवर, आत्म-चिन्तन की घड़ी है ।।४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु वंदना

वन्दौं दिगम्बर गुरु-चरन, जग-तरन-तारन जान।
जे भरम-भारी रोग को हैं, राजवैद्य महान॥
जिनके अनुग्रह बिन कभी, नहिं कटै कर्म-जंजीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥१॥
यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार।
ये भोग विष-पकवान से, इह भांति सोच-विचार॥
तप विरचि श्री मुनि वन बसे, सब छांडि परिग्रह भीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥२॥
जे काँच-कञ्चन सम गिनहिं, अरि-मित्र एक सरूप।
निन्दा-बड़ाई सारिखी, वन-खण्ड शहर अनूप॥
सुख-दुःख जीवन-मरन में, नहिं खुशी, नहिं दिलगीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥३॥
जे बाह्य परवत वन बसैं, गिरि-गुफा-महल मनोग।
सिल-सेज समता-सहचरी, शशि-किरन-दीपक जोग॥
मृग-मित्र, भोजन तप-मई, विज्ञान-निरमल नीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥४॥
सूखहिं सरोवर जल भरे, सूखहिं तरङ्गिनि तोय।
बाटहिं बटोही ना चलै, जहँ घाम-गरमी होय॥
तिहुँकाल मुनिवर तप तपहिं, गिरि-शिखर ठाड़े धीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥५॥
घनघोर गरजहिं घन-घटा, जल परहि पावस-काल।
चहुँ ओर चमकहिं बीजुरी, अति चलै सीरी ब्याल॥
तरु-हेठ तिष्ठहिं तब जती, एकान्त अचल शरीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥६॥
जब शीत मास तुषारसों, दाहै सकल बन-राय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब जमैं पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय॥
तब नगन निवसैं चौहटैं, अथवा नदी के तीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥७॥
कर जोर 'भूधर' बीनवै, कब मिलहिं वे मुनिराज।
यह आश मन की कब फलै, मम सरहिं सगरे काज॥
संसार-विषम-विदेश में, जे बिना कारण वीर।
ते साधु मेरे उर बसहु, मम हरहु पातक-पीर॥८॥

गुरु स्तुति

ते गुरु मेरे मन बसो जे भवजलधि जिहाज।
आप तिरहिं पर तारहिं, ऐसे श्री ऋषिराज॥ ते गुरु.॥
मोह महारिपु जानिकैं, छाड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन वसे, आतम शुद्धविचार॥ ते गुरु.॥
रोग उरग-बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान॥ ते गुरु.॥
रतनत्रयनिधि उर धरैं, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल।
मार्‍यो कामखवीस को, स्वामी परम दयाल॥ ते गुरु.॥
पंच महाव्रत आदरें पांचों समिति समेत।
तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पदहेत॥ ते गुरु.॥
धर्म धरैं दशलाछनी, भावैं भावन सार।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन-भण्डार॥ ते गुरु.॥
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर॥ ते गुरु.॥
पावस रैन डरावनी, बरसै जलधरधार।
तरुतल निवसैं तब यती, बाजै झंझा ब्यार॥ ते गुरु.॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीत पडै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय।
तालतरङ्गनि के तटैं, ठाडे ध्यान लगाय॥ ते गुरु. ॥
इहि विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों काल मँझार।
लागे सहज सरूप में, तनसौं ममत निवार॥ ते गुरु. ॥
पूरब भोग न चिंतवैं, आगम वाँछैं नाहिं।
चहुँगति के दु:खसों डरैं, सुरति लगी शिवमाहिं॥ ते गुरु. ॥
रंग महल में पोढ़ते, कोमल सेज विछाय।
ते पच्छिम निशिभूमि में, सोवें संवरि काय॥ ते गुरु. ॥
गजचढ़ि चलते गरवसों, सेना सजि चतुरङ्ग।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अङ्ग॥ ते गुरु. ॥
वे गुरू चरण जहाँ धरैं, जग मैं तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' मांगे एह॥ ते गुरु. ॥

उपादान-निमित्त संवाद

पाद प्रणमि जिनदेव के, एक उक्ति उपजाय।
उपादान अरु निमित्त को, कहूँ संवाद बनाय॥१॥
पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम ?
कहो निमित्त कहिये कहा, कब कै है इह ठाम॥२॥
उपादान निज शक्ति है, जिय को मूल स्वभाव।
है निमित्त परयोग तैं, बन्यौ अनादि बनाव॥३॥
निमित्त कहे मोकों सबै, जानत है जगलोय।
है निमित्त परयोगतैं, बन्यो अनादि बनाव॥४॥
उपादान कहे रे निमित्त! तू कहा करै गुमान।
मोकों जानें जीव वे, जो हैं सम्यक्वान॥५॥
कहैं जीव सब जगत के, जो निमित्त सोई होय।
उपादान की बात को, पूछे नाहीं कोय॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपादान बिन निमित्त तू, कर न सके इक काज।
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज ॥७॥
देव-जिनेश्वर गुरु-यती, अरु जिन-आगमसार।
इह निमित्त तैं जीव सब, पावत हैं भव-पार ॥८॥
यह निमित्त इह जीव को, मिल्यौ अनन्ती बार।
उपादान पलट्यौ नहीं, तो भटक्यौ संसार ॥९॥
कै केवलि कै साधु के निकट भव्य जो होय।
सो क्षायिक सम्यक् लहै, यह निमित्त बल जोय ॥१०॥
केवलि अरु मुनिराज के, पास रहे बहु लोय।
पै जाको सुलट्यौ धनी, क्षायिक ताको होय ॥११॥
हिंसादिक पापन किये, जीव नरक में जाहिं।
जो निमित्त नहीं काम को, तो इम काहे कहाहिं ॥१२॥
हिंसा में उपयोग जहाँ, रहे ब्रह्म का राच।
तेई नरक में जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥१३॥
दया-दान-पूजा किये, जीव सुखी जग होय।
जो निमित्त झूठौ कहौ, यह क्यों माने लोय ॥१४॥
दया-दान-पूजा भली, जगत माहिं सुखकार।
जहँ अनुभव को आचरण, तहँ यह बन्ध विचार ॥१५॥
यह तो बात प्रसिद्ध है, सोच देख उर माहिं।
नर-देही के निमित्त बिन, जिय त्यों मुक्ति न जाहिं ॥१६॥
देह पींजरा जीव को, रोकैं शिवपुर जात।
उपादान की शक्ति सों, मुक्ति होत रे भ्रात! ॥१७॥
उपादान सब जीव पै, रोकन हारो कौन ?
जाते क्यों नहिं मुक्ति में, बिन निमित्त के हौन ॥१८॥
उपादान सु अनादि को, उलट रह्यौ जगमाहिं।
सुलटत ही सूधे चले, सिद्ध लोक को जाहिं ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहो अनादि निमित्त बिन, उलट रह्यौ उपयोग ?
ऐसी बात न संभवैं, उपादान तुम जोग॥२०॥
उपादान कहे रे निमित्त! हम पै कही न जाय।
ऐसे ही जिन केवली, देखे त्रिभुवन राय॥२१॥
जो देख्यो भगवान ने, सो ही साँची आहिं।
हम-तुम सङ्ग अनादि कै, बली कहोगे काहिं॥२२॥
उपादान कहे वह बली, जाको नाश न होय।
जो उपजत विनशत रहे, बली कहाँ तैं सोय॥२३॥
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत आहार ?
पर निमित्त के योग सौं, जीवत हैं जगमाहिं॥२४॥
जो आहार के योग सौं, जीवत हैं जगमाहिं।
तो वासी संसार के, कोऊ मरते नाहिं॥२५॥
सूर सोम मणि अग्नि के, निमित्त लखें ये नैन।
अन्धकार में कित गयो, उपादान दृग दैन॥२६॥
सूर सोम मणि अग्नि जो, करे अनेक प्रकास।
नैन शक्ति बिन ना लखैं, अन्धकार सम भास॥२७॥
कहै निमित्त वे जीव को ? मो बिन जग के माहिं।
सबै हमारी वश परे, हम बिन मुक्ति न जाहिं॥२८॥
उपादान कहै रे निमित्त! ऐसे बोल न बोल।
तोको तज निज भजत हैं, ते ही करें किलोल॥२९॥
कहै निमित्त हम को तजै, ते कैसे शिव जात ?
पंच महाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात॥३०॥
पंच महाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार।
पर कौ निमित्त खिपाय के, तब पहुँचे भव-पार॥३१॥
कहै निमित्त जग में बढ्यौ, मो तैं बड़ौ न कोय।
तीन लोक के नाथ सब, मो प्रसादतैं होंय॥३२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपादान कहै तू कहा, चहुँगति में ले जाय।
तो प्रसादतैं जीव सब, दुःखी होंहिं रे भाय! ।३३ ॥
कहै निमित्त जो दुःख सहै, सो तुम हमहिं लगाय।
सुखी कौनतैं होत हैं, ताको देहु बताय ॥३४ ॥
जो सुख को तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं।
ये सुख तो दुःख-मूल है, सुख अविनाशी माहिं ॥३५ ॥
अविनाशी घट-घट बसे, सुख क्यों विलसत नाहिं।
शुभ निमित्त के योग बिन, परे-परे बिललाहिं ॥३६ ॥
शुभ निमित्त इह जीव को, मिल्यौ अनन्तीबार।
पै इक सम्यग्दर्श बिन, भटकत फिर्‍यौ गंवार ॥३७ ॥
सम्यग्दर्श भये कहा, त्वरित मुक्ति में जाहिं।
आगे ध्यान निमित्त है, ते शिव को पहुँचाहिं ॥३८ ॥
छोरि ध्यान की धारणा, मोरि योग की रीति।
तोरी कर्म के जाल को, जोरि लई शिव प्रीत ॥३९ ॥
तब निमित्त हार्यो तहाँ, अब नहीं जोर बसाय।
उपादान शिवलोक में, पहुँच्यौ कर्म खिपाय ॥४० ॥
उपादान जीत्यो तहाँ, निज बल कर परकास।
सुख अनन्त ध्रुव भोगवे, अन्त न वरन्यौ तास ॥४१ ॥
उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवन पै वीर।
जो निज शक्ति सँभार ही, सो पहुँचे भवतीर ॥४२ ॥
'भैया' महिमा ब्रह्म की, कैसे वरनीं जाय ?
वचन अगोचर वस्तु है, कहिबी वचन बताय ॥४३ ॥
उपादान अरु निमित्त को, सरस बन्यौ संवाद।
समदृष्टि को सरल है, मूरख को बकवाद ॥४४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो जानै गुण ब्रह्म के, सो जाने यह भेद।
साख जिनागम सौं मिले, तो मत कीज्यौ खेद ॥४५ ॥

अन्तिम प्रशस्ति

नगर आगरा अग्र है, जैनी जन को वास।
तिह थानक रचना करी, 'भैया' स्वमति प्रकास ॥४६ ॥
संवत् विक्रम भूप को, सत्तरह सै पंचास।
फागुन पहले पक्ष में, दशों दिशा परकास ॥४७ ॥

निमित्त-उपादान दोहा

निमित्त का पक्ष

गुरू उपदेश निमित्त बिन, उपदान बलहीन।
जयों नर दूजे पाँव बिन, चलवे को आधीन।।१ ॥
हौ जाने था एक ही, उपादान सौं काज।
थके सहाई पौन बिन, पानी माहिं जहाज ॥२ ॥

उपादान का समाधान

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिव मग धार।
उपदान निहचै जहाँ, तहाँ निमित्त व्यवहार ॥३ ॥
उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥४ ॥
उपादान बल जहाँ तहाँ, नहिं निमित्त को दाव।
एक चक्र सौं रथ चले, रवि को यहै स्वभाव ॥५ ॥
सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन ?
ज्यों जहाज परवाह में, तिरे सहज बिन पौन ॥६ ॥
उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेश।
बसे जु जैसे देश में, करै सु तैसे भेष ॥७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न कवियों द्वारा विरचित बारह भावनाएँ

द्वादशानुप्रेक्षा

जग है अनित्य तामैं सरन न वस्तु कोय,
तातें दुःख रासि भववास कौं निहारिए।
एक चित सदा भिन्न पर द्रव्यनितैं,
अशुचि शरीर मैं न आपा बुद्धि धारिए॥
रागादिक भाव करै कर्म को बढ़ावें तातैं,
संवर स्वरूप होय कर्म बन्ध डारिए।
तीन लोक माँहि जिन धर्म एक दुर्लभ है,
तातैं जिनधर्म कौं न छिनहू विसारिए॥

बारह भावना

कविवर पं. जयचन्द जी

द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन ?
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नय करि गौन॥१॥
शुद्धातम अरू पंच गुरू, जग में सरनौ दोय।
मोह उदय जिय के वृथा आन कल्पना होय॥॥।
परद्रव्यनतैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार मैं, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध॥३॥
परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय॥४॥
अपने अपने सत्व कूँ, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय॥५॥
निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार॥७॥
निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजय धरम, धरैं पाप की हानि॥८॥
संवर मय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाँय।
निज स्वरूप को पाय कर, लोक शिखर जब थाय॥९॥
लोक स्वरूप विचारिकें, आतम रूप निहारि।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि॥१०॥
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं॥११॥
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतम धर्म बखानि।
दया क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि॥१२॥

कविवर भूधरदास

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥१॥
दल बल देई देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार॥२॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यों छान॥३॥
आप अकेलो अवतरे, मरै अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥४॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनों कोय।
घर संपत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥५॥
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥७॥
सतगुरू देय जगाय, मोह नींद जब उपशमैं।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रूकैं ॥८॥
ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रमछोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ॥९॥
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरूष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥११॥
धन कन कंचन राज सुख, सबहि सुलभकर ज्ञान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान ॥१२॥
जाँचे सुर तरू देय सुख, चिन्तत चिन्ता रेन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख देन ॥१३॥

कविवर भूधरदास

(पार्श्वपुराण से उद्धृत)

द्रव्य सुभाव बिना जग माहिं, पर यै रूप कछू थिह नांहिं।
तन धन आदि दीखे जेह, काल अगनि सब ईंधन तेह ॥१॥
भव वन भ्रमत निरन्तर जीव, याहि न कोई शरन सदीव।
व्योहारे परमेष्ठी जाप, निहचै शरन आपको आप ॥२॥
सूर कहावै जो सिर देय, खेत तजै जो अपयश लेय।
इस अनुसार जगत की रीत, सब असार सब ही विपरीत ॥३॥
तीन काल इस त्रिभुवन माहिं, जीव संगाती कोई नाहिं।
एकाकी सुख दुख सब सहैं, पाप पुण्य करनी फल लहै ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जितने जग संजोगी भाव, ते सब जिय सों भिन्न सुभाव।
नित संगी तन ही पर सोय, पुत्र सुजन पर क्यों नहिं होय ॥५ ॥
अशुचि अस्थि पिंजर तन यह, चाम वसन बेढ्या घिन गेह।
चेतन राचि तहाँ नित रहे, सो बिन ज्ञान गिलानि न गहै ॥६ ॥
मिथ्या अविरत जोग कषाय, ये आस्रव कारन समुदाय।
आस्रव कर्म बंध को हेत, बंध चतुरगति के दुख देत ॥७ ॥
समिति गुप्ति अनुपेहा धर्म, सहन परीषह संजम पर्म।
ये संवर कारन निर्दोष, संवर करे जीव को मोष ॥८ ॥
तप बल पूर्व कर्म खिर जाहिं, नये ज्ञान वश आवें नाहिं।
यही निर्जरा सुख दातार, भव कारन तारन निरधार ॥९ ॥
स्वयं सिद्ध त्रिभुवन थित जान, कटि कर धरैं पुरुष संठान।
भ्रमत अनादि आतमा जहाँ, समकित बिन शिव होय न तहाँ ॥१० ॥
दुर्लभधर्म दशाङ्ग पवित्त, सुखदायक सहगामी नित्त।
दुर्गति परत यही कर गहै, देय सुरग शिव थानक यहै ॥११ ॥
सुलभ जीव को सब सुख सदा, नौ ग्रीवक ताँई संपदा।
बोध रतन दुर्लभ संसार, भव दरिद्र दुख मेटन हार ॥१२ ॥

कविवर पण्डित दीपचन्द

द्रव्यदृष्टि से वस्तु थिर, पर्यय अथिर निहार।
तासे योग वियोग में, हर्ष विषाद निवार ॥१ ॥
शरण न जिय को जगत में, सुर नर खगपति सार।
निश्चय शुद्धातम शरण, परमेष्ठी व्यवहार ॥२ ॥
जन्म जरागद मृत्यु भय, पुनि जहँ विषय-कषाय।
होवे सुख दुःख जीव को, सो संसार कहाय ॥३ ॥
पाप-पुण्य फल दुःख सुख, सम्पत विपत सदीव।
जन्म-जरा-मृतु आदि सब, सहै अकेला जीव ॥४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा तन में नित जिय बसै, सो न अपनो होय।
तो प्रतक्ष जो पर दरब, कैसे अपनो होय ॥५ ॥
सुष्ठु सुगन्धित द्रव्य को, करे अशुचि जो काय।
हाड़ माँस मल रुधिर थल, सो किम शुद्ध कहाय ॥६ ॥
मन-वच-तन शुभ अशुभ ये, योग आस्रव द्वार।
करत बन्ध विधि जीव को, महा कुटिल दुःखकार ॥७ ॥
ज्ञान विराग विचार के, गोपै मन वच काय।
थिर ह्वै अपने आप में, सो संवर सुखदाय ॥८ ॥
पाँचों इन्द्रिय दमन कर, समिति गुप्ति व्रत धार।
इच्छा बिन तप आदरै, सो निर्जरा निहार ॥९ ॥
पुद्गल धर्म अधर्म जिय, काल जिते नभ माँहि।
नराकार सो लोक में, विधि वश जिव दुःख पाँहि ॥१० ॥
सबहि सुलभ या जगत में, सरु परपद धन धान।
दुर्लभ सम्यग्बोधि इक, जो है शिव सोपान ॥११ ॥
जप तप संयम शील पुनि, त्याग धर्म व्यवहार।
'दीप' रमण चिद्रूप निज, निश्चय वृष सुखकार ॥१२ ॥

कविवर भैय्या भगवतीदास

पंच परम पद वंदना करों, मन वच भाव सहित उर धरों।
बारह भावन पावन जान, भाऊँ आतम गुण पहिचान ॥१ ॥
थिर नहिं दीखहिं नैननि वस्त, देहादिक अरु रूप समस्त।
थिर बिन नेह कौन सों करों, अथिर देख ममता परिहरौं ॥२ ॥
असरन तोहि सरन नहिं कोय, तीन लोक महिं दृग धर जोय।
कोउ न तेरो राखनहार, कर्मन बस चेतन निरधार ॥३ ॥
अरु संसार भावना एहु, पर द्रव्यन सों कीजे नेह।
तू चेतन वे जड़ सरवंग, तातें तजहु परायो संग ॥४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक जीव तू आप त्रिकाल, ऊरध मध्य भवन पाताल।
दूजो कोउ न तेरो साथ, सदा अकेलो फिरहिं अनाथ॥५॥
भिन्न सदा पुद्गलतैं रहे, भ्रमबुद्धितैं जड़ता गहे।
वे रूपी पुद्गल के खंध, तू चिन्मूरत सदा अबंध॥६॥
अशुचि देख देहादिक अङ्ग, कौन कुवस्तु लगी तो सङ्ग।
अस्थी माँस रुधिर गद गेह, मल मूतन लखि तजहु सनेह॥७॥
आस्रव पर सों कीजे प्रीत, तातैं बंध बढ़हिं विपरीत।
पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं, तू चेतन वे जड़ सब आँहि॥८॥
संवर पर को रोकन भाव, सुख होवे को यही उपाव।
आवे नहीं नये जहाँ कर्म, पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म॥९॥
थिति पूरी ह्वै खिर-खिर जाहिं, निर्जर भाव अधिक अधिकाहिं।
निर्मल होय चिदानन्द आप, मिटै सहज परसङ्ग मिलाप॥१०॥
लोक माँहि तेरो कछु नाहिं, लोक आन तुम आन लखाहिं।
वह षट् द्रव्यन को सब धाम, तू चिनमूरति आतमराम॥११॥
दुर्लभ परद्रव्यनि को भाव, सो तोहि दुर्लभ है सुनिराव।
जो तेरो है ज्ञान अनन्त, सो नहिं दुर्लभ सुनो महन्त॥१२॥
धर्म सु आप स्वभाव हि जान, आप स्वभाव धर्म सोई मान।
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय, तब परमातम पद लखि सोय॥१३॥
ये ही बारह भावन सार, तीर्थङ्कर भावहिं निरधार।
ह्वै वैराग महाव्रत लेहिं, तब भव छमन जलाँजुलि देहिं॥१४॥
'भैय्या' भावहु भाव अनूप, भावत होहु चरित शिवभूप।
सुख अनन्त विलसहु निश दीस, इम भाख्यो स्वामी जगदीस॥१५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवर बुधजन

(हरिगीतिका)

जेती जगत में वस्तु तेती अथिर परिणमती सदा।
परिणमन राखन नाहिं समरथ इन्द्र चक्री मुनि कदा।।
सुत नारि यौवन और तन धन जानि दामिनि दमक सा।
ममता न कीजे धारि समता मानि जल में नमक सा ॥१ ॥
चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहै।
सो रहै आप करार माफिक अधिक राखे ना रहै॥
अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाहीं रहत हैं।
शरण तो इक धर्म आतम याहि मुनिजन गहत हैं॥२ ॥
सुर नर नरक पशु सकल हेरे, कर्म चेरे बन रहे।
सुख शासता, नहिं भासता, सब विपति अति में सन रहे॥
दुःख मानसी तो देवगति में, नारकी दुःख ही भरै।
तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकट में जरै॥३ ॥
क्यों भूलता, शठ फूलता है देख परिकर थोक को।
लाया कहाँ ले जायगा क्या फौज भूषण रोक को॥
जनमत मरत तुझ एकले को काल केता हो गया।
सङ्ग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया॥४ ॥
इन्द्रीन तैं जाना न जावै तू चिदानन्द अलक्ष है।
स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब प्रत्यक्ष है॥
तन अन्य जड़ जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है।
कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है॥५ ॥
क्या देख राचा फिरै नाचा रूप सुन्दर तन लहा।
मल मूत्र भाण्डा भरा गाढ़ा तू न जानै भ्रम गहा॥
क्यों सूग नाहीं लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै।
तुहि काल गटकै नाहिं अटकै छोड़ तुझको गिर परै॥६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई खरा कोई बुरा नहिं, वस्तु विविध स्वभाव है।
तू वृथा विकलप ठान उर में करत राग उपाव है॥
यूँ भाव आस्रव बनन तू ही द्रव्य आस्रव सुन कथा।
तुझ हेतु से पुद्गल करम बन निमित्त हो देते व्यथा॥७॥
तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुरु शरणा लिया।
सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया॥
इन्द्री अनिन्द्री दाबि लीनी त्रस रु थावर बन्ध तजा।
तब कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निज में जा सजा॥८॥
तज शल्य तीनों बरत लीनो बाह्याभ्यंतर तप तपा।
उपसर्ग सुर-नर-जड़-पशूकृत सहा निज आतम जपा॥
तब कर्म रस बिन होन लागे द्रव्य भावन निर्जरा।
सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा॥९॥
विच लोकनन्ता लोक माँही लोक में सब द्रव भरा।
सब भिन्न भिन्न अनादि रचना निमित्त कारण की धरा॥
जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्म नाशा सुन गिरा।
सुर मनुष तिर्यक् नारकी हुई ऊर्ध्व मध्य अधो धरा॥१०॥
अनन्तकाल निगोद अटका निकस थावर तन धरा।
भू वारि तेज बयार ह्वै कै बेइन्द्रिय त्रस अवतरा॥
फिर हो तिइन्द्री वा चौइन्द्री पंचेन्द्री मन बिन बना।
मनयुत मनुष गति हो न दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना॥११॥
जिय न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जप जपा।
तन नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा॥
वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि बिन सब निष्फला।
'बुधजन' धरम निजधार लीना तिनहिं कीना सब भला॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(दोहा)

अथिराशरण संसार है, एकत्व अन्यत्वहि जान।
अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक बखान॥१३॥
बोधरु दुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान।
इनको भावै जो सदा, क्यों न लहै निर्वान॥१४॥

बारह भावना

(दोहा)

निज स्वभाव की दृष्टि धर, बारह भावन भाय।
माता है वैराग्य की, चिन्तत सुख प्रकटाय॥

अनित्य भावना

मैं आत्मा नित्य स्वभावी हूँ, ना क्षणिक पदार्थों से नाता।
संयोग शरीर कर्म रागादिक, क्षणभंगुर जानो भ्राता॥
इनका विश्वास नहीं चेतन, अब तो निज की पहिचान करो।
निज ध्रुव स्वभाव के आश्रय से ही, जन्मजरामृत रोग हरो॥

अशरण भावना

जो पाप बन्ध के हैं निमित्त, वे लौकिक जन तो शरण नहीं।
पर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु भी, अवलम्बन हैं व्यवहार सही॥
निश्चय से वे भी भिन्न अहो! उन सम निज लक्ष्य करो आत्मन्।
निज शाश्वत ज्ञायक ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र है अवलम्बन॥२॥

संसार भावना

ये बाह्य लोक संसार नहीं, ये तो मुझ सम सत् द्रव्य अरे।
नहिं किसी ने मुझको दुःख दिया, नहिं कोई मुझको सुखी करे॥
निज मोह राग अरु द्वेष भाव से, दुख अनुभूति की अबतक।
अतएव भाव संसार तजूँ, अरु भोगूँ सच्चा सुख अविचल॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्व भावना

मैं एक शुद्ध निर्मल अखण्ड, पर से न हुआ एकत्व कभी।
जिनको निज मान लिया मैंने, वे भी तो पर प्रत्यक्ष सभी॥
नहीं स्व-स्वामी सम्बन्ध बने, माना वह भूल रही मेरी।
निज में एकत्व मान कर के, अब मेटूँगा भव-भव फेरी॥४॥

अन्यत्व भावना

जो भिन्न चतुष्टय वाले हैं, अत्यन्ताभाव सदा उनमें।
गुण पर्यय में अन्यत्व अरे, प्रदेशभेद नहिं है जिनमें॥
इस सम्बन्धी विपरीत मान्यता से, संसार बढ़ाया है।
निज तत्त्व समझ में आने से, समरस निज में ही पाया है॥५॥

अशुचि भावना

है ज्ञानदेह पावन मेरी, जड़देह राग के योग्य नहीं।
यह तो मलमय मल से उपजी, मल तो सुखदायी कभी नहीं॥
भो आत्मन् श्री गुरु ने, रागादिक को अशुचि अपवित्र कहा।
अब इनसे भिन्न परम पावन, निज ज्ञानस्वरूप निहार अहा॥६॥

आस्रव भावना

मिथ्यात्व कषाय योग द्वारा, कर्मों को नित्य बुलाया है।
शुभ-अशुभ भाव क्रिया द्वारा, नित दुख का जाल बिछाया है॥
पिछले कर्मोदय में जुड़कर, कर्मों को ही छोड़ा बाँधा।
ना ज्ञाता-दृष्टा मात्र रहा, अब तक शिवमार्ग नहीं साधा॥७॥

संवर भावना

मिथ्यात्व अभी सत् श्रद्धा से, व्रत से अविरति का नाश करूँ।
मैं सावधान निज में रहकर, निःकषाय भाव उद्योत करूँ॥
शुभ-अशुभ योग से भिन्न, आत्म में निष्कम्पित हो जाऊँगा।
संवरमय ज्ञायक आश्रय कर, नव कर्म नहीं अपनाऊँगा॥८॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

निर्जरा भावना

नव आस्रव पूर्वक कर्म तजे, इससे बन्धन न नष्ट हुआ।
अब कर्मोदय को ना देखूँ, ज्ञानी से यही विवेक मिला॥
इच्छा उत्पन्न नहीं होवें, बस कर्म स्वयं झड़ जावेंगे॥
जब किञ्चित नहीं विभाव रहें, गुण स्वयं प्रगट हो जावेंगे॥९॥

लोक भावना

परिवर्तन पंच अनेक किये, सम्पूर्ण लोक में भ्रमण किया।
ना कोई क्षेत्र रहा ऐसा, जिस पर ना हमने जन्म लिया॥
नरकों स्वर्गों में घूम चुका, अतएव आश सबकी छोडूँ।
लोकाग्र शिखर पर थिर होऊँ, बस निज में ही निज को जोडूँ॥१०॥

बोधिदुर्लभ भावना

सामग्री सभी सुलभ जग में, बहुबार मिली छूटी मुझसे।
कल्याणमूल रत्नत्रय परिणति, अब तक दूर रही मुझसे॥
इसलिए न सुख का लेश मिला, पर में चिरकाल गँवाया है।
सद्बोधि हेतु पुरुषार्थ करूँ, अब उत्तम अवसर पाया है॥११॥

धर्मभावना

शुभ-अशुभ कषायों रहित होय, सम्यक्चारित्र प्रगटाऊँगा।
बस निज स्वभाव साधन द्वारा, निर्मल अनर्घ्यपद पाऊँगा॥
माला तो बहुत जपी अब तक, अब निज में निज का ध्यान धरूँ।
कारण परमात्मा अब भी हूँ, पर्यय में प्रभुता प्रकट करूँ॥१२॥

(दोहा)

ध्रुव स्वभाव सुखरूप है, उसको ध्याऊँ आज।
दुखमय राग विनष्ट हो, पाऊँ सिद्ध समाज॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविवर मंगतराय

(दोहा)

वन्दू श्री अरहन्त पद, वीतराग विज्ञान।
वरणों बारह भावना, जग जीवन हित जान॥१॥

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम रू लछमन, जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रूक्मिणी सतभामा, अरू सम्पति सगरी।
कहाँ गये वह रङ्ग महल अरू, सुवरन की नगरी॥२॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पाँडव वन को, अग्नि लगी तन में।
मोह नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करें, गुरू बारह भावन को॥३॥

अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकले, ऋतु फिर फिर कर आवे।
प्यारी आयू ऐसी बीते, पता नहीं पावे॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बह कर नहिं हटता।
स्वाँस चलत यों घटे काठ ज्यों, आरे सों कटता॥४॥
ओस बून्द ज्यों गले धूप में, वा अञ्जुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी॥
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जग सम्पत्ति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरू नारी॥५॥

अशरण भावना

काल सिंह ने मृग चेतन को घेरा भव वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्त्र यन्त्र सेना धन सम्पत्ति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥६॥
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया॥
देव धर्म गुरू शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरे भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥७॥

संसार भावना

जनम-मरण अरू जरा रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरू काल भाव भव परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशू गति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥८॥
भोगि पुण्य फल हो इक इन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरू जाली॥
मानुष जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पञ्चम गति सुख मिले, शुभाशुभ का मेटो लेखो॥९॥

एकत्व भावना

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पेंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवे, पिता पुत्र दारा॥१०॥
ज्यों मेले में पन्थी जन मिलि, नेह फिरे धरते।
ज्यों तरूवर पै रैन बसेरा, पन्छी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक थक हारे।
जाय अकेला हंस सङ्ग में, कोई न पर मारे॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यत्व भावना

मोह रूप मृग तृष्णा जल में, मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़े थक-थक के॥
जल नहिं पावै प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता॥१२॥
तू चेतन अरू देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतन तें बिछुड़े, ज्यों पय अरू पानी।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जोलों पौरूष थके न तो लों, उद्यम सो चरना॥१३॥

अशुचि भावना

तू नित पोखे यह सूखे ज्यों, धोवे त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली॥
मात-पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी॥१४॥
काना पौण्डा पड़ा हाथ यह, चूँसे तो रोवै।
फले अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवे॥
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसतें होय, अपावन निश दिन मल जारी॥१५॥

आस्रव भावना

ज्यों सर जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब, पुद्गल भरमन को॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को॥१६॥
पन मिथ्यात योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो।
पंच रू बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह भाव की ममता टारे, पर परिणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव ज्ञानी जन होते॥१७॥

संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावे, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर क्यों नहिं मन लाता॥
पञ्च महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।।
दश विधि धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को॥१८॥
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्धि, भावन संवर पावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी, मंझधार पार जावै॥१९॥

निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रूका सूखता, तपन पड़े भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा, ह्वै सोखनहारी।
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली॥
दूजी है अविपाक पकावें, पाल विषै माली॥२०॥
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरे काम तेरा।
दूजी करे जु उद्यम करके, मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिले मुक्ति राणी।
इस दुलहिन की यही सहेली; जाने सब ज्ञानी॥२१॥

लोक भावना

लोक अलोक अकाश माँहि थिर, निराधार जानो।
पुरूष रूप कर कटी भये षट् द्रव्यन सों मानो॥
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव रू पुद्गल नाचे यामैं, कर्म उपाधी है॥२२॥
पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर औरन के धरता॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोह कर्म को नाश मेटकर, सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा ॥२३ ॥

बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरू त्रस गति पानी।
नर काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी ॥
उत्तम देस सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना ॥२४ ॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्ध भाव करना ॥
दुर्लभ तैं दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै ॥
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै ॥२५ ॥

धर्म भावना

एकान्तवाद के धारी जग में, दर्शन बहुतेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर, ज्ञान हरें मेरे ॥
हो सुछन्द सब पाप करें सिर, करता के लावें।
कोई छिनक कोई करता से, जग में भटकावें ॥२६ ॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्री जिनकी वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सब कोसुख दानी ॥
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतन तैं इकदिन, भवसागर तरना ॥२७ ॥

अपूर्व अवसर

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा,
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब।
सम्बन्धों का बंधन तीक्षण छेद कर,
विचरूँगा कब महत्पुरूष के पंथ जब ॥१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदासीन वृत्ती हो सब परभाव से,
यह तन केवल संयम हेतु होय जब।
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं,
तन में किंचित भी मूर्छा नहिं होय जब ॥२ ॥
दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो,
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब।
चरित्र-मोह का क्षय जिससे हो जायेगा,
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब ॥३ ॥
आत्म लीनता मन-वचन-काया योग की,
मुख्यरूप से रही देह पर्यंत जब।
भयकारी उपसर्ग परिषह हो महा,
किन्तु न होवेगा स्थिरता का अन्त जब ॥४ ॥
संयम ही के लिए योग की वृत्ति हो,
निज आश्रय से, जिन आज्ञा अनुसार जब।
वह प्रवृति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी,
होऊँ अन्त में निजस्वरूप में लीन जब ॥५ ॥
पंच विषय में राम-द्वेष कुछ हो नहीं,
अरू प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब।
द्रव्य-क्षेत्र अरू काल-भाव प्रतिबंध बिन,
वीतलोभ हो विचरूँ उदयाधीन जब ॥६ ॥
क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता,
मान भाव प्रति दीनभावमय मान जब।
माया के प्रति माया साक्षी भाव की,
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब ॥७ ॥
बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध नहिं,
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देह जाय पर माया नहिं हो रोम में,
लोभ नहिं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥८॥
नग्नभाव मुंडभाव सहित अस्नानता,
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब।
केश-रोम-नख आदि अङ्ग शृङ्गार नहिं,
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रंथ-सिद्ध जब ॥९॥
शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता,
मान-अमान में वर्ते वही स्वभाव जब।
जन्म-मरण में हो नहिं न्यून-अधिकता,
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब ॥१०॥
एकाकी विचरूँगा जब शमशान में,
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब।
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो,
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब ॥११॥
घोर तपश्चर्या में, तन संताप नहिं,
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन।
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की
सबमें भासे पुद्गल एक स्वभाव जब ॥१२॥
ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्र मोह पर,
पाऊँगा तब करण अपूरव भाव जब।
क्षायिक श्रेणी पर होऊँ-आरूढ़ जब,
अनन्यचिंतन अतिशय शुद्धस्वभाव जब ॥१३॥
मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर,
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब।
अन्त समय में पूर्णरूप वीतराग हो,
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब ॥१४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ,
हो भवतरू का बीज समूल विनाश जब।
सकल ज्ञेय का ज्ञाता-द्रष्टा मात्र हो,
कृतकृत्यप्रभु वीर्य अनंतप्रकाश जब॥१५॥
चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो,
जली जेवरीवत् हो आकृति मात्र जब।
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है।
आयुपूर्ण हो तो मिटता तन-पात्र जब॥१६॥
मन-वच-काया अरू कर्मों की वर्गणा,
छूटे जहाँ सकल पुद्गल सम्बन्ध जब।
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता,
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबंध जब॥१७॥
इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता,
पूर्ण कलङ्क विहीन अडोल स्वरूप जब।
शुद्ध निरञ्जन चेतन मूर्ति अनन्य मय,
अगुरूलघु अमूर्त सहज पदरूप जब॥१८॥
पूर्व प्रयोगादिक कारक के योग से,
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब।
सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में,
अनन्तदर्शन ज्ञान अनन्त सहित जब॥१९॥
जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब॥२०॥
यही परमपद पाने को धर ध्यान जब,
शक्ति विहीन अवस्था मनरथरूप जब।
तो भी निश्चय 'राजचन्द्र' के मन रहा,
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब॥२१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द शतक

(पद्यानुवाद)

सुर-असुर-इन्द्र-नरेन्द्र-वंदित कर्ममल निर्मलकरन।
वृषतीर्थ के करतार श्री वर्द्धमान जिन शत-शत नमन॥१॥
अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठि पण।
सब आत्मा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण॥२॥
सम्यक् सुदर्शन ज्ञान तप समभाव सम्यक् आचरण।
सब आत्मा की अवस्थाएँ आतमा ही है शरण॥३॥
निर्ग्रन्थ है नीराग है निःशल्य है निर्दोष है।
निर्मान-मद यह आतमा निष्काम है निष्क्रोध है॥४॥
निर्दण्ड है निर्द्वन्द्व है यह निरालम्बी आतमा।
निर्देह है निर्मूढ़ है निर्भयी निर्मम आतमा॥५॥
मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं॥६॥
चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है।
जानो अलिङ्गग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है॥७॥
जिस भाँति प्रज्ञा छैनी से पर से विभक्त किया इसे।
उस भाँति प्रज्ञाछैनी से ही अरे ग्रहण करो इसे॥८॥
जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो।
जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो॥९॥
यह आत्म ज्ञानप्रमाण है अर ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है।
हैं ज्ञेय लोकालोक इस विधि सर्वगत यह ज्ञान है॥१०॥
चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा।
ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चयनय सदा॥११॥
'यह नृपति है'- यह जानकर अर्थार्थिजन श्रद्धा करें।
अनुचरण उसका ही करें अति प्रीति से सेवा करें॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि मोक्ष की है कामना तो जीवनृप को जानिए।
अति प्रीति से अनुचरण करिये प्रीति से पहिचानिए ॥१३॥
जो भव्यजन संसार-सागर पार होना चाहते।
वे कर्मईंधन-दहन निज शुद्धातमा को ध्यावते ॥१४॥
मोक्षपथ में थाप निज को चेतकर निज ध्यान धर।
निज में ही नित्य विहार कर परद्रव्य में न विहार कर ॥१५॥
जीवादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।
रागादि का परिहार चारित - यही मुक्तिमार्ग है ॥१६॥
तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है तत्ग्रहण सम्यग्ज्ञान है।
जिनदेव ने ऐसा कहा परिहार ही चारित्र है ॥१७॥
जानना ही ज्ञान है अरु देखना दर्शन कहा।
पुण्य-पाप का परिहार चारित्र यही जिनवर ने कहा ॥१८॥
दर्शन रहित यदि वेश हो चारित्र विरहित ज्ञान हो।
संयम रहित तप निरर्थक आकाश-कुसुम समान हो ॥१९॥
दर्शन सहित हो वेश चारित्र शुद्ध सम्यग्ज्ञान हो।
संयम सहित तप अल्प भी हो तदपि सुफल महान हो ॥२०॥
परमार्थ से हो दूर पर तप करें व्रत धारण करें।
सब बालतप हैं बालव्रत वृषभादि सब जिनवर कहें ॥२१॥
व्रत नियम सब धारण करें तप शील भी पालन करें।
पर दूर हों परमार्थ से ना मुक्ति की प्राप्ति करें ॥२२॥
जो शक्य हो वह करें और अशक्य की श्रद्धा करें।
श्रद्धान ही सम्यक्त्व है इस भाँति सब जिनवर कहें ॥२३॥
जीवादि का श्रद्धान ही व्यवहार से सम्यक्त्व है।
पर नियत नय से आत्म का श्रद्धान ही सम्यक्त्व है ॥२४॥
नियम से निज द्रव्य में रत श्रमण सम्यकवंत हैं।
सम्यक्त्व-परिणत श्रमण ही क्षय करें करमानन्त हैं ॥२५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्ती गये या जायेंगे माहात्म्य है सम्यक्त्व का।
तुम जान लो हे भव्यजन! इससे अधिक अब कहें क्या ॥२६ ॥
वे धन्य हैं सुकृतार्थ हैं वे शूर नर पण्डित वही।
दुःस्वप्न में सम्यक्त्व को जिनने मलीन किया नहीं ॥२७ ॥
चिदचिदास्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा।
तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से जाने हुए सम्यक्त्व है ॥२८ ॥
शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय।
भूतार्थ की शरण गह यह आत्मा सम्यक् लहे ॥२९ ॥
अनार्य भाषा के बिना समझा सकें न अनार्य को।
बस त्योंहि समझा सकें ना व्यवहार बिन परमार्थ को ॥३० ॥
देह-चेतन एक हैं- यह वचन है व्यवहार का।
ये एक हो सकते नहीं - यह कथन है परमार्थ का ॥३१ ॥
दृग ज्ञान चारित जीव के हैं- यह कहा व्यवहार से।
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ॥३२ ॥
जो सो रहा व्यवहार में वह जागता निज कार्य में।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा निज कार्य में ॥३३ ॥
इस ही तरह परमार्थ से कर नास्ति इस व्यवहार की।
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन प्राप्ति करें निर्वाण की ॥३४ ॥
सद्धर्म का है मूल दर्शन जिनवरेन्द्रों ने कहा।
हे कानवालों! सुनो दर्शनहीन वंदन योग्य ना ॥३५ ॥
जो ज्ञान-दर्शन-भ्रष्ट हैं चारित्र से भी भ्रष्ट हैं।
वे भ्रष्ट करते अन्य को वे भ्रष्ट से भी भ्रष्ट हैं ॥३६ ॥
दृग-भ्रष्ट हैं वे भ्रष्ट हैं उनको कभी निर्वाण ना।
हों सिद्ध चारित्र-भ्रष्ट पर दृग-भ्रष्ट को निर्वाण ना ॥३७ ॥
जो लाज गारव और भयवश पूजते दृग-भ्रष्ट को।
की पाप की अनुमोदना ना बोधि उनको प्राप्त हो ॥३८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहैं नमन दृगवंत से पर स्वयं दर्शनहीन हों।
है बोधिदुर्लभ उन्हें भी वे भी वचन-पग-हीन हों ॥३९ ॥
यद्यपि करें वे उग्र तप शत-सहस-कोटि वर्ष तक।
पर रतनत्रय पावें नहीं सम्यक्त्व-विरहित साधु सब ॥४० ॥
जिसतरह द्रुम परिवार की वृद्धि न हो जड़ के बिना।
बस उसतरह ना मुक्ति हो जिनमार्ग में दर्शन बिना ॥४१ ॥
असंयमी न वन्द्य है दृगहीन वस्त्रविहीन भी।
दोनों ही एक समान हैं दोनों ही संयत हैं नहीं ॥४२ ॥
ना वंदना हो देह की कुल की नहीं ना जाति की।
कोई करे क्यों वंदना गुणहीन श्रावक-साधु की ॥४३ ॥
मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी।
यह मान्यता जब तक रहे अज्ञानी हैं तब तक सभी ॥४४ ॥
करम के परिणाम को नोकरम के परिणाम को।
जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हो सद्ज्ञान को ॥४५ ॥
मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन! ।४६ ॥
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं ? ।४७ ॥
निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं ? ।४८ ॥
मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावें अन्यजन।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ॥४९ ॥
सब आयु से जीवित रहें - यह बात जिनवर ने कही।
जीवित रखोगे किस तरह जब आयु दे सकते नहीं ॥५० ॥
सब आयु से जीवित रहें- बात जिनवर ने कही।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं ॥५१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को।
यह मान्यता अज्ञान है, क्यों ज्ञानियों को मान्य हो ?।५२॥
मारो न मारो जीव को हो बन्ध अध्यवसान से।
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से॥५३॥
प्राणी मरें या ना मरें हिंसा अयत्नाचार से।
तब बंध होता है नहीं जब रहें यत्नाचार से॥५४॥
उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्त सत् सत् द्रव्य का लक्षण कहा।
पर्याय-गुणमय द्रव्य है - यह वचन जिनवर ने कहा॥५५॥
पर्याय बिन ना द्रव्य हो ना द्रव्य बिन पर्याय ही।
दोनों अनन्य रहें सदा - यह बात श्रमणों ने कही॥५६॥
द्रव्य बिन गुण हों नहीं गुण बिना द्रव्य नहीं बने।
गुण द्रव्य अव्यतिरिक्त हैं - यह कहा जिनवरदेव ने॥५७॥
उत्पाद हो न अभाव का ना नाश हो सद्भाव में।
उत्पाद-व्यय करते रहें सब द्रव्य गुण-पर्याय में॥५८॥
असद्भूत हों सद्भूत हों सब द्रव्य की पर्याय सब।
सद्ज्ञान में वर्तमानवत् ही हैं सदा वर्तमान सब॥५९॥
पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या नष्ट जो हो गईं हैं।
असद्भावी वे सभी पर्यायें ज्ञान प्रत्यक्ष हैं॥६०॥
पर्याय जो अनुत्पन्न हैं या हो गईं हैं नष्ट जो।
फिर ज्ञान की क्या दिव्यता यदि ज्ञात होवें नहीं वो ?।६१॥
अरहंत-भासित ग्रथित-गणधर सूत्र से ही श्रमणजन।
परमार्थ का साधन करें अध्ययन करो हे भव्यजन!।६२॥
डोरा सहित सुइ नहीं खोती गिरे चाहे वन-भवन।
संसार-सागर पार हों जिनसूत्र के ज्ञायक श्रमण॥६३॥
तत्त्वार्थ को जो जानते प्रत्यक्ष या जिनशास्त्र से।
दृगमोह क्षय हो इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए॥६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन-आगमों से सिद्ध हों सब अर्थ गुण-पर्यय सहित।
जिन-आगमों से ही श्रमणजन जानकर साधें स्वहित ॥६५॥
स्वाध्याय से जो जानकर निज अर्थ में एकाग्र हैं।
भूतार्थ से वे ही श्रमण स्वाध्याय ही बस श्रेष्ठ है ॥६६॥
जो श्रमण आगमहीन हैं वे स्व-पर को नहिं जानते।
वे कर्मक्षय कैसे करें जो स्व-पर को नहिं जानते ॥६७॥
व्रत सहित पूजा आदि सब जिनधर्म में सत्कर्म हैं।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम आतमधर्म है ॥६८॥
चारित्र ही बस धर्म है वह धर्म समताभव है।
दृगमोह-क्षोभ विहीन निज परिणाम समाताभाव है ॥६९॥
प्राप्त करते मोक्षसुख शुद्धोपयोगी आतमा।
पर प्राप्त करते स्वर्गसुख हि शुभोपयोगी आतमा ॥७०॥
शुद्धोपयोगी श्रमण हैं शुभोपयोगी भी श्रमण।
शुद्धोपयोगी निरास्रव हैं आस्रवी हैं शेष सब ॥७१॥
काँच-कञ्चन बन्धु-अरि सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में ॥७२॥
भावलिङ्गी सुखी होते द्रव्यलिङ्गी दुःख लहें।
गुण-दोष को पहिचान कर सब भाव से मुनिपद गहें ॥७३॥
मिथ्यात्व का परित्याग कर हो नग्न पहले भाव से।
आज्ञा यही जिनदेव की फिर नग्न होवे द्रव्य से ॥७४॥
जिनभावना से रहित मुनि भव में भ्रमें चिरकाल तक।
हों नगन पर हों बोधि-विरहित दुःख लहें चिरकाल तक ॥७५॥
वस्त्रादि सब परित्याग कोड़ाकोड़ि वर्षों तप करें।
पर भाव बिन ना सिद्धि हो सत्यार्थ यह जिनवर कहें ॥७६॥
नारकी तिर्यञ्च आदिक देह से सब नग्न हैं।
सच्चे श्रमण तो हैं वही जो भाव से भी नग्न हैं ॥७७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मते शिशुवत् अकिञ्चन नहीं तिल-तुष हाथ में।
किञ्चित् परिग्रह साथ हो तो श्रमण जायें निगोद में॥७८॥
जो आर्त होते जोड़ते रखते रखाते यत्न से।
वे पाप मोहितमंती हैं वे श्रमण नहिं तिर्यञ्च हैं॥७९॥
राग करते नारियों से दूसरों को दोष दें।
सद्ज्ञान-दर्शन रहित हैं वे श्रमण नहिं तिर्यञ्च हैं॥८०॥
श्रावकों में शिष्यगण में नेह रखते श्रमण जो।
हीन विनयाचार से वे श्रमण नहिं तिर्यञ्च हैं॥८१॥
पार्श्वस्थ से भी हीन जो विश्वस्त महिला वर्ग में।
रत ज्ञान-दर्शनचरण दें वे नहीं पथ अपवर्ग में॥८२॥
धर्म से हो लिङ्ग केवल लिङ्ग से न धर्म हो।
समभाव को पहिचानिये द्रव्यलिङ्ग से क्या कार्य हो?॥८३॥
विरक्त शिवरमणी वरें अनुरक्त बाँधें कर्म को।
जिनदेव का उपदेश यह मत कर्म में अनुरक्त हो॥८४॥
परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते।
अज्ञान से भवगमन-कारण पुण्य को हैं चाहते॥८५॥
सुशील है शुभकर्म और अशुभ करम कुशील है।
संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं?॥८६॥
ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती।
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती॥८७॥
दुःशील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो।
दुःशील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो॥८८॥
पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है -जो न माने बात ये।
संसार-सागर में भ्रमें मद-मोह से आच्छन्न वे॥८९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिसुख सुख नहीं दुख है विषम बाधा सहित है।
है बंध का कारण दुखद परतंत्र है विच्छिन्न है॥९०॥
शुभ-अशुभ रचना वचन वा रागादिभाव निवारि के।
जो करें आतम ध्यान नर उनके नियम से नियम है॥९१॥
सद्ज्ञान-दर्शन-चरित ही है 'नियम' जानो नियम से।
विपरीत का परिहार होता 'सार' इस शुभ वचन से॥९२॥
जैन शासन में कहा है मार्ग एवं मार्गफल।
है मार्ग मोक्ष-उपाय एवं मोक्ष ही है मार्गफल॥९३॥
हैं जीव नाना कर्म नाना लब्धि नानाविध कही।
अतएव वर्जित वाद है निज-पर समय के साथ भी॥९४॥
ज्यों निधि पाकर निज वतन में गुप्त रह जन भोगते।
त्यों ज्ञानिजन भी ज्ञाननिधि परसङ्ग तज के भोगते॥९५॥
यदि कोई ईर्ष्याभाव से निन्दा करे जिनमार्ग की।
छोड़ो न भक्ति वचन सुन इस वीतरागी मार्ग की॥९६॥
जो थाप निज को मुक्तिपथ भक्ती निवृत्ती की करें।
वे जीव निज असहाय गुण सम्पन्न आतम को वरें॥९७॥
मुक्तिगत नरश्रेष्ठ की भक्ति करें गुणभेद से।
वह परमभक्ति कही है जिनसूत्र में व्यवहार से॥९८॥
द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरंहत को।
वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो॥९९॥
सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी॥१००॥
हैज्ञान दर्शन शुद्धता निज शुद्धता श्रामण्य है।
हो शुद्ध को निर्वाण शत-शत बार उनको नमन है॥१०१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतचक्रवर्ती के १६ स्वप्न दर्शन और उन स्वप्नों के फल

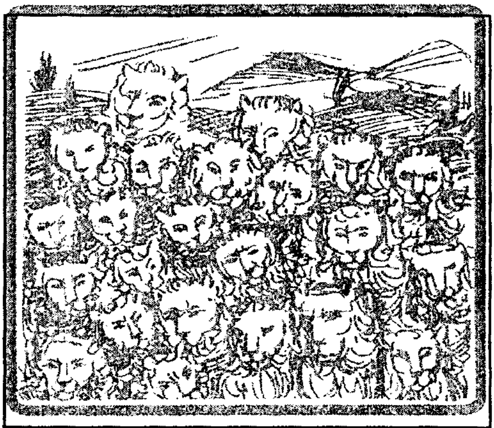

१. तेईस सिंहों को देखा।

१. तेईस तीर्थङ्करों के समय में खोटे मुनि न रहेगें।

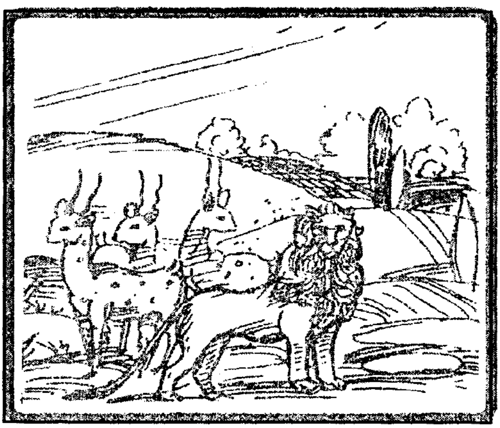

२. एक सिंह के पीछे मृग समूह।

२. महावीर स्वामी के पश्चात् मुनि परीषह न सहेंगे, भ्रष्ट होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

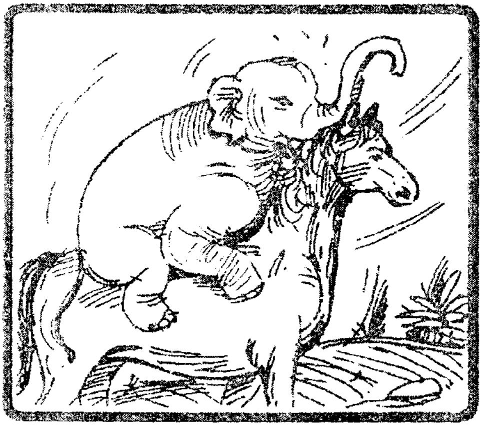

३. घोड़े पर हाथी चढ़ रहा है।

३. साधु तप से डरेंगे और असमर्थ होंगे।

४. हसं को कौवे सता रहे हैं।

४. उच्चकुल वाले शुभाचरण से भ्रष्ट होकर खोटा आचरण करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

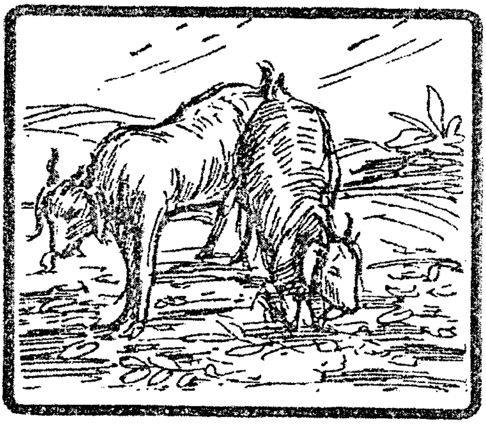

५. दो बकरे सूखे पत्ते खा रहे हैं।

५. क्षत्रियों का(राजवंश) नाश होगा, नीचकुल वाले राज्य करेंगे।

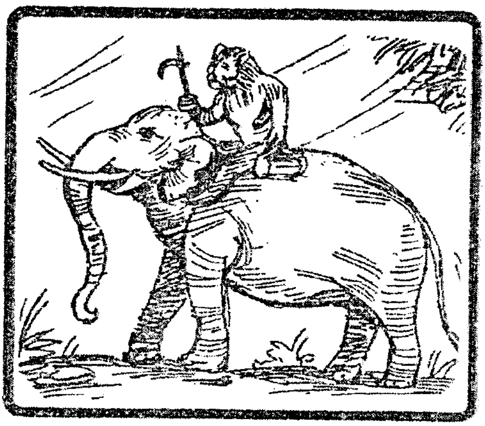

६. हाथी पर बन्दर बैठा है।

६. पंचम काल में भोले जीव मुनि धर्म छोड़ेंगे, पापी जीव धर्मात्माओं का अपमान करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. भूत-प्रेत नाच रहे हैं।

७. अज्ञानी जीव भूतादि कुदेवों की पूजा जिनेदेव के समान करेंगे।

८. तालाब मध्य में खाली है और किनारों पर जल भरा हुआ है।

८. उत्तम तीर्थों में धर्म का अभाव होगा। हीन स्थान में धर्म रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

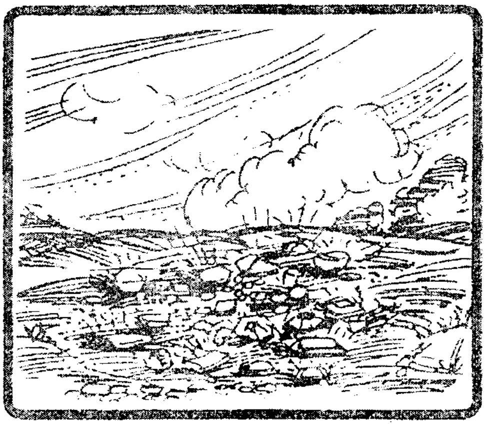

९. रत्नराशि धूल में मिली हुई है।

९. पंचमकाल में शुक्लध्यानी नहीं होंगे, धर्मध्यानी कई एक रहेंगे।

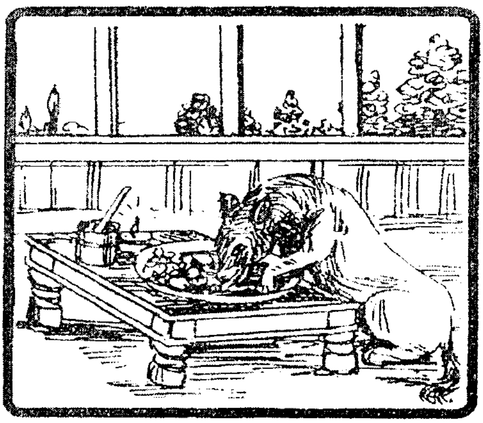

१०. कुत्ता पूजन का द्रव्य खा रहा है।

१०. पंचम काल में कुपात्र भी पात्र की तरह आदर पावेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

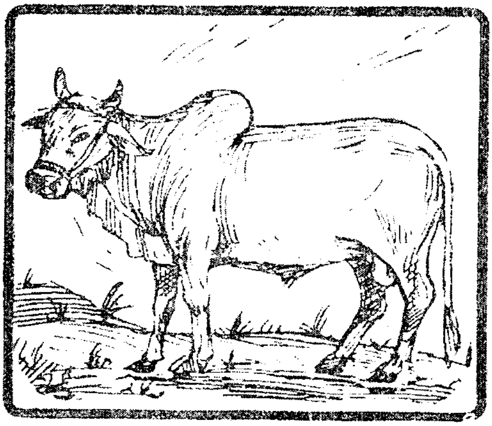

११. एक तरुण बैल को देखा।

११. पंचमकाल के जीव तरुण अवस्था में धर्मसाधन करेंगे। परन्तु वृद्धावस्था में अरुचि करेंगे।

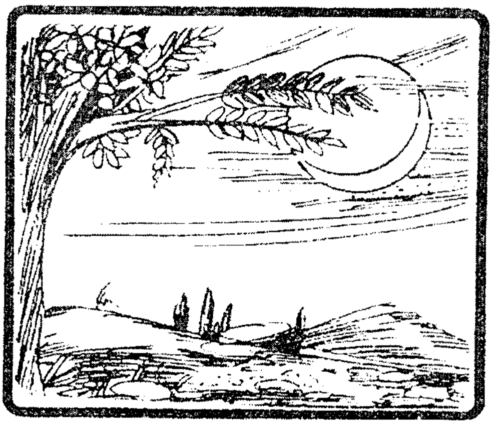

१२. शाखा सहित चन्द्रमा को देखा।

१२. पंचम काल में अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान के धारी मुनि नहीं होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

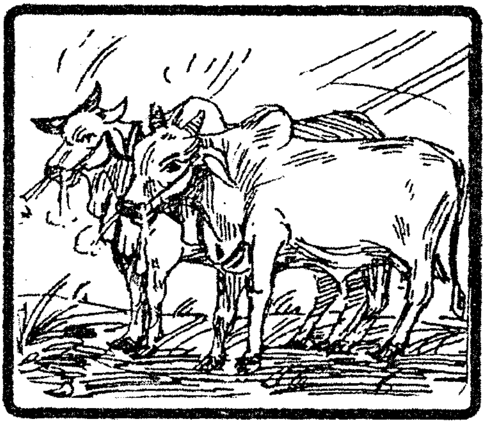

१३. युगल बैल दहाड़ रहे हैं।
१३. पंचम काल में मुनि संघ सहित रहेंगे, एकाकी नहीं रहेंगे।

१४. सूर्य मेघों से घिरा हुआ है।
१४. पंचम काल में केवलज्ञान नहीं होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. पत्ती रहित सूखे वृक्ष को देखा।

१५. पंचमकाल के स्त्री पुरुष शीलव्रत धारण करके भी कुशील सेवन करेंगे।

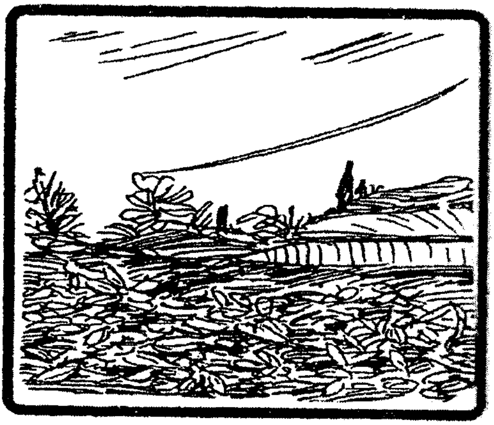

१६. सूखे जीर्ण पत्ते देखे।

१६. पंचमकाल में अन्न आदि औषधियाँ नीरस होंगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्न दर्शन और उन स्वप्नों के फल

१. सूर्य मण्डल अस्त होते हुये देखा।

१. पंचमकाल में अङ्गपूर्व के धारी मुनि कोई नहीं रहेंगे।

२. कल्पवृक्ष की शाखा टूटी हुई देखी।

२. अभी से कोई क्षत्रिय राजा जिन दीक्षा नहीं धारण करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. सीमा का उल्लंघन किये हुए समुद्र।
३. राजा लोग अन्यायी होंगे, उनको परधनहरण की इच्छा होगी।

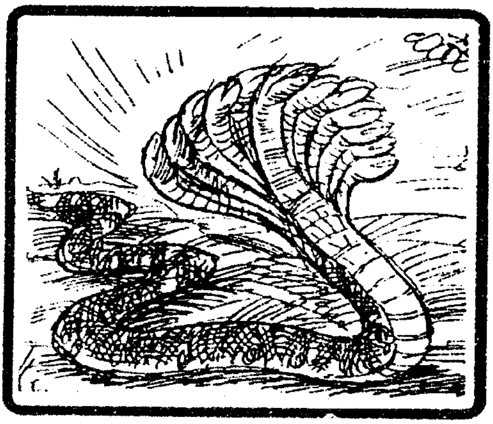

४. बारह फणों का सर्प देखा।
४. बारह वर्षों तक अकाल(दुष्काल) पड़ेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

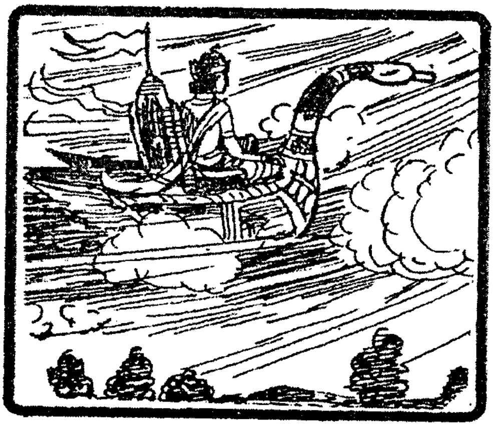

५. देव विमान वापस लौटा जा रहा है।

५. पंचम काल में यहाँ देव नहीं आवेंगे। चारण मुनि और विद्याधर नीचे नहीं आवेंगे।

६. ऊँट पर राजकुमार बैठा है।

६. राजा लोग दया धर्म नहीं पालेंगे, हिंसा करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

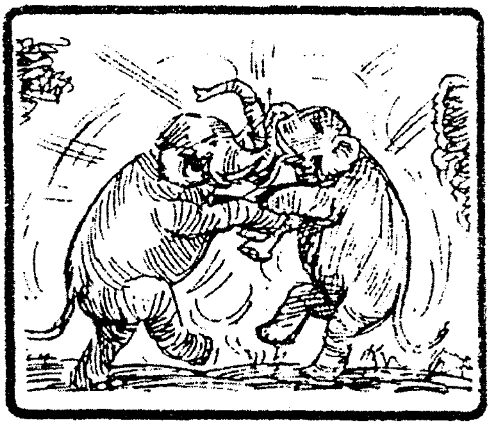

७. दो काले हाथी लड़ रहे हैं।

७. समय पर पानी नहीं बरसेगा व निर्ग्रन्थ मुनि सग्रंथ होंगे।

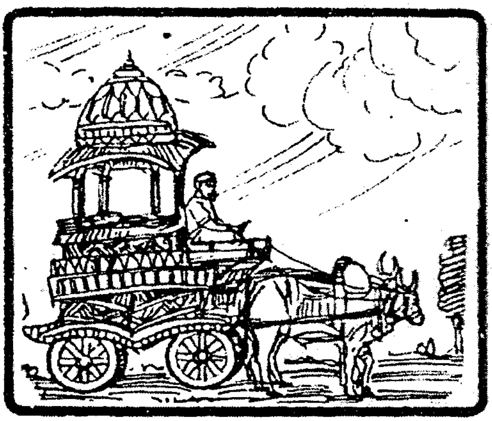

८. महारथ गोवत्स जुड़े हैं।

८. युवावस्था में ही कदाचित् कोई दीक्षा धारण करेंगे, वृद्धावस्था में दीक्षा नहीं पालेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. नग्न स्त्रियाँ नाच रही हैं।

९. दिगम्बर नग्न मुनि होवेंगे परन्तु व कपटी और पाखंडी होवेंगे। कुदेवों की विशेष पूजा होती रहेगी।

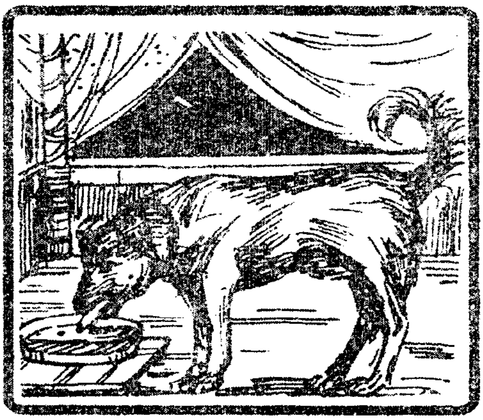

१०. सुवर्ण पात्र में कुत्ता खा रहा है।

१०. उत्तम कुल वालों में से अब लक्ष्मी पाखंडी और मध्यम कुल वाले लोगों में चली जाएगी।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

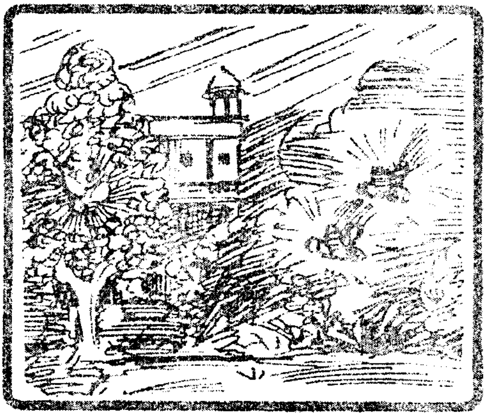

११. जुगनू चमकते देखा।
११. जैनधर्म का विस्तार अब बहुत थोड़ा रहेगा
और अन्य धर्म का विस्तार ज्यादा होगा।

१२. सूखे हुए सरोवर में दक्षिण दिशा में थोड़ा सा जल देखा।
१२. जिन-जिन स्थानों में पंचकल्याणक हुए हैं, उन-उन स्थानों में धर्म की हानि होगी। अब से जिनधर्म रहे तो उसी दक्षिण दिशा में रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. रज में कमल खिला हुआ देखा।

१३. ब्राह्मण और क्षत्रिय ये अन्य धर्म से चलेंगे। वैश्य लोग जैनधर्म पालेंगे व धनवान होंगे।

१४. छिद्रसहित चन्द्रमा देखा।

१४. जिनशासन में अनेक भेद-प्रभेद होवेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. हाथी पर बन्दर बैठा हुआ देखा।

१५. क्षत्रिय लोग सेवक होंगे, नीच लोग राज्य करेंगे।

१६. रत्नराशि रज में देखी।

१६. मुनि-मुनियों में अनेक फूट होगी। आपस में स्नेह भाव नहीं रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृहद आध्यात्मिक पाठ संग्रह में मूल्य कम करने हेतु दान दातार सूची

क्रं.	नाम	रकम
1.	श्रीमती मीना जैन धर्मपत्नी स्वं. श्री ताराचन्द्र जी जैन इटावा रोड़, पेट्रोल पम्प के सामने, भिण्ड (म.प्र.)	25000/-
2.	श्री कैलाशचन्द्र जी जैन, अकोड़ा वाले, ग्वालियर	5100/-
3.	श्री अजयकुमार वंशजकुमार जैन, बरोही वाले, खण्डा रोड, भिण्ड	5100/-
4.	श्रीमती रेनू जैन पत्नी श्री सुबोधकुमार जी जैन, इन्दौर	500/-
5.	श्रीमती शिल्पी जैन पत्नी श्री सुदीपकुमार जैन, ग्वालियर	500/-
6.	श्रीमती रेशू जैन पत्नी श्री अवनीश कुमार जैन, दिल्ली	500/-
7.	श्रीमती स्मिता जैन पत्नी श्री आशीष जैन, भिण्ड	500/-
8.	श्री सुनीलकुमार जैन, जसबंत नगर, इटावा (उ.प्र.)	2100/-
9.	श्रीमती शकुन जैन, कमानिया गेट, जबलपुर (म.प्र.)	1100/-
10.	श्रीमती पुष्पादेवी जैन पत्नी श्री रतनसेन जैन, ऐंतहार वाले आर्यनगर, भिण्ड (म.प्र.)	2100/-
11.	श्री विजयकुमार जैन 'मास्टर साहब', देवनगर, भिण्ड	551/-
12.	श्री विजयकुमार जैन 'पवैया', इन्दौर	500/-
13.	श्रीमती विमला जैन, जसवंत नगर, इटावा (उ.प्र.)	501/-
14.	श्री अशोक जैन, अटेर रोड, भिण्ड	201/-
15.	श्री प्रदीपकुमार जैन, अटेर रोड, भिण्ड	201/-
16.	गुप्त दान	105/-
17.	श्री राहुल जैन, सदर बाजार, भिण्ड	101/-
18.	श्री रमेशचन्द्र जैन, सुभाष नगर, भिण्ड	101/-
19.	श्री देवेन्द्र कुमार पवैया, भिण्ड	101/-
20.	गुप्त दान	101/-
21.	श्री विकाश जैन, महावीर गंज, भिण्ड	100/-
22.	श्री मुरारीलाल जैन, नरवर (शिवपुरी)	100/-
23.	श्री जयचंद्र जैन (ठेकेदार), सुभाष नगर, भिण्ड	100/-
24.	श्रीमती शांतीदेवी ध.प. श्री सुरेशचन्द्र, अटेर रोड, भिण्ड	100/-
25.	कु. श्वाती जैन	100/-
26.	गुप्त दान	50/-
27.	श्रीमती सुषमा जैन	50/-
28.	श्रीमती समता जैन ध.प. देवेन्द्र कुमार जैन, ग्वालियर	201/-
29.	श्री नेमीचंद्र जैन, सुभाष नगर, भिण्ड	101/-
30.	श्रीमती कुसुम जैन 'ताई', देवनगर, भिण्ड	502/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

31.	श्री रवीकान्त जैन, पुस्तक बाजार, भिण्ड	102/-
32.	श्री बाबूराम जैन (घी वाले), देवनगर, भिण्ड	100/-
33.	श्रीमती ममता जैन ध.प. अरविंद जैन, देवनगर, भिण्ड	100/-
34.	गुप्त दान	100/-
35.	श्री अभयकुमार जैन, बतासा बजार, भिण्ड	250/-
36.	श्रीमती मीना जैन, लश्कर रोड, भिण्ड	51/-
37.	श्रीमती सुशीला ध.प. श्री वीरसेन जैन, महावीर गंज, भिण्ड	52/-
38.	श्रीमती मधु जैन	500/-
39.	श्रीमती शांतीदेवी जैन, देवनगर, भिण्ड	100/-
40.	श्रीमती सरोज जैन, पुस्तक बाजार, भिण्ड	200/-
41.	श्रीमती सोनल जैन	201/-
42.	श्रीमती मोनका जैन, पुस्तक बाजार, भिण्ड	101/-
43.	श्रीमती सोमा जैन, महावीर गंज, भिण्ड	101/-
44.	श्रीमती माया जैन ध.प. अतुल जैन, देवनगर, भिण्ड	200/-
45.	श्रीमती अलका जैन ध.प. अरविंदकुमार जैन, ग्वालियर	102/-
46.	श्रीमती कमला देवी ध.प. रामूर्ति जैन, देवनगर, भिण्ड	201/-
47.	श्रीमती जैनावाई जैन, सुभाष नगर, भिण्ड	200/-
48.	श्री नरेशकुमार जैन (अकलोनी वाले), भिण्ड	255/-
49.	श्रीमती अनीता जैन, महावीर चौक, भिण्ड	101/-
50.	श्रीमती सविता जैन ध.प. अजय जैन, महावीर गंज, भिण्ड	51/-
51.	श्रीमती मीरा जैन ध.प. डॉ. निर्मलचंद जैन, पुस्तक बाजार, भिण्ड	251/-
52.	श्रीमती रूबी जैन, महावीर गंज, भिण्ड	201/-
53.	गुप्त दान	51/-
54.	श्रीमती सविता जैन ध.प. मदनकुमार पोदार, गल्ला मण्डी, भिण्ड	100/-
55.	श्रीमती शारदा जैन	200/-
56.	श्रीमती शांति जैन	101/-
57.	श्रीमती रंजना जैन	100/-
58.	श्री अमित जैन	100/-
59.	गुप्त दान	200/-
60.	श्रीमती मीना जैन	100/-
61.	श्रीमती वीना जैन	101/-
62.	श्रीमती मंजू जैन, नवरंगपुर (उड़ीसा)	201/-
63.	श्रीमती ममता जैन	202/-
64.	श्रीमती किरण जैन	201/-
65.	श्रीमती सुलेखा जैन	202/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

66.	श्रीमती सुप्रभा जैन	51/-
67.	श्रीमती राधा जैन	52/-
68.	श्रीमती मंजू जैन	101/-
69.	श्रीमती रजनी जैन	102/-
70.	श्रीमती सुशीला जैन	103/-
71.	गुप्त दान	50/-
72.	श्रीमती सुनीता जैन	51/-
73.	श्रीमती किरण जैन 'रपरिया'	202/-
74.	श्रीमती सिम्मी जैन	104/-
75.	गुप्त दान	21/-
76.	श्रीमती लवि जैन ध.प. अनिल जैन, बतासा बाजार, भिण्ड	202/-
77.	श्रीमती मनीषा जैन, देवनगर, भिण्ड	101/-
78.	श्रीमती रूपा जैन, खंडा रोड, भिण्ड	102/-
79.	गुप्त दान	50/-
80.	श्रीमती सिम्मी जैन	102/-
81.	श्रीमती हेमलता जैन	100/-
82.	श्रीमती अमिता जैन	100/-
83.	श्री रविन्द्र कुमार जैन	101/-
84.	श्री आलोक जैन	100/-
85.	श्री अमित जैन	100/-
86.	श्री सुभाषचंद जैन	201/-
87.	गुप्त दान	101/-
88.	श्रीमती नंदनी जैन, खड्गपुर	101/-
89.	श्रीमती शीला जैन, देवनगर, भिण्ड	151/-
90.	श्रीमती सुमिता जैन	101/-
91.	कु. सेली जैन	51/-
92.	श्रीमती कमोदनी जैन, पुस्तक बाजार, भिण्ड	200/-
93.	श्री रतनसेन जैन, आर्यनगर, भिण्ड	200/-
94.	गुप्त दान	100/-
95.	श्रीमती रतना जैन, देवनगर, भिण्ड	200/-
96.	गुप्त दान	250/-
97.	श्रीमती मंजू जैन ध.प. राकेश जैन, गल्ला मण्डी, भिण्ड	201/-
98.	श्रीमती पुष्पा जैन ध.प. रामदास जैन	101/-
99.	श्रीमती नीलम जैन ध.प. मुकेश जैन, सिरसागंज	201/-
100.	श्रीमती सरला जैन, पेट्रोल पम्प वाले	202/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

101. कु. निधी जैन व कु. नेहा जैन, बतासा बाजार, भिण्ड	251/-
102. श्रीमती कमलेश जैन ध.प. शशी जैन, देवनगर, भिण्ड	201/-
103. श्री गुलाबचन्द्र मुकेश कुमार मनोज कुमार, गोल मार्केट, भिण्ड	551/-
104. श्री नरेशचन्द्र मनोजकुमार जैन, हाउसिंग कॉलोनी, भिण्ड	501/-
105. श्रीमती रीता जैन	100/-
106. श्री सत्येन्द्रकुमार जैन, वीरेन्द्र नगर, भिण्ड	101/-
107. गुप्तदान	400/-
108. श्री सोनू जैन, इटावा रोड, भिण्ड	21/-
109. श्रीमती सुनीता जैन ध.प. सुरेशचन्द्र जैन	52/-
110. श्रीमती मोतीरानी जैन, ग्वालियर	202/-
111. श्री नेमीचन्द्र जैन भगवासी वाले, भिण्ड	200/-
112. श्री सत्यदेव जैन, महावीर चौक, भिण्ड	100/-
113. श्रीमती माया जैन, पेच नं.1, भिण्ड	100/-
114. श्रीमती सुधा जैन, भिण्ड	100/-
115. गुप्तदान	150/-
116. श्रीमती बेवी जैन ध.प. विनोद कुमार जैन, देवनगर, भिण्ड	101/-
117. बविता जैन, पेच नं.1, भिण्ड	100/-
118. अविनाश जैन	100/-
119. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री सुरेश जैन, देवनगर, भिण्ड	1100/-
120. गुप्तदान	100/-
121. श्री बोबी जैन, इटावा रोड, भिण्ड	151/-
122. श्रीमती अमोली जैन	100/-
123. श्रीमती संध्या जैन ध.प. हृदय मोहन जैन, पुस्तक बाजार, भिण्ड	200/-
124. शुद्धात्मप्रकाश जैन पुत्र जिनेश्वरदयाल जैन, बंगला बाजार, भिण्ड	252/-
125. श्री सुरेशचन्द्र जैन 'भगवासी वाले' देवनगर, भिण्ड	1100/-
126. श्रीमती रागनी जैन, देवनगर, भिण्ड	100/-
127. श्रीमती मधू जैन ध.प. वीरेन्द्र जैन (रानीपुरा वाले), दिल्ली	500/-
128. श्रीमती छुन्नो देवी जैन	100/-
129. श्रीमती नीलम जैन, सदर बाजार, भिण्ड	100/-
130. श्रीमती उर्मिला जैन, महावीर गंज, भिण्ड	200/-
131. श्री जैन समाज, बेगमगंज, रायसेन (म.प्र.)	1100/-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

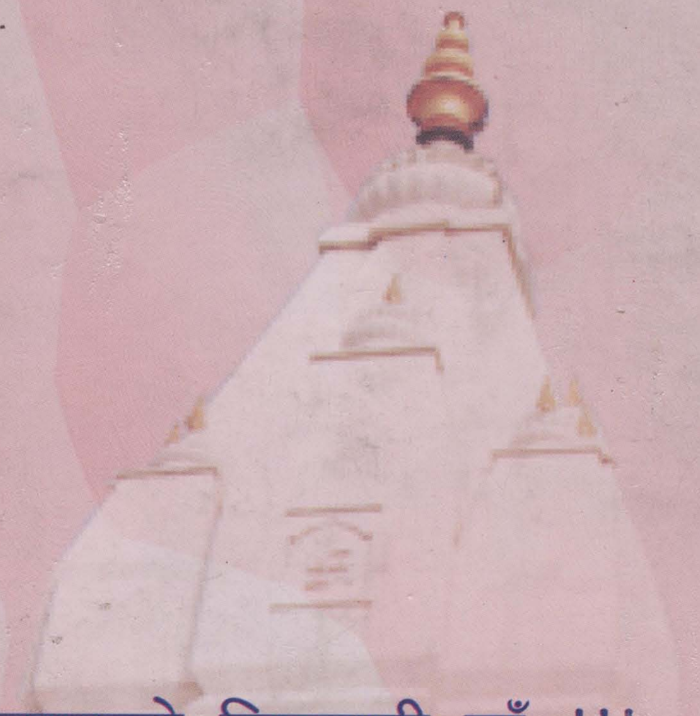

जयवन्तो जिनवाणी माँ !!!

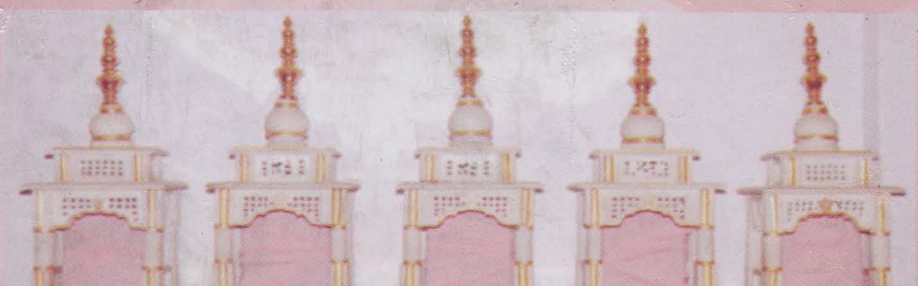

-: प्राप्तिस्थान :-

सीमन्धर जिनालय,

देवनगर कॉलोनी भिण्ड(म.प्र.)

मुद्रक : संयम पब्लिशर्स एण्ड प्रिन्टर्स, भिण्ड(म.प्र.) 09826287833

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org